करीब ८-६ लाख रुपए को ...
लेकर निकल पड़े । ...
कह दिया कि वे नि...
ताकि उनके दुश्मन
ढूँढ़ने चल दें और ...
अज्ञात
एक वजनाक
और ... । छोटे
लिए ... कि उन
रवाना ... ।
... उनका पचार
रवाना ... बांचियार

ॐ

श्रीहरिम्वन्दे ।

श्रीबृन्दाबनबिहारिणेनमः ।

योगबासिष्ठ

भाषा प्रारम्भः ।

प्रथम वैराग्य प्रकरणम् ।

प्रथमः सर्गः १.

कथारम्भ बर्णनम् ।

रं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
ं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशान्तये ॥

दोहा ।

श्रीगणेश को सुमिरिकै, शारद शीश नवाय ।
योगबाशिष्ठ बैराग्य को, भाषा लिखूं बनाय ॥

सृष्टिकालमें जिससे आकाशादिक महाभूत दीप्तिवान् होते हैं स्थितिकालमें जिससे स्थित रहते हैं और प्रलयकालमें जिसमें लय हो जाते हैं उस सत्यस्वरूप परब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥ ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, कर्त्ता, हेतु और क्रिया जिससे प्रकाशित होती हैं उस नित्यज्ञानरूपी परब्रह्म को नमस्कार ॥ २ ॥ जिस महानन्द सागरसे देवतावृन्द और मनुष्यसमूह में आनन्दके कण प्रतीत होते हैं और जो जीवन्मात्र प्राणियोंका जीवनस्वरूप है उस आनंदमय परमात्मा नं-

स्कार है ॥ ३ ॥ संशययुक्त किसी सुतीक्ष्ण नामक ब्राह्मण ने अगस्त्यमुनि के आश्रम में जाकर सादर प्रश्न किया कि ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! हे धर्मके तत्वोंके जाननेवाले ! हे सर्व शास्त्रोंके निश्चय करनेवाले ! मुझको एक बडा सन्देह है कृपा करके आप उसको निवृत्त कर दीजिये मोक्षका कारण कर्म है, अथवा ज्ञान है अथवा ज्ञान, कर्म, दोनों है इन तीनोंमेंसे एकको निश्चय करके बतलाइये ? ॥ ६ ॥ अगस्ति मुनि कहने लगे जिस प्रकार दोनों पक्षों (पंखों) द्वारा पक्षी आकाश में उडते हैं उसी प्रकार ज्ञान और कर्म दोनोंसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ केवल कर्म से अथवा केवल ज्ञान से ही मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है. किंतु दोनोंसे मोक्ष मिलती है इसीलिये ज्ञानियोंने दोनोंको

मोक्षका साधन बतलाया है ॥ ८ ॥ इस विषयमें मैं तुम से एक प्राचीन इतिहास कहताहूं "अग्निवेश ऋषिका पुत्र कारुण्य-नामक ब्राह्मण बेद और बेदांगको पढ़ सब शास्त्रोंमें प्रवीण होकर अपने स्थापनपर आया ॥ ९ ॥ १० ॥ और मनमें सन्देह को प्राप्त होकर कर्मत्याग घरमें रहने लगा अग्निवेश अपने पुत्र को कर्मशून्य देखकर उस-के हितकेलिये यह उत्तम बचन बोले हे पुत्र ! तू अपने कर्तव्यकर्मको पालन क्यों नहीं करताहै कर्मरहित होकर तुम किसप्रकार सि-द्धिको प्राप्त होओगे और विकर्मसे निवृत्त होनेका कारण क्याहै " यह सुनि कारुण्य बोला श्रुति और स्मृतिमें लिखाहै कि मनुष्य के लिये प्रवृत्तिरूपधर्म यावज्जीवन अग्निहोत्र और सन्ध्योपासनादि करनाहै, धन, कर्म

और सन्तानसें मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती किन्तु त्याग मात्रसेही होते लोग परमपदको प्राप्त होनेहैं हे गुरो ! इन दोनों श्रुतियोंमेंसे मुझ को कौनसी अवलम्बन करनी उचितहै ? इस सन्देहमें ग्रस्त होकर मुझको कर्मके पालनसे वैराग्य हुआहै " इतनी वार्ता कहकर अगस्ति मुनि बोले कि हे वत्स ! इतना कह कर वह कारुण्य नामक ब्राह्मण चुप होगया इसप्रकार अपने पुत्रको चुप देखकर अग्निवेश कहनेलगे हे पुत्र ! एक कथा सुनो और उसके अर्थ अपने हृदय में धारणकर अपनी इच्छानुसार कार्य करो !

सब महापाप समूहोंके नाश करनेवाले और आकाशगंगाके प्रवाहसे सिञ्चित हिमालय पर्वतकी जिस शिखरपर कामातुर किन्नर और किन्नरी बिहार करतेथे [illegible]

राओंमें श्रेष्ठ सुरुचिनामक एक स्त्री रहतीथी एक दिन उसने आकाशमें जातेहुए इन्द्रके दूत को देखा और उसे बुलाकर कहा हे देवदूत हेमहाभाग ! तुम कहांसे आयेहो और कहांको जातेहो यह कृपापूर्वक बतलाइये देवदूत बोला हे श्रेष्ठ भौंहवाली स्त्री तैनें बहुत उत्तम प्रश्न किया, अरिष्टनेमी राजा अपने पुत्रको राज देकर और क्रोध मोहादिको छोडकर गन्धमादन नामक पर्वतपर तप करताहै, उस राजासे मेरा कुछ कार्यथा उस कार्यको करके अब मैं आयाहूं और इन्द्रके निकट उस वृत्तान्तको कहने जाताहूं ! यह सुन अप्सरा बोली हे स्वामिन् ! कृपापूर्वक बतलाइये कि वहांपर क्या वृत्तान्त हुआ इसके जाननेकी मुझको बडीउत्कण्ठाहै मै नम्रतापूर्वक पूछतीहूं आप शीघ्रता कीजिये देवदूत कहनेलगा हे भद्रे सुन मैं

के.
और

बिस्तारपूर्बक उस बृत्तान्तको तेरे सामने कह-
ताहूँ वह राजा उस बनमें अतिउग्र तप करताहै
यह देखकर इन्द्रने मुझको आज्ञादी कि हे दूत
अप्सरागण सिद्ध यक्ष और किन्नरादिसे शो-
भित तथा अनेक प्रकारके बाजोंसे संयुक्त इस
बिमानको लेकर तू शीघ्र उत्तम उत्तम बृक्षोंसे
युक्त उस श्रेष्टगन्धमादनपर्बतपर जा और
अरिष्टनेमिको बिमानमें बैठाकर स्वर्गके भोगोंके
लिये इस अमरावती नगरीमें लेआ. इन्द्रकी
आज्ञानुसार सम्पूर्ण सामग्रीयुक्त उस बिमान-
को लेकर मैं उस पर्बतपरगया, और राजाके
आश्रममें जाकर इन्द्रकी आज्ञाको उसके सा-
मने निवेदन कर दी हे सुन्दरि ! मेरे इस
बचनको सुनकर संशय सहित राजा बोला हे
दूत ! जो कुछ मैं प्रश्न करूं उसका उत्तरदेना
आपको उचितहै, मुझे बताओ कि स्वर्गमें कौन

कौनसे दोष और कौन कौन गुणहैं वहांकी स्थितिको जानकर मैंअपनी रुचिके अनुकूल कार्य करूंगा मैंने उत्तर दिया हे राजन्!मनुष्य स्वर्गमें पुण्यकी सामग्रीसे परमसुख भोगताहै, उत्तम पुण्यसे उत्तमस्वर्ग, मध्यमसे मध्यम स्वर्ग तथाकनिष्ठ पुण्यसे कनिष्ठ स्वर्ग प्राप्तहोता है परोत्कर्ष बराबर वालोंसे ईर्षा, और छोटोंके प्रति सन्तोष यह सब बातैं स्वर्गमें उसीसमय पर्यंत होती हैं जबतक कि पुण्यका नाश नहीं होता, परंतु पुण्यके नाश होनेपर स्वर्गीय मनुष्य इस संसारमें जन्म लेते हैं हे राजन् ! स्वर्गमें इस प्रकार गुण और दोष दोनों वर्तमान हैं हे सुन्दरी ! इस बातको सुनकर राजा बोले हे देवदूत ! ऐसे फलवाले स्वर्गकी मुझको इच्छा नहीं है अब मैं अत्यन्त घोर तप करके इस अशुद्ध देहको इस प्रकार त्याग-

दूंगा जैसे कि सर्प पुरानी कांचलीको छोड देता है हे दूत! जिस प्रकार तू इस बिमानको लेकर यहां आया है उसी प्रकार तू इसे लेकर इन्द्रके पास चलाजा मैं तुझे नमस्कार करता हूं हे भद्रे! राजाके इस प्रकार उत्तर देनेपर मैं समग्र बृत्तान्त इन्द्रसे कहनेके लिये गया और मेरेयथावत् बर्णन करनेपर इन्द्रको बडा आश्चर्य हुआ तथा सुन्दर और मिष्टबाणीसे इन्द्रने मुझसे फिर कहा कि हे दूत! तू वहां फिरजा और उस वैराग्य सम्पन्न राजाको आत्मज्ञानके लिये तत्त्वज्ञानी महर्षि वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर लेजा, और मेरी ओरसे उनसे कहना कि हे मुनिश्रेष्ठ! इस बैराग्य सम्पन्न बिनीत और स्वर्गकी इछा न करने वाले राजाको तत्त्वज्ञानका उपदेश दीजिये जिसके द्वारा सांसारिक बासनांओंसे पीडित

इस राजाको मोक्षकी प्राप्तिहोय उस स्थान पर फिर जाकर मैं राजाको वाल्मीकि मुनि-के आश्रमपर लेगया और उनसे इन्द्रका संन्देश कहा.

इसके पश्चात् वाल्मीकि मुनिने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक राजासे कुशल क्षेम पूंछा ! राजाने उत्तर दिया हे भगवन् ! हे धर्मके तत्वोंके जाननेवाले ! हे लोक तत्वज्ञोंमें श्रेष्ठ ! आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ होगया, यही मेरी कुशल वार्ता है । हे भगवन् ! मैं आपसे यह पूंछना चाहताहूं कि इस संसार बन्धनसे मुझको किसप्रकार छुटकारा मिलसक्ताहै । वाल्मीकिमुनि कहने लगे हे राजन् ! सुनो मैं तुह्मारे आगे सब रामायणका वर्णन कर-ताहूं इसको सुनकर अच्छी प्रकार अवधारण करनेसे तुम मुक्तिको प्राप्त होवोगे । हे राजे-

न्द्र ! आत्मतत्त्वोंको जाननेवाला मैं वसिष्ठ और रामचन्द्रजीका सम्वाद जो मुक्तिका उत्तम उपाय है तेरे आगे बर्णन करता हूं। राजा बोले हे तत्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! राम कौन है? कैसा है, बद्ध है अथवा मुक्त है ! यह ज्ञान निश्चय करके मुझको बतलाइये । वाल्मीकि मुनि बोले, शापके बशसे विष्णुभगवान्ने राजाका रूप धारण किया और अपनी इच्छानुसार अज्ञानरूप होकर न्यून ज्ञान-वाले होगये. राजा बोला चैतन्यस्वरूप सच्चितानन्द रामचन्द्रजीको शाप देनेका क्या कारण है और उनको शाप किसने दिया यह मुझसे कहिये?बाल्मीकि मुनि बोले कि कामरहित सनत्कुमार ब्रह्माके स्थानपर रहतेथे, एक समय त्रैलोक्याधिपति विष्णुभग-वान्भी उस स्थानपर गये । उससमय सनत्कु-

मारको छोडकर अन्य ब्रह्मादि सभी प्रजागणने उनकी पूजाकी, इस्को देखकर बिष्णुभगवान् बोले हे सनत्कुमार ! तुम काम रहित होनेके कारण गर्वी होगये हो इसलिये तुम कामाशक्त होकर शरजन्मा नामक स्वामिकार्तिक उत्पन्न होओगे ! यह सुनकर सनत्कुमार ने विष्णुको शाप दिया कि तुमको सर्वज्ञाता होनेका अभिमानहै इसलिये किंचित् कालके लिये तुम अज्ञानी होवोगे ॥

भृगुऋषि अपनी स्त्रीको मरीहुई देखकर अत्यन्त क्रोधितहुए और शाप दिया कि हे विष्णु ! तुमको भी मेरी भांति स्त्रीका बियोग होगा ! बृन्दाने शाप दिया कि तुमने मुझसे छल कियाहै इसलिये तुम स्त्रीबिरहसे सन्तप्त होवोगे पयोष्णी नदीके तटपर रहनेवाली देवदत्तकी स्त्रीने विष्णुका नृसिंहरूप देखकर

भयसे अपने प्राण त्याग दिये इसपर स्त्रीके बिरहसे कातर उस ब्राह्मणने विष्णुको शाप दियाकि तुमकोभी अवश्य स्त्रीबियोग होगा !

इसप्रकार सनत्कुमार, भृगु, बृन्दा, और देवदत्तब्राह्मणके शापोंसे ग्रस्तहोकर विष्णु भगवान्‌ने मनुष्य लोंकमें जन्मलिया ! शाप प्रदान करनेका समस्तकारण मैंने तुह्मारे आगे बर्णन करादिया अब मैं समस्त मोक्षसाधन कहताहूँ सावधान होकर इसका श्रवण करो !

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥

द्वितीयः सर्गः २.

कथारम्भ वर्णनम् ।

चौपाई ।

जिहिविधि भरद्वाज संग लयऊ ॥
बाल्मीकके आश्रम गयऊ ॥
कथारम्भ बर्णौं चितलाई ॥
सुनियो सज्जन मन हरषाई ॥

जो स्वर्ग, मर्त्य, आकाश, पाताल, भीतर और बाहर बिबिधरूपसें प्रकाश मान्है उस सर्बमय परब्रह्मको हम नमस्कार करतेहैं।

बाल्मीकमुनि बोले—जो मनुष्य यह समझताहै कि मैं इस संसाररूपी कारागारमें बद्ध हूं, जो मुक्तिकी इच्छा रखताहै और जो न

बहुत अज्ञानी है और न बहुत ज्ञानीहै ऐसा मनुष्य इस शास्त्रका अधिकारीहै। प्रथम मोक्ष प्रयोजक २४००० श्लोकात्मक सम्प्रणीत रामायण कथा बिचार कर जो मोक्षसाधन परवर्त्ती छः प्रकरणोंको अच्छी प्रकार समझ लेताहै वह पुनर्जन्मके बन्धनसे छूटजाताहै। हे रिपुसूदन ! इसमेंसे २४००० श्लोकमय रामायणको मैंने प्रथम रचना किया और एकाग्रचित्त होकर अपने बुद्धिमान्, विनीत, शिष्य भारद्वाजको इसका अध्ययन कराया, यही रामायण बुद्धिमान् भारद्वाजने सुमेरुपर्वतके किसी बनमें ब्रह्माजीको सुनाई। लोक पितामह ब्रह्माने सन्तुष्ट होकर बोले हे पुत्र ! बर मांग।

यह सुन भरद्वाज बोले—हे भगवन् ! हे भूत और भविष्यके स्वामी ! इससमय अब मुझको

वही बर अच्छालगताहै जिससे यह सब मनुष्य दुःखसे छूट जाँय, इसलिये आप यही कहिये। ब्रह्माजी बोले तुम शीघ्रही इस बिषयमें वाल्मीकिमुनिसे प्रार्थना करो, उनने जो यह अपूर्व रामायण रचना आरम्भ कियाहै उसके सुननेसे मनुष्य समग्र मोहसे इसप्रकार पार होजांयगे जैसे अपार गुणशाली सेतुद्वारा समुद्रपार होजाताहै। बाल्मीकिमुनि बोले कि इतना कहकर सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी भरद्वाजको लेकर मेरे आश्रमपर आये मैंने शीघ्रही अर्घ्यपाद्यादिसे उनकी पूजाकी तदुपरांत वह सर्व हित परायण महात्मा मुझसे कहने लगे हे मुनिबर! यह जो तुमने उत्तम रामकथाका आरम्भ कियाहै इसको बिना समाप्तकिये मतछोडना क्योंकि जिसप्रकार पोत (जहाज) द्वारामनुष्य शीघ्रही सागरकेपार होजाताहै इसीप्रकार इस ग्रंथके

पढनेसे सर्वजन शीघ्रही संसारके कष्टोंसे उत्तीर्ण होजांयगे यही बात कहनेके लिये मैं यहां आयाहूं, आप लोकोपकारार्थ इस शास्त्रको बनाइये; जैसे जलकी तरंग क्षणभरके लिये उठतीहै और फिर वही शान्त होजातीहै, वैसेही ब्रह्माजी मेरेपुण्याश्रमसे तत्क्षण अन्तर्ध्यान होगये । ब्रह्माके जानेके पश्चात् मुझको बडा आश्चर्य हुआ और किञ्चित काल पश्चात् स्वस्थ चित्त होकर मैंने पूंछा कि हे भरद्वाज ! ब्रह्माने क्या कहा मुझको यह बात शीघ्र समझावो । भरद्वाजने उत्तर दिया कि भगवान्‌ने यह कहा है कि संसार सागरसे पारकरनेवाले अवशिष्ट (शेष)रामायणको सर्वजनोंके हितकेलियेशीघ्र बनाइये। और मुझको यह बताइये कि श्रीरामचं-न्द्रजीने महामतिभरतजी शत्रुघ्न, लक्ष्मण, यश स्विनी सीता और महामति रामानुचर मंत्री

पुत्रगणोंने संसार संकटमें कैसा व्यवहार किया जिसप्रकार यह सब संकटसे मुक्तहुए वह सब मुझसे साफ़ बर्णन कीजिये जिससेमैं और उपदेश प्राप्त समस्त अनेकदुखसे छूटजाऊं। आदर सहित भरद्वाजके प्रश्न करने पर मैं ब्रह्माकी आज्ञा पालन करनेमें तत्परहुआ हे वत्स भरद्वाज ? जो तैने प्रश्न किया है उसका मैं उत्तर देताहूं तू ध्यानपूर्बक सुन, इसके सुननेसे मोहरूपी मलके त्याग करनेमें समर्थ होओगे ! हे प्राज्ञ ! तत्वज्ञानी राजीवलोचन (कमल नेत्र) राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा, सीता, दशरथ, कृतास्त्र, और अविरोध तथा वसिष्ठ वामदेव और इनसे अन्य-आठ मंत्री इन सब तत्वज्ञानियोंने जिस प्रकार भावसे निर्लिप्तब्यवहार करके सुखभोग कियाहै उसी प्रकारतुमभी व्यवहार करौ। दृष्टि, जयन्त,

भास, सत्य, विजय बिभीषण, सुषेण, हनुमान और इन्द्रजित्ये, उपरोक्त आठो मंत्री समदर्शी, बिरक्त चित्त, जीवन्मुक्त, महात्मा और प्रारब्धानुसार बर्तनेवाले कहे जातेहैं। जिस प्रकार इनने होम, दान, ग्रहण, वास और स्मरण किया हे पुत्र! यदि तूभी उनके सदृश व्यवहार करैगा तौ निश्चय संकटसे मुक्ति पावेगा। अपार संसार समुद्र मग्न व्यक्ति परमोत्कृष्ट ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न होकर शोक और दीनताको प्राप्तनहीं होताहै किन्तु निरभिमान और नित्य तृप्त रहताहै।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे द्वितीयः सर्गः समाप्तः।
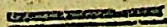
तृतीयः सर्गः ३.
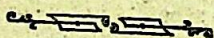
तीर्थयात्रा वर्णनम् ।

दोहा ।

कहूं तीसरे सर्गमें, अमृतकथा बखानि ।
जिमि रघुपति तीरथकरि, अवध बसे सुखदानि

भरद्वाज बोले—हे ब्रह्मन् ! रामचन्द्रजीसे आदिलेके क्रमसे जीवन्मुक्तिकी अवस्थाका मुझसे वर्णन कीजिये जिसके अवलम्बन करनेसे मैं सदैव सुखीरहूं, वाल्मीक मुनि बोले जिस प्रकार आकाशमें नीलबर्णका भ्रम होताहै और विचारकर देखनेसे नीलबर्णका भ्रम दूर होजाताहै अर्थात् यह मालूम होताहैं कि आकाशमें कोई रंग नहीं हैं उसी प्रकार

इस जगत्के सत्ताका केवल भ्रम है विचार करनेसे यह भ्रम निबृत्त होजाता हैं।

ब्रह्मज्ञानके बिना इस दृश्य (संसार) के अत्यन्ताभाव का अनुभव (संसार कभी था, अथवा है अथवा होगा) कदापि किसीको प्राप्त नहीं होता, इस कारण ब्रह्मज्ञानका प्राप्त करना आवश्यकीय है। ब्रह्मज्ञान इस शास्त्र योगबासिष्ठरामायण के पढनेसे उत्तमतापूर्बक प्राप्त होता है, यदि तुम इसको एकाग्र चित्त होकर सुनोगे तो तत्व पाओगे अन्यथा नहीं। हे अनघ! जिसप्रकार बिचारनेसे आकाश वर्णरहित ज्ञात होताहै उसीप्रकार इस शास्त्रकें बिचारनेसे यह अनुभव होजायगा कि यह जगत भ्रम दृश्य भी नहींहै। अन्यथा स्वाभाविक अज्ञान के वशीभूत अनेक कल्पपर्यन्त शास्त्रोंके गढ्ढेमें

लुढकनेसेभी सुखको प्राप्त नहीं होसक्ता। हे ब्रह्मन्! बासनाओंका सर्वथा परित्याग करदेनाही उत्तम मोक्ष मानागयाहै।

हे ब्रह्मन्! जिस प्रकार शीतऋतुके समाप्त होनेपर हिमके कण (बर्फ) पिघलजातेहैं उसी प्रकार बासनाओंमें लिप्त मनुष्यका हृदय नष्ट होजाता है। यह पंचभूतात्मक देह बासनाओंद्वारा उसीप्रकार धारण कियागयाहै जिसप्रकार सूत्र अपने बीचमें पिरोये भये मोतियोंके समूहको धारण करताहै। बासना दो प्रकारकी कही गईहैं एक शुद्ध और दूसरी मलिन। इनमेंसे मलिनबासना जन्मका हेतुहै और शुद्ध बासना जन्मका बिनाशकरनेवालीहै! अज्ञानके सदृश सघन आकारवाली और प्रबल अहंकारसे शोभायमान् मलीन बासनाकोही पण्डितोंने पुनर्जन्म का हेतु मानाहै। पुनर्जन्मके

अंकुरको त्यागकर भुनेहुए बीजके सदृश स्थित ज्ञेयपदार्थको जाननेवाली और शरीर धारणके अर्थ जो बासनाहै उसको शुद्धबासना कहतेहैं पुनर्जन्म नाशकशुद्धबासना जीवन्मुक्त पुरुषके देहमें इसप्रकार करतीहै जैसे चक्रमें भ्रमण (चक्करखाना, घूमना) जो प्राणी शुद्धबासना के आश्रितहैं वे पुनर्जन्मकी यंत्रणासे मुक्तहोते हैं तथा वही पुरुष ज्ञेय पदार्थको जाननेवाले जीवन्मुक्त और महा बुद्धिमान् मानेगयेहैं ! बुद्धिशाली रामचन्द्रजी जिसप्रकार जीवन्मुक्त पदको प्राप्त हुए उसे अब मैं बर्णन करताहूं तुम जरा (वृद्धावस्था) और मरणको शान्ति के उद्देशसे इसको श्रवण करो !

हे महाबुद्धे भरद्वाज । मैं रामचन्द्रजीका शुभचरित्र बर्णनकरताहूँ तुम सुनो, इससे तुम सदैव सर्वज्ञाता होजाओगे । कमल लोचन

रामचन्द्रजी विद्यालयसे निकलकर अपने घर-पर निर्भय होकर कुछ कालतक लीला बिलास करते रहे इसप्रकार कुछ समय व्यतीत होनेपर जिससमय राजा दशरथ उत्तम प्रकारसें पृथ्वी-कापालन करनेमें तत्पर थे और समस्त प्रजा शोकहीन और ज्वरादि उपद्रवसे रहितथी ऐसे समयमें अनेक गुणोंसे शोभायमान् रामचन्द्र जीका चित्त तीर्थ और पवित्रआश्रमोंके समूह को देखनेके लिये अति उत्कण्ठित हुआ। इसप्रकार बिचारकरते हुए रामचन्द्रजी पिताके समीप गये और जिसप्रकार हंस नवीन कमल को ग्रहण करताहै उसीप्रकार नखरूपी केशर युक्त पिताके चरणोंको पकडकर बोले हे तात हे स्वामिन् तीर्थों, देवालयों बनों और मुनि-योंके आश्रमोंको देखनेके लिये मेरा मन अत्य-न्त उत्कण्ठित होरहाहै, इसलिये हे नाथ ! मेरी

इस प्रथम प्रार्थनाको अंगीकार करना आपको उचितहै क्योंकि संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहींहै जिसकी आपने इच्छा पूर्ण न की हो रामचन्द्रजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर राजा दशरथने वशिष्ठमुनिके द्वारा समाचार कह कर उनको तीर्थयात्रा करनेकी आज्ञा दी। शुभ दिन और शुभनक्षत्रमें मंगल पदार्थों-से शरीरको अलंकृत करके, ब्राह्मणोंसे स्वस्ति वाचन करायके और माताओंके आशीर्वाद ग्रहणकर दोनों माताओं वसिष्ठादि ब्राह्मणों और कुछ राजपुत्रोंको संगलेकर रामचन्द्रजीने तीर्थयात्राके लिये अपने घरसे पयान किया।

ग्रामवासी स्त्रियोंके कांपते हुए कर कम-लोंसे फेंकेहुए लाजकी बर्षासे रामचन्द्रजी इस प्रकार ढके घिरे हुए थे, जिस प्रकार हि-मालय पर्वत हिमसे ढका रहता है। इस प्रकार

श्रीरामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको दान दक्षिणा-दिसे सन्तुष्ट करते हुए और प्रजागणके आ-शीर्बाद सुनते हुए. दिग प्रान्तोंका अवलोकन करते हुए जांगल देशमें भ्रमण किया तदन-न्तर पवित्र नदियोंके तट, पवित्र आश्रम, बन नगर के जंगल, समुद्रतट, और पर्बतभूमि, मन्दाकिनी, इन्दुनिभा, निर्मल कमलयुक्त यमुना, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा यैरावती वेणी, कृष्णावेणी, निर्विन्ध्या, सरयू, चर्मण्व-ती (चम्बल) वितृस्ता, विपाशा, बाहुदा, प्रयाग, नैमिष, धर्मारण्य, वाराणसी, गया, केदार, श्रीगिरि, पुष्कर, मानससरोवर, चन्द्रतीर्थ, उत्तर मानस, वडवामुख, अग्नि-तीर्थ, महातीर्थ, इन्द्रद्युम्न सरोवर, तथा अनेक सरोवर, और नदों और ह्रदोंकी श्रेणीको, स्वामिकार्तिक, भगवान् शालग्राम, विष्णु

और महादेवजीके स्थान, बिबिध आश्चर्य मय चारों समुद्रके तट, बिन्ध्याचल और मन्दराचलकी कुंज, कुलाचलभूमि, प्रधान २ राजर्षि ब्रह्मर्षि, देवताओं और ब्राह्मणोंके पवित्र स्थानोंका यथावत् दर्शन किया। इस प्रकार रामचन्द्रजीने अपने दोनों भ्राताओं सहित समस्त पृथ्वीका परिभ्रमण कर अपने घरको ऐसे गये जैसे शिवजी सब दिशाओंका अवलोकनकर कैलाशपर जातेहैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे तृतीयः सर्गः समाप्तः ।

चतुर्थः सर्गः ४.

दिवस ब्यवहार बर्णनम् ।

दोहा ।

कथा चतुर्थे सर्गकी, नितप्रतिको व्यवहार ।
रघुबरकी लीला सुनत, होत पाप जरि छार ॥

श्रीवाल्मीकि मुनि कहने लगे कि जिस प्रकार इन्द्रके बेटा जयन्तने स्वर्गमें प्रवेश किया था उसी प्रकार नगर निवासियोंकी पुष्पाञ्जलिसे आच्छादित श्रीरामचन्द्रजीने पिता, माता, भाई, ब्राह्मण और कुलके वृद्ध मनुष्योंको प्रणाम किया । फिर पिता, माता, और मित्रगणोंसे बारम्बार आलिङ्गन करके और सबसे यथायोग्य ब्यवहार करके

श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्नतासे फूले न समाते थे। तथा रामचन्द्रजीकी मधुर बातोंको सुनसुन-कर लोग उनके निवास स्थानमें भ्रमरके सदृश इकट्ठे होरहे थे।

इस प्रकार रामचन्द्रजी अनेक देशोंके आचारोंका वर्णन करतेहुए सुख पूर्वक रहने लगे। प्रातःकाल उठकर बिधिपूर्वक सन्ध्याबन्दन करके इन्द्रके सदृश सभामें स्थित अपने पिताके दर्शन करतेथे और बासिष्ठादिसे ज्ञान पूरित विचित्र कथा-ओंके सुननेमें दिनका प्रथम भाग व्यतीत कर पिताकी आज्ञानुसार बडी सेनालेकर मृ-गयाके लिये जंगलको जातेथे और वहांसे आकर स्नानादिसे निवृत्तहो मित्र और बान्धवों सहित भोजन करके शयन करतेथे, रामचन्द्र-जी तीर्थ यात्रासे आनेके पश्चात् दोनों भ्राता-

ओं सहित प्रायः इसी प्रकार व्यवहार करतेहुए पिताके गृहमें निवास करतेथे । हे अनघ राजाओं में व्यवहारके योग्य सज्जनोंके हृद-यमें चांदनीके सदृश प्रकाश करनेवाले और उत्तम अमृत धाराके समान मिष्ट चेष्टाओंसे रामचन्द्रजी अपना समय व्यतीत करतेथे ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे चतुर्थः सर्गः समाप्तः ।

अथ पंचमः सर्गः ५.

कार्श्यवर्णनम् ।

सवैया ।

एकसमै मनमें रघुवंस. शिरोमणि शोच अपार बढायो । पंकज हस्त पै सोहै कपोल

सुपंकज मानहु है मुरझायो ॥ सूखि रघोतनप-ङ्कज सोलखि मातुपितानुजहू दुखपायो । पंच-मसर्ग बखानहुं जो जगहेतु बिरागको पंथ जना-

इस सर्गमें वाल्मीकिमुनि, रामचन्द्रकी कृशता और उसका कारण जाननेकी राजाकी उत्कंठाका बर्णन कियाहै ।

श्रीबाल्मीकि मुनि बोले—इस समय राम शत्रुघ्न और लक्ष्मणकी अवस्था १६ बर्षसे, कुछ न्यूनभी भरत अपने मातामह (नाना) के यहां सुख पूर्बक निवास करते थे, राजा दशरथ सम्पूर्ण पृथ्वीको यथा नियम पालन करतेथे और मंत्रियोंके संग पुत्रोंके विवाहकी सलाह करतेथे किन्तु तीर्थ यात्रासे आनेके पश्चात् रामचन्द्रजी इस प्रकार कृश होते जातेथे जैसे शरद ऋतुमें निर्मल सरोवर सूखता जाताहै

कुमार अवस्था श्रीरामचन्द्रकी बढगई और वे अपने हाथ पर कपोल रक्खे हुए चिन्तामें ऐसे मग्न रहतेथे कि न कुछ बोलते थे और न कुछ करतेथे, उनका शरीर बडा दुर्बल होगया था और वे चित्र लिखेके समान किसीसे कुछ नहीं बोलते थे, मनके खेदसे उनका मुख कमल अत्यन्त मुरझा गयाथा और इष्ट मित्रों के बार-म्बार कहनेसे अपना नित्य कर्म किया करतेथे, अत्यन्त गुणवान् रामचन्द्रकी यह दशा देख कर उनके भाइयोंकी भी वैसीही दशा होगई, तथा पुत्रोंकी ऐसी दशा होनेपर राजा दशरथ और उनकी रानी भी चिन्ताग्रस्त होगये और पूछने लगे कि तुमको ऐसी क्या बडी चिन्ता है जिससे तुह्मारी ऐसी दशा होगई है परन्तु उन्होंने कुछ उत्तर न दिया। परन्तु रामचन्द्र केवल इतना कहकर चुप हो गये कि हे पिता !

मुझको कोई क्लेश नहीं है । तब तो राजा दशरथने सर्व ज्ञाता वसिष्ठजीसे पूछा कि रामचन्द्रजी उदास क्यों रहते हैं । यह सुन वसिष्ठजीने विचार कर कहा कि हे राजन् ! रामचन्द्रजी के दुःखका कोई विशेष कारण है, इसमें आपको दुखी न होना चाहिये । हे राजन् ! अच्छे पुरुष तुच्छ कारणसे अधिक क्रोध, शोक वा हर्ष नहीं मानते हैं जैसे सृष्टि वा संहारके बिना इन पृथिव्यादि पञ्च महाभूतमें कोई बिकार नही होताहै ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे पंचमः सर्गः समाप्तः ।

अथ षष्ठः सर्गः ६.

विश्वामित्रागमनवर्णनम् ।

दोहा ।

षष्ठ सर्ग पावन कहौं, विश्वामित्र प्रवीन । राम सहानुज लेन हित, गमन अवध जिमि कीन ॥

इस सर्गमें विश्वामित्रजी का आना और राजा द्वारा उनका विधिवत् पूजन इत्यादि कथा वर्णन की गईहै । वाल्मीकि मुनि बोले वसिष्ठजीके इतना कहने पर राजा कुछ काल- तक प्रतीक्षा करता रहा और सब रानियां रामचन्द्रजीके प्रत्येक आचरणको सावधानीसे देखती थीं इसी समयमें विश्वामित्र नामक विख्यात मुनि राजा दशरथसे भेंट करनेके लि-

ये आये क्योंकि इस बुद्धिमान् महर्षिकी यज्ञों-
को मायावी राक्षस विध्वंस कर देते थे । यज्ञ
निर्विघ्न समाप्त करनेमें अपने को असमर्थ
देखकर वह शीघ्र अयोध्याको गये औरद्वार
पालोंसे कहा कि राजासे कहो गाधिका
पुत्र कौशिक ऋषि यहां आयाहै, उनके इस
बचनको सुनकर द्वारपालोंका अधिपति
राजाके पास गया और कहने लगा हे देव !
नवोदित सूर्य कीसी कान्ति वाला एक पुरुष
द्वारपर खड़ाहै, उसकी जटा अग्निकी ज्वा-
लाके सदृश लाल हैं तथा जहां वो खड़ाहै
उस स्थानकी समस्त पताका, अश्व, हाथी
पुरुष, और शस्त्र सब वस्तु उसके तेजसे सुवर्ण
के सदृश प्रकाश कर रहीहैं । द्वारपालके मुख-
से यह बात सुनकर राजा तुरन्तही सिंहासन
से उठ खड़ा हुआ और अपने मंत्रियोंको संग

लेकर पैदलही द्वार पर गया । उस जगह विश्वामित्रजीको खडे देखकर यह मालूम होताथा मानों किसी कार्यवश सूर्य देवता पृथ्वीपर आये हैं, वृद्धावस्था के कारण और अत्यन्त कठोर तपस्याके कारण पीली ज-टाओंकी पंक्तिने उनके दोनों कन्धोंको इस प्रकार ढक लियाथा जिस प्रकार सन्ध्या के समय बादलोंसे पर्वत ढका होताहै । उन-का शरीर प्रशान्त, कान्ति, युक्त, दीप्तिमा-न्, धृष्ट, विनीत, उज्वल और तेजयुक्त, वास्तविक कोमल ऊपरसे भयानक चंचल गम्भीर, और परिपूर्ण तेजसे शोभा युक्तथा उनके हाथ में उनका प्राचीन सखा कमण्ड-ल तथा शरीर पर यज्ञोपवीत धारण कियेथे । राजाने मुनिको देखकर दूरसेही पृथ्वीपर शिर झुकाकर प्रणाम किया मुनिनेभी जिसप्रकार

सूर्य इन्द्रको आशीर्वाद देतेहैं उसी प्रकार कोमल वाणीसे राजाको आशीर्वाद दिया तदनन्तर अन्य बसिष्ठादि ब्राह्मणोंने मुनिको नमस्कार किया राजा बोले हे साधो ! आपके अकस्मात् दर्शनसे मैं ऐसा प्रसन्न हुआ हूं जैसे सूर्य देवके उदय होनेपर कमल प्रसन्न होते हैं हे मुनीश्वर ! आपके दर्शनसे मुझको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ है जो अन्य किसी कारणसे प्राप्त नहीं होसक्ता, आज आपके दर्शनसे मैं धार्मिकोंमें अग्रणी होगया । फिर राजाने अपने हाथसे उनको अर्घ प्रदान किया । विश्वामित्रमुनिने शास्त्ररीत्यनुसार अर्घ ग्रहण करके राजाकी प्रशंसा की और उससे शारीरिक और आर्थिक मंगल प्रश्न किया । तदनन्तर वसिष्ठमुनिने प्रसन्न चित्तहोकर उनकी पूजा की । तथा उपयुक्त आसनोंपर बिराज-

मान् होकर परस्पर एक दूसरेकी कुशलता पूछनेलगे । राजाने पुनः खड़े होकर कहा हे मुने । जैसे अमृतकी प्राप्ति, अकालमें वृष्टि और अन्धेको नेत्रोंकी प्राप्तिसे आनन्द होता-है वैसाही आनन्द मुझको आपके शुभागमनसे आज हुआहै । जैसे निःसन्तान पुरुषको सन्ता-नका जन्म और दरिद्रको स्वप्नमें देखीहुई सम्पत्ति आनन्ददायक होतीहै हमारे लिये आपका आगमनभी वैसाहीहै । जैसे इसलोक के मनुष्योंको आकाशमें जाने और मृतपुरुष-के फिर जिउठनेसे जो आनन्द प्राप्त होताहै वही आनन्द हमको आपके आगमनसे प्राप्त हुआ है । ब्रह्मलोकका निवास सबके लिये प्रीतिपदहै किंतु मेरे लिये आपका आगमन-ही ब्रह्मलोकके तुल्य है । हे विप्र ! आपका मुख्य प्रयोजन क्याहै, मैं आपका कौनसा

कार्य करनेके योग्य हूं । आप परम धार्मिक और पात्रभूत (सब कुछ देने योग्य) मेरे यहां आयेहैं हे भगवन् ! पहिले आप राजर्षिके नामसे प्रसिद्ध थे फिर आप तपोबलसे ब्रह्मर्षि हुए, इसलिये आप मेरे पूज्य हैं । गंगाजल-स्नानसे जो कुछ आनन्द प्राप्त होताहै आपके दर्शनसेही मुझको वह आनन्द प्राप्त हुआहै आप, इच्छा, भय और क्रोधसे रहित हो अनुराग आपमें नहींहै तथापि आप मेरे निकट आयेहो यह अति विचित्रहै । हे तत्वज्ञप्रवर इस समय मैं अपनेको पवित्रस्थानमें स्थित पापरहित और चन्द्रमण्डलमें निमग्न मानताहूँ। इस समय आपके आगमनको मैं साक्षात् ब्रह्माके आगमनके समान मानताहूँ, हे मुने! आपके आगमनसे मैं पवित्र और अनुग्रहीत होगया । हे साधो ! आपके आगमनसे जो

प्रसन्नता हुई है उससे मेरा जन्म सुफल होगया और जीवन सार्थक होगया। आपके दर्शन करके और आपको प्रणाम करके मैं प्रसन्नताके मारे अपने शरीरमें ऐसे नहीं समाताहूं जैसे चन्द्रमाको देखकर समुद्र नहीं समाताहै। हे भगवन्! जिसकार्यकेलिये अथवा जिस उद्देशसे आप यहां आयेहो, उसे पूर्णही समझो, क्योंकि मैं तो सदा आपका दास हूं। हे कौशिक! अपने कार्यकेलिये आपको कोई चिन्ताकरना योग्य नहींहै, कारण कि आपके कार्योपयोगी वस्तु देनेमें मुझे कभी कुछ बिलंब नहीं है। राजाकी अत्यन्त कोमल, कानोंको सुखदेनेवाली और नम्र प्रार्थनाको सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे षष्ठः सर्गः समाप्तः॥

अथ सप्तमः सर्गः ७.

विश्वामित्रेच्छा वर्णनम् ।

दोहा ।

कहूं सातयें सर्गमें, गाधितनय समुझाय ।
मांगेहुजाम श्रीरामको, रहे भूप सिरनाय ॥

वाल्मीकमुनि बोले—राजाकी प्रार्थनाको सुनकर महा तेजस्वी विश्वामित्रजी कहनेलगे हे राजशार्दूल ! तुम उत्तम कुल रघुवंशमें उत्पन्न हुएहो, और वसिष्ठमुनिके आज्ञावर्ती हो, इसलिये मैं अपने मनकी कथा कहताहूं. उसका कर्त्तव्याकर्तव्य निश्चय करके तुम धर्मकी रक्षा करो । हे पुरुषश्रेष्ठ ! जो कुछ सिद्धिदायक धर्मानुष्ठान (यज्ञ) में करना

आरम्भ करताहूं उसको घोरतर राक्षस विध्वंस कर देते हैं। जब जब मैंने यज्ञ किया तभी २ राक्षसोंने उसे विध्वंस कर दिया, कितनीहींवेर मैने यज्ञ आरम्भ कियाहै किन्तु राक्षसगण सदैव मेरी यज्ञभूमिको रक्त और मांससे भरदेते हैं। जब इसप्रकार मेरे यज्ञोंके समूहके समूह नष्ट कर दिये गये तब थकित और निरुत्साह होकर यहां चला आया। हे राजन्! तेरी कृपासे यज्ञके निर्बिघ्न समाप्त होनेपर मैं महा फल पाऊंगा। मुझ शरणागतकी रक्षा करना आपका उचितहै. प्रार्थियोंको निरास करनेसे सज्जनोंकी निन्दा होती है। आपके पुत्र श्रीमान् रामचन्द्रजी, सिंहके पराक्रमको दमन करनेवाले, इन्द्रके तुल्य बलवान् और राक्षसों के विध्वंसकरनेमे समर्थ हैं। उन सत्य पराक्रम

काकपक्षधारी, और सौर्य्यसम्पन्न (बलवान्) रामचन्द्रजीको आप मुझको दीजिये। मेरी रक्षा और अपने बाहुबलद्वारा यज्ञविध्वंसक राक्षसोंके शिर काटनेमें समर्थ होंगे। मैं इनके संग ऐसा उपकार करूंगा जिससे ये तीनोंलोकमें पूज्य होजायंगे। जैसे क्रुद्धसिंह को देखकर मृगादिपशु बनमें नहीं ठहर सक्के उसीप्रकार रामचन्द्रजीको समरमें देखकर राक्षसगण भाग जायँगे। जिसप्रकार सिंह से अन्य कोई जीव मस्तहाथीसे नहीं लडसक्ता है उसीप्रकार ककुदवंशज रामचंद्रजीके शिवाय कौन राक्षसोंसे लडनेको समर्थ होगा। वे पापी और पराक्रमी खर और दूषणके भृत्य रणमें हलाहल विषके तुल्यहैं हे राजन्! जैसे धूलि निरन्तर मेघकी धाराओंको सहन नहीं करसक्ती है अर्थात् उडनेसे बन्द होजाती है

वैसेही राक्षसगण रामचन्द्रजीकी बाणवृष्टिको सहन न करसकेंगे।

इससमय आपको पुत्र स्नेह प्रकाश करना उचित नहीं है क्योंकि जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो महात्माओंके लिये अदेय हो। मैं निश्चय जानताहू और आपभी समझ लीजिये कि राक्षस मरगये क्योंकि मेरे सदृश बुद्धिमान् मनुष्य संदिग्ध कार्यमे प्रवृत्त नहीं होते॥ मैं, तेजशाली वशिष्ठजी तथा अन्य दीर्घदर्शी महात्मागण कमलनेत्र रामचन्द्रजी को जानते हैं। यदि धर्म महत्व और यशकी तुमको आकांक्षा है तो अपने पुत्र रामचन्द्रजी को मेरे लिये दीजिये मेरा यज्ञ दशरात्रि में पूर्ण होगा और उसी समयमें रामचन्द्रजी मेरे यज्ञके बैरी राक्षसोंका संहार करेंगे॥ हे ककुत्स्थवंशोद्भव ! वशिष्ठआदि सब मंत्रीगणोंकी

अनुमति लेकर श्रीरामचन्द्रजीको मेरे अर्पण कीजिये । हे समयके ज्ञाता राजन्। जिस प्रकार मेरा समय नष्ट न हो वैसाही आपको करना उचितहै, आपका कल्याण होगा, आप चित्तमें खेद मतकरो ! समयपर थोडासा किया हुआभी कार्य उपकार कहाजाता है किन्तु कुसमयपर किया हुआ बडा उपकार भी निरर्थक होताहै धर्मात्मा, तेजस्वी मुनि-श्रेष्ठ विश्वामित्रजी धर्म युक्त इतनी बात कहकर चुप होगये। महानुभाव राजा दशरथ मुनिवरकी यह बात सुनकर उचित उत्तर देनेके लिये किंचित्कालके लिये मौन होगये कारण कि बुद्धिमान् और अपूर्ण मनोरथ (जिसकी इच्छा पूर्ण न कीगई हो)साधारण व्यक्तिभी युक्तियुक्त (समयानुसार उचित

वार्ताबिना सन्तुष्ट नहीं होते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्टे महारामायणे सप्तमः सर्गः समाप्तः ।

अथ अष्टम सर्गः ८.

दशरथोक्ति वर्णनम् ।

॥ दोहा ॥

अष्टमसर्ग कथा कह्यो, कौशिकसों तेहिकाल ।
बहुविषाद बर्णन कियो रामहेत महिपाल ॥

राक्षसोंके संग युद्धकरनेके लिये रामचन्द्र जीको अयोग्य जानकर राजाका विषाद क-रना इस सर्गमें बर्णन किया जायगा ।

बाल्मीकिजी कहनेलगे कि नृपवर दशरथ बिश्वामित्रकी यह बात सुनकर थोडी देरतक-

निचेष्ट (चेष्टारहित) होगये और कातर होकर बोले, कमललोचन रामचन्द्रजीकी अवस्था १६ वर्षसेभी कमहै, मैं उनमें राक्षसोंके संग युद्ध करनेकी योग्यता नहीं देखताहूं । हे प्रभो ! एक पूर्ण अक्षौहिणी सेनाहै लेकर मैं राक्षसोंके संग स्वयं युद्ध करूंगा, मेरे भृत्य बली, पराक्रमी और युद्ध रीतिके ज्ञाताहैं मै स्वयंभी धनुष हाथमें लेकर रणक्षेत्रके अग्रभागमें उनकी रक्षा करूंगा । इनके बलके भरोसे मैं बडे बडे राजाओंके साथ युद्ध करनेको उद्यत होजाताहूं, बालक रामचन्द्रजी सेनाओंको नहीं देखा बालक राम सेनाका बलाबल क्या जानें उसने तौ महलसे बाहर कभी पांव भी नहीं रक्खा । न तौ अभी उत्तम २ शस्त्र उसके पासहैं न युद्धमें निपुणहै और न यह जानते हैं कि संग्राम भूमिमें असंख्य वीरोंके

साथ किस प्रकार युद्ध किया जाताहै केवल पुष्प वाटिका, नगर, उपबन, उद्यान बन और कुंजो में बिचरना। तथा साथके राज कुमारों के संग अपने महलके आंगनमें फूलोंसे खेलना जानताहै। हे ब्रह्मन्! इस समय तो मेरे दुर्भाग्य बश पीला और कृश होगयाहै जैसे ओलों से कमल श्रीहीन होजाताहै, न भोजन करते हैं और न खेलतेहैं केवल मनोव्यथासे मौन रहतेहैं। हे मुनिनायक। जैसे शरद ऋतु में मेघ सार हीन होजाताहै पत्नी और भृत्यों सहित मैं भी उनके लिये बेकाम होगया हूं। इस प्रकार बालक और व्याधि ग्रस्त पुत्रको और राक्षसों के संग युद्ध करनेके लिये आपके संग कैसे भेजदूं। हे साधो! हे महामते! पुत्रस्नेह नवयुवती संसर्ग, अमृत रस राज्य इनसेभी बढ़कर सुखदायक है, जो कार्य तीनों लोकोंमें

अशुभ फल दायक, दुख दायकहैं उनको भी महात्मा जन पुत्रस्नेह बश अवश्य करतेहैं ।

हे मुनिवर ! मनुष्य मात्रका यह स्वभाव है कि वे प्राण धन और स्त्रीका त्यागकर देते हैं किन्तु पुत्रको नहीं छोडते हैं ! राम राक्षसोंसे युद्ध करसक्ते हैं यह युक्तिही असङ्गत है क्योंकि वे लोग अत्यन्त क्रूर और माया युद्धमें प्रवीण होतेहैं मैं रामके बिना एकक्षण नहीं जी सक्ता हूं इस लिये यदि आप मेरा जीवन चाहतेहैं तो रामको अपने संग मत ले जाओ । अपनी ९००० वर्षकी आयुमें मैंने अत्यन्त कष्ट सह-कर यह चार पुत्र प्राप्त किये हैं, इन सब मे भी राम प्रधान हैं क्योंकि उनके बिना अन्य तीन भी जीवित नहीं रह सक्ते । उन्हीं रामचन्द्रजी को राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये आप लिये जातेहैं इसलिये यदि मैं पुत्रहीन हुआ तो आप

मुझकोभी मरा हुआ समझैं। चारों पुत्रों में रामसे मुझको अधिक स्नेह है इस लिये उनको ले जाना आपको उचित नहीं है। हे मुने ! निशाचरोंका बिध्वसं करना आपको मनोरथ है तौ चतुरंगिणी सेना समेत मुझको ले चलिये, वे राक्षस ऐसे पराक्रमवाले, किसके पुत्र, कैसे आकारवाले और कितनेहैं यह सब स्पष्ट रूपसे मेरे सामने वर्णन कीजिये। हे ब्रह्मन् ? राम, वा मेरे अन्यबालक अथवा मैं उन मायावी राक्षसोंसे किसप्रकार व्यवहार करैं। हे भगवन् ? जिस जिसप्रकार उन दुष्ट राक्षसोके संग युद्धमें प्रवृत्त होना उचितहो वह मुझसे साफ बर्णन कीजिये क्योंकि वे अत्यन्त पराक्रमीहैं। मैंने सुनाहै कि विस्वावसु का पुत्र रावण बडा बीरहै सो यदि उह-आपके यज्ञमे बिघ्न करताहै तौ उस दुष्टसे युद्ध

करनेमें हम असमर्थ हैं। हे ब्रह्मन् ? पराक्रम और ऐश्वर्य समय प्राणियोंमें उपकरणको मिलतेहैं और काल पाकर नष्ट होजातेहैं, इस-समय हम रावणादि शत्रुओंके सन्मुख नहीं ठहर सक्ते हैं यह बात निश्चयहै, इसलिये हे धर्मज्ञ! आप इस मेरे बालक पुत्रपर और मुझ मन्द भाग्यपर कृपा कीजिये, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष; सर्पादिभी इससमय रावणसे युद्ध करनेमें असमर्थ हैं फिर मनुष्य किस गिनतीमे हैं, वह राक्षस संग्राममें बडे बडे बलवानों का बल हर लेता है हमही उसके साथ युद्ध करनेमें असमर्थ हैं तौ बालक कैसे लड सक्तेहैं । अब ऐसा समय आगयाहै जिसने सज्जनोंको दुर्बल कर दियाह मैं रघुकुलमें उत्पन्न होकरभी दुर्बल और जीर्ण होरहाहू। अथवा हे ब्रह्मन् ! कहीं आपका शत्रु लवणासुर तौ नहीं है यदि ऐसा

है तो भी मैं अपने पुत्रको नही दूंगा अथवा सुन्द और उपसुन्दके पुत्र यमके समान मारीच और सुबाहु तो आपके यज्ञमेंविघ्न नहीं किया करतेहैं यदि यही बातहै तो भी मैं अपने पुत्रको नही दूंगा। हे ब्रह्मन् ? इसपरभीजो आप मेरे पुत्रको लेजाअोगे तो मैं मरजाऊंगा इसके सिवाय मुझको मेरा कुछ कल्याण नही सूझता।

ऐसी ऐसी कोमलबातें कहकर रामचन्द्रके ले जानेके विषयकी विश्वामित्रकी बात याद करके राजा ऐसे संशय रूपी समुद्रमें डूबगये कि उनको कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान न रहा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे अष्टमः सर्गःसमाप्तः॥

अथ नवमः सर्ग. ९

वसिष्ठ समाश्वास वर्णनम् ।

दोहा ।

नवमस्सर्ग कथा ललित, जिमि कियमुनि बर कोह । श्रीवसिष्ट समुझाय हू, तजअजनन्दन मोह ॥ बाल्मीकि बोले कि —राजा दशरथकी स्नेह भरी बातोंको सुनकर बिश्वामित्र क्रोध कर कहनेलगे कि हे राजन् ? तुमने हमारे कामके करनेकी प्रतिज्ञाकी थी और अब तुम उस प्रतिज्ञाको तोडना चाहतेहो शोक है कि तुम सिंह होकर मृग बनना चाहतेहो । यह बात रघुबंशियोंके विरुद्धहै चन्द्रमासे कहीं गरम किरणभी निकला करती है हे

रघुवंशभूषण ! यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेमें असमर्थहो तो मैं अपने स्थानको जाताहूं तुम अपनी प्रतिज्ञाको तोडकर बान्धवों सहित सुखी रहौ। तब महात्मा विश्वामित्रकेकोपसे सम्पूर्ण पृथ्वी कांपने लगी और देवताडरसे थरथराने लगे उससमय धैर्य्यवान् और बुद्धिमान वशिष्ठजीबोले कि हे रघुकुलकमल दिवाकर आपका यश और धर्म तीनों लोकमें विख्यात है आप धर्मका त्याग मत करो आपको धर्म छोडना उचित नहीं है और विश्वामित्रके अभीष्ट कार्य्य करने में प्रवृत्त हूजिये आप प्रणकरके उसको भङ्ग करते हो इससे आपका इष्टापूर्त्तादि[1] धर्म नष्ट होजायगा इसलिये विश्वामित्रके संग रामको भेजदो। आप इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न होकर और स्वयं दशरथ

१ बाग लगवाना, कूआ खोदना आदि.

कहलाकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करोगे तौ और कौन करैगा। तुमसरीखे सत्पुरुषोंकी बांधी हुई मर्य्यादाका उल्लंघन मूर्खभी नहीं करते हैं, तौ भला आप कैसे त्यागते हैं। इस पुरुष सिंहकी रक्षामें रहकर रामचन्द्रको अस्त्र विद्या आवै बन आवै परन्तु राक्षस इनका कुछ नहीं करसकेंगे जैसे अग्निस रक्षित अमृतको कोई देख भी नहीं सक्ता है। यह मुनि साक्षात् धर्मका अवतार, तपस्वियोंमें प्रधान बुद्धि और बलमें अद्वितीय और तपो निधानहैं; ये अनेक प्रकारकी अस्त्र विद्यामें निपुणहैं, त्रिलोकीमें कोईभी ऐसा नहीं है और न आगको होगा जो इनकी बराबर अस्त्र विद्या जानताहो, सब देवता, ऋषि, असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और सर्पादिभी मिलकर इनके बराबर नहीं होसके हैं, जब यह राजा थे तब इनको कृशाश्वने

अस्त्र दिये थे जो रुद्रके समान अतुलवीर्य, दीप्तिमान् और प्रतापशाली हैं और वेही इनकी-सेवामें रहतेहैं । जया और सुप्रभा यह दोनों सुन्दरी दक्षकी कन्या थीं इन दोनोंके ऐसे १०० पुत्र हुए जो जिनको कोईभी समरमें नहीं जीत सक्ताथा । पतिके वरदान से जयाके बडे तेजस्वी ५० पुत्र हुए इसी प्रकार सुप्रभाके भी ५० पुत्र उत्पन्न हुए, ये बडे बलवान् दुर्धर्ष और भयानक आकार वाले थे इनका नाम संघर्ष था, ये इन्हीं महात्मा विश्वामित्रका प्रतापथा, इसलिये रामके भेजनेमें तुम व्याकुल मत हो, हे राजन् ! जिसके पास ये विश्वामित्र रहतेहैं तौ जो उसकी मृत्युभी आगई हो तौ अमर होसक्ताहै तुम मूर्खोंके सदृश मत घबराओ ।

इति योगवाशिष्ठे महारामायणे नवमः सर्गः समाप्तः ॥

अथ दशम सर्गः

रामविषाद वर्णनम्।

सोरठ।

दसमःसर्ग सुजान, कथा ललित चितदे सुनहु।
रामविषाद बखान, कियो दूत जिमि भूपसों॥

बाल्मीकिमुनि बोले—वसिष्ठजीके इतना कहनेपर राजा दशरथने प्रसन्न मनहोकर रामचन्द्रजीके बुलानेके लिये द्वारपालको बुलाकर बोले हे प्रतिहार! महाबाहु सत्यपराक्रम रामचन्द्रजीको लक्ष्मण समेत धर्मकार्य करनेके लिये शीघ्र बुलालाओ, राजाकी इस आज्ञाको पाकर द्वारपाल अन्तःपुरमें गया और क्षणमात्रमें आकर कहने लगा हे बाहुबल

हे शत्रुओंके दमन करनेवाले राजन्! रामचन्द्र जी अपने मंदिरमें ऐसे उदासीन बैठे हैं जैसे रात्रिके समय भ्रमर कमलके भीतर उदास होताहै। "अभी आताहूं" यह कहकर किसी गम्भीरचिंता में निमग्न होगये और वह अपने निकट किसीका रखनाभी अच्छा नहीं समझते हैं।

द्वारपालके इतना कहनेपर राजाने उसके संग आयेभये रामचन्द्रजीके सेवकसे पूंछा राम कैसे हैं, वह क्या करते हैं? इसप्रकार राजाके पूंछनेपर वह सेवक खिन्नचित्त होकर बोला कि हे राजन्! आपके पुत्रको खेदयुक्त और चिंताग्रस्त देखकर हमारा शरीर लकड़ी के सदृश होगया है। कमलनेत्र रामचन्द्रजी जबसे तीर्थयात्रासे आये हैं तबहीसे उदास रहते हैं, हमारी सैकड़ों प्रार्थना करनेपर अपना

नित्यकर्म कभी करलेते हैं कभी उसकोभी नहीं करते । स्नान, देवपूजा और दान प्रभृतिकार्योंसेभी उदास रहतेहैं तथा सैकडों प्रार्थना करनेपर भी पेटभर भोजन नहीं करते । चातक जिस प्रकार जलधारासे क्रीडा करता है वैसे रामचन्द्रजी अन्तःपुरवासिनी रमणीयोंके साथ अब क्रीडा नहीं करते हैं। पतोन्मुख (शीघ्रही गिरनेवाला स्वर्गवासीको जिसप्रकार स्वर्गसे आनन्द नहीं होता है ।

उसीप्रकार मणिजटित बाजूबन्द और कडे रामचन्द्रजीको आनंदित नहीं करते हैं। जहां क्रीडा करनेवाली स्त्रियोंके कटाक्ष पात होते हैं, जहां पुष्पोंसे सुगंधित वायु बहती है ऐसी लताकुंजोंमेभी रामचंद्रजी शोकान्वित रहते हैं। जो द्रव्य, राजोचित, स्वादु, कोमल और मनोहर हैं उनसे वे खेदयुक्त होते हैं तथा

उनके नेत्र सदैव आंसुओंसे परिपूर्ण रहते हैं। "यह दुःखदायिनी स्त्रियां मेरे सामने क्यों दीखती हैं" इसप्रकार लावण्यवती पुरवासिनी स्त्रियोंका तिरस्कार करते हैं। उत्तम भोजन, शय्या, सवारी, बिलास और आसनको उन्मत्त पुरुषके सदृश पसन्द नहीं करते हैं। सम्पत्ति, बिपत्ति, गृह और मनोरथ क्या है, यह (नाशवान् झूठें) ऐसा कहकर मौन होजाते हैं। न हँसीसे प्रसन्न होते हैं न भोगमें लीन होते हैं और न किसी कार्यमें बिश्वास करते हैं केवल मौनही धारण किये रहते हैं, जैसे चंचलनेत्रवाली हरिणियांवनके बृक्षोंको प्रसन्न नहीं करसक्ती वैसही फहराते हुए केशोंसे आभूषित चपलनेत्र वाली स्त्रियां रामचंद्रजीको प्रसन्न करनेमें असमर्थ हैं। एकांत स्थान दिशाओंके अंत और वनोंमें ऐसे प्रसन्न रह

ते हैं जैसे बल भाजुओंमें बिका हुआ उत्तमपुरुष । हे राजन् ! वस्त्र, अन्न और पानके ग्रहणकरनेमें तृषा रहित होकर संन्यासियोंकी तरह होगये हैं । हे जननाथ ! जन्य शून्य स्थान में रहते हैं न हसते हैं न गाते हैं और न रोते हैं किंतु पद्मासन मार कर कपोलोंपर रक्खे हुए केवल उदास बैठे रहते हैं । कभी अभिमान करते हैं और न राज्यकी इच्छा करते हैं और न सुख और दुःखसे प्रसन्न और खेदित होते हैं । हमको नहीं मालूम होता है । कि वे कहांजाते हैं, क्या करते हैं, क्या चाहते हैं, किसका ध्यान करते हैं, और किसकी अभिलाषा करते हैं । शरदकालके अंतमें जिसप्रकार वृक्ष सूखते जाते हैं उसीप्रकार रामचंद्रजी प्रतिदिन कृश सूखते जाते पाण्डुवर्ण और विरक्त होते जाते हैं।शत्रुघ्न और

लक्ष्मणजीभी उन्हींका अनुकरणकर उसी दशाको प्राप्त होगये हैं, सबको राजाओं और माताओंके बार बार पूछनेपर " इतना कहकर मौन धारण कर लेते हैं । " थोडी दरके लिये सुखदायक परन्तु अन्तमें दुःखदायक भोगों- में मनको मत लगावो " ऐसीही शिक्षा समीप आयेहुये अभिज्ञ मित्रको देतेहैं । नानाप्रकार- के आभूषणोंसे शोभित कामिनियोंको प्रीति- की हसिसे नहीं देखते बरन् उनको यह समझतेहैं कि मृत्युसन्मुख खडी है । और पुनः पुनः मधुर और स्पष्ट बाणीसे कहतेहैं हाय बिना परिश्रम प्राप्त परमपदसे बर्जित चेष्टाओंमें हमने व्यर्थ अपना समय नष्ट किया जब कोई अनुचर यह कहताहै कि " आप चक्रवर्ती राजाहो " तब उसे पागल समझकर हस देतेहैं । न किसीकी बात सुनतेहैं और न

किसीकी ओर देखतेहैं सबप्रकारसे उत्तम वस्तुकोभी अवज्ञा करतेहैं । जैसे मेघकी धारा भारी पाषाणको नहीं तोड सक्तीहै ऐसेही उत्तम स्त्रियोंके समीप स्थित होनेपरभी काम बाण उनके दुर्भेद्य मनको भेदन नहीं करसक्ते-हैं । " बिपत्तिके एक मात्र आश्रय धनकी क्यों इच्छा करताहै " यह शिक्षा देकर सर्वस्व याचकको देदेतेहैं । यह आपत्ति, यह सम्पति यह सब कल्पनामय मनसे उठाहुआ भ्रमहै इन श्लोकोंको पढा करतेहैं । हाथ मैं मारागया, मैं अनाथहूं, इसप्रकार रोता हुआ मनुष्य भी यदि वैराग्यको प्राप्त नहीं होता तौ महान् आश्चर्य है । रघुकुलरूपी बनमें शाल वृक्षके तुल्य रिपुसूदन रामचन्द्रजीकी ऐसी स्थित देखकर हम अत्यन्त खदित होगयेहैं ।

हे कमलदल लोचन महाबाहो ! रामचन्द्र-

जीके शोक दूरकरनेकेलिये क्या उपायकरैं हे प्रभो ! जब कोई राजा अथवा ब्राह्मण उपदेश देनकेलिये सन्मुख जाताहै तो धीरभावसे उसका हास्य करतेहैं जगत्नामक यह विशाल पदार्थ नश्वरहै अतएव इसको वस्तु नहीं कहसक्ते और ' अहम् ' मैंभी वस्तु नहीं हूं यह अब धारण करके श्रीरामचन्द्रजी स्थित। शत्रु, आत्मा मित्र, राज्य, माता सम्पति और विपत्ति किसीमें उनका विश्वास नहीं है, आस्था (विश्वास) आशा, इच्छा और शांति उनसे दूर होगईहैं और न वे मूढहैं और न मुक्त है इसलिये हम लोगोंको बडा संतापहै । धन, माता, राज्य और चेष्टा इनसे कुछ लाभ नहीं हैं " यह निश्चय करके मृत्युके अभिलाषी होगयेहैं, रामचन्द्रजी, भोग, आयु, राज्य मित्र, पिता और माता इनसे ऐसे व्याकुल

होगयेहैं जैसे अनावृष्टिसे चातक व्याकुल होजाताहै । हे दयावान् राजन् ! पुत्रपर आई हुई आपत्तिरूप विशाल लताको समूल नष्ट करनेके लिये उद्यत हूजिये । हे प्रभो ! वैराग्य चित्तवाले रामचन्द्रजीका कृत्रिम भेषसे सजा-हुआ सम्पूर्ण विभवोंसे पूर्ण यह संसारजाल विषके तुल्य प्रतीत होताहै । इस पृथ्वीमण्डल-पर एसा महाशक्तिशाली कौन है जो रामचंद्र-जीको फिर संसारके व्यवहारमें लगासक्ताहै जिसप्रकार सूर्य अंधकारको दूरकरके अपना 'भास्कर' नाम सार्थक करते हैं उसी प्रकार इस संसारमें कौन ऐसा महात्माहै जो रामचन्द्र जीके दुःखरूपी अंधकारको दूरकरके अपनी साधुताको सफल करै ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे दशमः सर्गः समाप्तः ।

अथ एकादशः सर्गः ११.

राम समाश्वसन वर्णनम् ।

दोहा।

सभामध्य दसरथ निकट, बैठे सोभित राम ।
वर्णतहूँ जिमि प्रशनकिय,कौशिक मुनि सुखधाम

विश्वामित्रजी बोले यदि ऐसाही है तो आप रामचन्द्रजीको शीघ्र यहां लाओ, रघुनाथजीका यह भाव आपत्तिसे अथवा अनुरागसे नहीं है किंतु विवेक वैराग्यसम्पन्न पुरुषका परम मंगल करनेवाला है उनको शीघ्र यहां लाओ मैं उनके मोहको शीघ्रही इसप्रकार दूर करदूंगा जैसे वायु पर्वतसे बादलोंको दूर कर देतीहै । युक्तिपूर्वक इस अज्ञानके दूर

होनेपर श्रीरामचन्द्रजी हमारे समान परमपदमें विश्रामलाभ करेंगे । जिसप्रकार अमृत पीनेसे सत्य स्वरूपता, प्रसन्नता, विश्राम, ताप हीनता, स्थूलता और उत्तमवर्ण प्राप्त होतेहैं उसीप्रकार (अज्ञान नाश होनेपर) श्रीरामचन्द्रजी स्वस्थचित्त होंगे। और प्रसन्नचित्त माननीय श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्राचीन व्यवहार परम्परा अखण्डरूपसे पालन करेंगे। संसारके कारण और कार्यत्वको जानकर महासत्व, सुख और दुःखकी दशासे मुक्त और लोहे, पाषाण और सुवर्णमें समज्ञान होजायँगे।

मुनिवर विश्वामित्रके इसप्रकार कहनेपर प्रफुल्लचित्त होकर रामचंद्रके बुलानेके लिये राजाने पुनः दूत भेजा। उसी समय में श्री रामचन्द्रजी पिताके समीप जानेके लिय अपने आसनसे ऐसे उठे जैसे सूर्य उदयाचलसे

निकलताहै । कितनेक सेवक और दोनों भ्राताओं सहित इन्द्रके स्वर्गके तुल्य अपने पिताके पवित्रस्थानमें गये । रामचंद्रजीने देखा कि दशरथराजाओंके समूहसे इसप्रकार घिरेहुयेथे जैसे इन्द्र देवतागणोंसे घिरा होता है । राजा दशरथके दोनों ओर वशिष्ठ और विश्वामित्र बैठे हुए थे तथा सब शास्त्रोंके ज्ञाता मंत्रीगण चारों ओर बैठे हुए थे वसिष्ठ और विश्वामित्र आदि ऋषिगण और दशरथप्रभृ-ति राजाओंने रामचन्द्रजीको दूरसे आतेहुए देखा । उनका शरीर, सम, सुलक्षण, कमनी-य और दर्शनीय था. और हृदय विनयसे पूर्ण था यौवनावस्थाका सम्पूर्ण प्रकाश और वृद्धा-वस्थाके तुल्य शांतिभावसे भूषित थे, उनके सब मनोरथ पूर्णथे. न उनको उद्वेग था,

और न उनको आनन्द था। वह संसारयात्रा के विचारमें मग्नथे और स्वच्छ गुणोंसे भूषितथे, वे उदार, श्रेष्ठ, और पूर्ण मनोरथथे इसप्रकार गुणोंसे भूषित श्रीरामचन्द्रजीने दूरसेही शिर झुकाकर पिताको प्रणाम किया फिर माननीय मुनि वसिष्ठ और विश्वामित्रको प्रणाम किया तदनन्तर विप्रगणोंको और उसके पश्चात् अन्य पूज्यमनुष्योंको प्रणाम किया, फिर प्राचीन रीतिके अनुसार आधीन राजाओंके प्रणामोंको किंचित् शिर झुकाकर कोमलवाणीसे स्वीकार किया। वसिष्ठ और विश्वामित्रके आशीर्वादको ग्रहण कर समान चित्त और देवताओंके समान सुन्दर श्रीराम चंद्रजी पिताके समीप अपने स्थानपर बैठ गये। इसके पश्चात् शत्रुपाती पुत्रस्नेहसे पूर्ण राजा दशरथने रामचन्द्र, लक्ष्मण और शत्रु

झको आलिंगन करके पुनः पुनः ऐसे चुम्बन किया । जैसे राजहंस कमलको आलिंगन करताहै । राजाके यह कहनेपर कि हे पुत्र गोदमें बैठो " तबतो श्रीरामचन्द्रजी भूमिपर सेवकोंद्वारा बिछाये हुए आसनपर बैठगये

राजा दशरथ बोले—हे वत्स ! तुम विवेकी और कल्याणोंके भाजन (पात्र) हो, मूर्ख मनुष्यके सदृश शिथिल बुद्धिके आधीन होकर आत्माको खेदयुक्त मतकरौ । वृद्ध, ब्राह्मण और गुरूके कथानुसार करनेवाला तुह्मारे समान मनुष्य पवित्रपदको पाताहै और मोहके आधीन मनुष्य नहीं । हे पुत्र ! जबतक मोहको मार्ग नहीं दिया जाता तबही तक आपत्ति दूर रहतीहै ।

वसिष्ठमुनि बोले—हे राजपुत्र ! हे महाबाहो ! तुमही वीर हो कारण कि तुमने दुर्भे-

द्य और अंतमें दुःखदायी विषयोंको जीत लिया है । फिर तुम विघ्नरूपी तरंगोंसे व्याप्त, जडतासे भूषित, मोहरूपी समुद्रमें मूर्खके सदृश क्यों निमग्न होरहे हो ।

विश्वामित्रजी बोले—चपल नीलकमलके समान नेत्रोंकी मनोविकार जनित चंचलताको त्यागकर बतलाओ कि तुह्मारे मोहका कारण क्या है ? जो मानसिक व्यथा तुमको दुःख देती है उनका रूप क्या है, उनकी संख्या कितनी है और वे किसकारणसे दुःख देती हैं । तुम अनुचित मानसिक व्यथाओंके उत्तम स्थान नहीं हो, उन आपदाओंको दूर करनेके लिये तुह्मारी सहायताकी अपेक्षा नहीं है क्योंकि वे तो स्वयम् अस्तित्वहीन हैं ।

हे अनघ ! अपने मनके भावको शीघ्र प्रगट करो इससे तुम सब अभीष्टको पाओगे

और मानसी व्यथा फिर तुमको कभी दुःख न देंगी। इसप्रकार बुद्धिमान् विश्वामित्रमुनि-के उचित और उत्तम वाक्यको सुनकर श्री-रामचंद्रजीने खेदको ऐसे त्याग दिया जैसे मेघके गर्जनेपर मोर अपनी इष्ट सिद्धिका अनुमानकरके खेदको त्यागदेता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे एकादशः सर्गः समाप्तः

अथ द्वादशः सर्गः १२

अथ राम वैराग्य वर्णनम्।

दोहा।

उत्तरदिय रघुबंस मणि,पुनिकिय प्रश्न अनेक।
पावन कथा बषान हूं, जो सुनि बढत बिवेक॥

वाल्मीकमुनि बोले कि—मुनिवर विश्वामित्रके इसप्रकार पूंछनेपर रामचंद्रजी भलीभांति आश्वासन पाकर अर्थसे पूर्ण मधुर वाक्य बोले. हे भगवन् ! यद्यपि मैं मूर्ख हूं तथापि आपके इससमय पूछनेपर सब वृत्तान्त कहूंगा क्यों कि सज्जनके वाक्यको कौन उल्लंघन करसक्ता है । मैंने यहाँ पिताके गृहमें जन्मलिया क्रमसे बडा हुआ और विद्या प्राप्त की । हे मुनिनायक ! इसके पश्चात् सदाचारी होकर तीर्थयात्राकेलिये चारों समुद्रसहित भूमण्डलपर भ्रमण किया इतने समयमें संसारकी इस दशाको देखकर मेरे चित्तमें यह विचार उत्पन्न हुआ, मैंने स्वयम् विवेकयुक्त होकर संसारके भोग रससे रहित बुद्धिद्वारा यह विचार किया है कि यह जो संसारचक्र है इसमें क्या सुख होसक्ता है ? इसमें मनुष्य

मरनेके लिये उत्पन्न होता है और जन्म-लेनेके लिये मरजाता है । यह संसारकी जितनी चेष्टा है सब नाशवान् हैं, विभवकालमें स्थित जितने विषय हैं वे सब आपत्ति और पापके हेतु हैं जितने विषय हैं वे सब एक दूसरेसे लोहेकी शलाकाके समान अलग हैं केवल अपने मनकी कल्पनासे ही मिलाये जाते हैं । यह कृत्रिम भोगका रूप धारण किये हुए जगत् मनके आधीन है और वह मनभी असत्के तुल्य भासता है फिर हम किसपर मोहित हुए हैं । हाय ! इस अस्थिर हम मूढ बुद्धि इस जगत्के सुखकी ओर ऐसे खिचे हैं जैसे वनमें मृगतृष्णाके जलसे मृग दूर चले जाते हैं यद्यपि किसीने हमको बेचा नहीं है तथापि हम बिकेहुएके समान स्थित हैं खेदहै कि "यह माया है" इसको जानते

हुए भी हम मूढ होगये हैं। संसारजालमें भोग क्या है? उनकी तो दुर्भाग्यमें गणना है, हम मिथ्या भ्रममें फसे हुए हैं! मुझको राज्यसे क्या है? भोगसे क्या? मै कौन हूं? यह संसारजाल क्या है? सब भ्रममात्र है। हे ब्रह्मन्! इसप्रकार विचारकरते हुए मुझको विषयोंसे ऐसी अरुचि होगई है जैसे यात्रीको मरुदेशसे होती है! हे भगवन्! क्या यह जगत् नष्ट होताहै? क्या यह नष्टहोकर पुनः उत्पन्न होता है? और क्या उत्पन्नहोकर बढता है? जन्म,

---

मृगतृष्णा--यह एकप्रकारका भ्रम है बडी मरुभूमि (भूडारेतके वनों) में जहां पानी नहीं मिलता है और रेतके पहाडके पहाड दीखते है उस जगह मनुष्य और जीवजन्तुओंको यह दीखता है कि सामने थोडी दूरपर जल है किंतु जव उसके पास पहुंचते हैं तो सिवाय रेतके कुछ नहीं देखते और पछताते हैं।

मृत्यु, वृद्धावस्था, आपत्ति और सम्पत्ति यह सब अविर्भाव जौर तिरोभावसे पुनः पुनः वृद्धिको प्राप्त होते हैं। देखो! इनही तुच्छ भोगोंसे हम ऐसे शिथिल होगये हैं जैसे पर्वत-पर पेंड वायुके बेगसे होजाते हैं। प्राणरूपी पवनसे मनुष्य अचेतनके समान ऐसे शब्द करते हैं जैसे वायुसे वांस। जैसे अपनी कोट-रस्थ अग्निसे जीर्ण वृक्ष भस्म होता है, वैसेही "यह दुःख किसप्रकार शान्त हो" इस चिन्तासे मैंभी भस्म होरहा हूं। यद्यपि ससा-रके दुःखोंसे मेरा हृदय पत्थरके समान होगया है तोभी अपने स्वजनोंके भयसे आंसू बहाकर नहीं रोसक्ता हूं। आंसूओंके विना रोनेसे निरस और हर्षशोकादिसे शून्य हमारे मुखके भावको केवल हृदयका विवेकही एकान्त स्थानमें देखता है जैसे कोई धनवान् पुरुष अपनें शु

भकर्मोंके समाप्त होनेसे दरिद्र होगयाहो और अपनी पूर्वअवस्थाको यादकर रोता हो उसी-प्रकार मैंभी संसारकी उत्पत्ति और विनाश वृत्तिको सुनकर मोहको प्राप्त होगयाहूं। मनु-ष्योंके ठगनेवाली लक्ष्मी गुणोंका नाश कर-देती है और बहुतसे दुःखमें गेरदेती है चिन्ता-ओंके समूहके चक्ररूपी घनमे मैं इसप्रकार प्रसन्न नहीं हूं जैसे दरिद्र मनुष्य बहुतसे बेटा नाती आदिसे दुःखपाता है। संसारके दुःख-की चिन्तासे मेरा मन ऐसे शान्त नहीं होता है जैसे वनमें बंधेहुए हाथीका मन शान्त नहीं होताहै। अज्ञानरूपी रात्रिमेंमोहजालरूपीप्रबल कोहरा पडनेसे इस संसारमें अन्धकार छागया है और सैकड़ों विषमरूपी चोर प्रत्येक दि-शामें विवेकरूपी रत्नके चुरानेके लिये फिरते

है, तत्वज्ञानियोंके सिवाय ऐसा कौनसा वीर है जो उनको रणमें हरासक्ता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे द्वादशः सर्गः समाप्तः

अथ त्रयोदशः सर्गः

अथ लक्ष्मी तिरस्कार वर्णनम्।

दोहा।

तिरस्कार वर्णन कियो, लक्ष्मीको श्रीराम ॥
कहूं त्रयोदस सर्गकी, कथा यथा अभिराम ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे हे मुने। इस संसारमे अनेकों प्रकारके सुखका मूल होनेसे लक्ष्मी उत्कृष्ट मानी गई है किन्तु वास्तवमें यह लोगोंके मोह और और अनिष्टका हेतु है जैसे वर्षाऋतु की नदी, अनेकों प्रकारके

बडे बडे मलिन तरंगोंको बहातीहै उसी प्रकार यह लक्ष्मीभी उत्साह से पूर्णअनेक मनोरथों से सम्पन्न मूर्खोंको बहातीहै, इस लक्ष्मीकी बुरे आचरणवाली चिन्ता रूपी बहुतसी कन्या हैं वे सब ऐसे बढतीहैं जैसे नदीमें लहर । यह अभागी एक स्थानपर कभी नहीं रहती वरन् कुलटा स्त्रीके समान एकके स्थानसे दूसरे स्थानपर फिरती रहती है । जैसे दीपककी शिखा स्पर्श मात्रसेही दाह और काजल उत्पन्नकर देतीहै वैसेही लक्ष्मीभी स्पर्श मात्रसेही दाह उत्पन्न करतीहै, और सर्वनाशका हेतु है।

गुण और औगुणकाबिना बिचार किये. यह उसीका अवलम्बन करतीहै जो इसकी सेवा करताहै । जिस प्रकार दूध सर्पके विषको बढाताहै उसी प्रकार जो जो कर्म दोष पापको बढातेहैं वेही सब लक्ष्मीकी अधिकताके हेतु

हैं मनुष्य उसी समयतक शीलस्वभाव और कोमल रहताहै जब तक लक्ष्मी उसके पास नहीं आती (धन पानेपर मनुष्यको अभिमान होजाताहै) जो बडे बुद्धिमान् हैं जो बडे शूरहैं, जो बडे कृतज्ञ (उपकारको माननेवाले) और जो बडे कोमल स्वभाव हैं उनसबको रहितभी लक्ष्मी ऐसे कान्ति कर देतीहै जैसे धूल मणिको हे भगवन् ! यह लक्ष्मी दुख के लिये बढती है सुखके लिये नहीं जो कोई इसकी रक्षा करताहै उसका यह ऐसे नाशकर देतीहै जैसे विषकी लता अपने रक्षकको मार डालतीहै लोगोंकी निंदासे बचाहुआ धनी, अपने मुखसे अपनी बडाई न करनेवाला शूर और अपक्षपाती मालिक यह तीनों प्रकारके मनुष्य संसारमें दुर्लभ हैं (अर्थात् जो धनी होताहै लोग उसकी निन्दा विनाही कारण करते

है; जो शूर होताहैं वह अपनी बडाई अवश्य करता है,) यह लक्ष्मी दुखरूपी सर्पोंकी सघन गुफा है और मोहरूपी गजेन्द्रों-के लिये विंध्याचल पर्वतकी तटी (तलहटी) है अर्थात् जिस प्रकार सर्प सघन गुफामें और हाथी विंध्याचलकी तट भूमिमें रहते हैं उसी प्रकार दुख और मोहजाल लक्ष्मीके आश्रित हैं। यह लक्ष्मी सत्कार्य रूपी कमलोंके लिये रात्रि है, दुखरूपी कुमदोंके लिये चान्दनी और परमार्थ दृष्टि रूपी छोटे दीपकके लिये, आंधी, है अर्थात् जैसे रात्रिमें कमल मुंद जाते हैं और कमोदिनी खिल जाती है तथा आंधीसे दीपक बुझ जाता है वैसेही लक्ष्मीसे सुकृत नष्ट हो जाते हैं और बुरे कामोंका प्रकाश होता है। भ्रान्त और भयरूपी मेघोंके लिये पूर्वकी वायु, निषा-

दरूप विषके बढानेका हेतु और खेद और भयके उत्पन्न करनेके लिये सर्पिणी है जैसे पूर्वकी वायुसे वादलहो जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मीसे भ्रान्ति, भय और खेद उत्पन्न होता है। वैराग्यकी लताके लिये यह बरफ है, कामादि विकाररूप उलूकोंके लिये रात्रि है और विवेकरूपी चन्द्रमाके लिये राहुका दन्त और सुजनता रूप कमलोंके लिये चान्दनी है अर्थात् जिस प्रकार बर्फसे लता गल जाती है, रात्रिमें उल्लू बोलते हैं चन्द्रमाको राहु ग्रसलेता है और चांदनीमें कमल मुंद जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मीसे, वैराग्य ज्ञान इत्यादिक नष्ट हो जाते हैं। यह लक्ष्मी इन्द्रके धनुष्यके समान अचिरस्थायी, विविध प्रकारकी कामना ओंसे मनोहर बिजलीके समान चंचल, उत्पन्न होते ही नष्ट करनेवाली, और मूर्ख

लोगोंका आश्रय है । जैसे तरंग क्षणभरभी एक रूपसे एक स्थानपर नही ठहरती वैसे ही लक्ष्मी भी क्षणभर एक स्थानपर नहीं ठहरती। लक्ष्मी दीपककी लौके सदृश चपल है और उसकी गति और स्थिति विल्कुल नहीं जानी जाती। जैसे युद्धमें सिंहनी हाथियोंका नाश करती है वैसेही लक्ष्मी मनुष्योंका नाश करती है लक्ष्मी खड्गकी धारके सदृश तीक्ष्ण है, और क्रूर मनुष्योंका आश्रय है। सैकडों प्रकारके मानसिक दुःखोंसे भरी हुई इस लक्ष्मीमें सिवाय दुःखके मुझको किञ्चितमात्र भी सुख नहीं दीखता । इसकी सपत्नी दरिद्रा (दरिद्रा और लक्ष्मी यह विश्नुकी स्त्री हैं) जिस मनुष्यको दूर करदेती है, बड आश्चर्यकी बात है कि यह निर्लज्जा और दुष्टा उसीको आदरपूर्वक आलिङ्गन करती है।

यह लक्ष्मी मनोहर रूप धारणकर चित्तकी वृत्तियोंका अकर्षण कर लेती है तथा सर्पोंकी पंक्तिसे लपटी हुई मनोहर पुष्पलताके समान ज्ञात होती है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे महारामायणे त्रयोदशः सर्गःसमाप्तः

अथ चतुर्दशः सर्गः प्रारंभः १४.

अथ जीवित निन्दा वर्णनम्।

॥ दोहा ॥

निन्दा कीन्हों आयुकी, बहु बिधि कौशलपाल
कथा चतुर्दस सर्गकी, सुनि छूटहि भ्रमजाल ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहनेलगे, आयु पत्ताके कोने के अग्रभागमें लटकतीहुई पानीकी बूंदके समान

क्षणभंगुर है, यह उन्मत्तके समान कुसमयमें ही शरीरका त्यागकर देती है । जो मनुष्य विषयरूपी सर्पोंके संसर्गसे जर्जर चित्त है,और जिनकी आत्माके विषे बिवेकका उदय नहीं है उनकी आयु केवल दुखका मूलहै । तत्वज्ञानको प्राप्त होकर ब्रह्मपदमें बिश्राम प्राप्त कियाहै और जो हानि और लाभ दानोंमें समान है उनकीही आयु सुखका कारण है ।

हे मुनिवर ! इस परमिति स्थूल शरीरमेंही हमारा आत्मनिश्चयहै इसी कारण संसाररूपी बादलोंमें बिजुलीके समान चंचल आयुमें हमारी शान्ति नहीं अर्थात् आयु तो बिजलीके समान क्षणभंगुर है इसका क्या विश्वास !

बायुका रोकना कठिनहै किन्तु यहभी रुक सक्तीहै, आकाशका चूर्ण करना कठिनहै किन्तु यहभी चूर्ण होसक्ताहै लहरोंका गूंथ-

ना असम्भवहै किन्तु आयु किसी प्रकार स्थिर नहीं होसक्ती । जैसे शरदृऋतुका मेघ शीघ्रही दूर होजाताहै, जैसे अल्प तैल युक्त दीपक शीघ्रही बुझ जाताहै वैसे आयुभी शीघ्र नष्ट होजाती है ।

जलमे चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब (छाया) बिजलीका समूह और आकाशके कमल इनका यद्यपि पकडना असाध्यहै तथापि मैं इसका विश्वास करसक्ताहूं परन्तु आयुमें विश्वास नहीं करसक्ता जीवनके असार होनेपरभी मूढ मनुष्य यह इच्छा करताहै कि मेरी आयु बढै किन्तु वह इच्छा ऐसी दुःखका मूल है जैसे अश्वतरीको गर्भकी कामना

१ घोडा और गधीके संयोगसे जो उत्पन्न हो उसको अश्वतरी कहतेहैं यह कहाजाता है कि पेट कटानेसे यह बच्चा उत्पन्न होता है ।

हे ब्रह्मन्! इस संसारमें देहरूप लता जल के फेनके समान नाशवान् है इससे यह जीवन मुझको अच्छा नहीं लगताहै । अवश्य पानेके योग्य जो जीवन्मुक्ति सुखहै वह जिसको मिलगया उसीका जीवन सार्थकहै. वृक्ष भी जीतेहैं और पशु और पक्षीभी जीतेहैं किन्तु सच्चा जीवन उन्हींका है जिनका मन बासना- ओंके नाशसे निर्जीव होगया है अर्थात् जि- समें बासना नहीं है इस संसारमें उन्हींका जी- वन सफलहै जो पुनः जन्म नहीं धारण कर तेहैं इनको छोडकर अन्य सब प्राणियोंका जीवन बुढ्ढे गधाके सदृश है आबेबेकी (मूर्ख) मनुष्यके लिये शास्त्र भाररूप है अर्थात मूर्ख शास्त्रके पढनेमें वृथा परिश्रम करता है। विषयी मनुष्यके लिये ज्ञानोपदेश

करना निरर्थक है और शान्तिरहित मनुष्य के लिये वहां मन एक प्रकारका भार है।

जैसे बोझढोनेवाले मनुष्यके लिये बोझ दुखका हेतुहै वैसे ही मूर्खका रूप, आयु, मन, बुद्धि, अहंकार और चेष्टा यह सब उसके लिये दुःखका हेतु हैं। जिसका मन शान्त नहीं है उसकी आयु सम्पूर्ण आपदाओंका स्थान है, और रोगरूपी पक्षियोंका दृढगृह है। सर्प जिसप्रकार बलकी पवनको पीते हैं उसीप्रकार शरीररूपी गृहमें निवास कर-नेवाले विषके समान दाह उत्पन्न करनेवाले रोग आयुका पान करतेहैं अर्थात् रोग प्रति-दिन क्षीण करते चले जाते हैं। जैसे घुन पु-राने वृक्षोंको कुतर डालता है वैसेही निरन्तर होनेवाले रोगादि महादुःख आयुको नष्ट कर

देते हैं । जैसे बिल्ली मूषकपर घात लगाये रहती है वैसेही मृत्यु आयुपर घात लगाये रहती है । गन्धादि गुणोंसे युक्त प्रीतिसे शून्य और वेश्याके समान आचरणवाली वृद्धावस्था मनुष्यको निर्बल करके ऐसे नष्ट कर देती है जैसे बहुभोगी मनुष्यको अन्न । जैसे थोडे दिनमेंही परिचय पाकर सज्जन मनुष्य दुर्जनका संग अनादर पूर्वक छोड देतेहैं ठीक वैसेही यौवनास्थाभी मनुष्यका परित्याग करती है अर्थात् युवावस्था केवल थोडे दिनतक रहती है फिर मनुष्य वृद्ध होजाताहै ।

विनाशका हेतु और बृद्धावस्था और मृत्युका सहायक यमराज आयुको ऐसे चाहता है जैसे विषयीजन सुन्दरताको चाहते हैं । स्थिरतासे सदा त्यागी हुई, सब गुणोंसे रहित और मृत्युके पात्र इस आयुकी बराबर संसा-

रमें कुछ तुच्छ नहीं हैं अर्थात् आयु सबसे तुच्छ है। जैसे नदीमें तैरते हुए सर्पको पकडकर जो मनुष्य पार उतरना चाहताहै, वह अपनी मूर्खताके कारण अवश्य डूबताहै वैसेही जो संसारके पदार्थका सुखरूप जानकर उनका आश्रय लेताहै सो सुख नहीं पाता संसार-समुद्रमेंही डूब जाता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे चतुर्दशः सर्गः समाप्तः ।

अथ पंचदशः सर्गः प्रारंभः १५.

अथ अहंकार निन्दा वर्णनम्।

दोहा।

अहंकार निन्दा यथा, वर्णन किय रघुपाल॥
सोसुनि नर निर्भय रहत, निकट न आवत काल॥

श्रीरामचन्द्रजी कहनेलगे, अहंकार अज्ञानसे उत्पन्नहुआहै इस अहंकारशत्रुसे मैं अत्यंत भयभीत हूं। विविधप्रकार के रूप धारण करनेवाला यह संसार अहंकारके प्रतापसेही दीन मनुष्यों- को दोषके कोषरूपी अनर्थको देताहै अर्थात् जो अहंकार न होता तो मनुष्य बहुतसे पाप न करते। अहंकारसेही आपत्तियां उत्पन्न होती हैं, अहंकार अनेक मानसिक पीडाओंका हेतु है अहंकारसेही नानाप्रकारकी चेष्टा होती हैं और अहंकारही मेरा परम रोगहै।

हे मुनीश्वर ! चिर वैरी इस अहंकारके भयसे न मैं भोजन करताहूं और न जलपान करताहूं फिर विषय भोगका क्या कहना !

छोटे बडे विषम सब प्रकारके यावन्मात्र जितने दुःख हैं सब अहंकारसे ऐसे उत्पन्न हुए हैं जैसे खदिरके बृक्ष पर्वतसे उत्पन्न होते हैं । सुखरूप कमलोंके समदृष्टिरूप मेघोंकेलिये जैसे राहु चन्द्रमाको ग्रसलेता है, हिमसे कमल नष्ट होजाते हैं और शरत्कालमें मेघ विलीन होजाते हैं वैसेही अहंकार से सुख उत्तम गुण और समदृष्टिता नष्ट होजाती है हे मुने ! ऐसे गुणवाले अहंकारका मैं त्याग करता हूं । मैं राम नहीं हूं मुझको विषयभोगकी इच्छा नहीं है, मेरे मन नहीं है मैं बुद्धदेवके सदृश शान्तिभावसे सब लोगोंके संग आत्मवत व्यवहार करनेकी इच्छा करता हूं ।

अहंकारके वश जो कुछ मैंने भोजन किया है, वह न किया है अथवा अन्य कोई कार्य किया है वह सब असार है केवल सारपदार्थ वही है जिस्में अहंकारका लेश नहीं है।

हे मुनीश्वर! यदि अहंकार है तो मनुष्य दुःखी होता है और यदि अहंकार नहीं है तो सुखी होता है इसलिये अहंकारका न होना श्रेष्ठ है। हे मुने! अहंकारको छोडकर मैं शान्तिचित्त रहताहूं क्योंकि भोगोंका समूह तो नश्वर है अर्थात् आज है और कल नहीं है।

हे ब्रह्मन्! जबतक अहंकाररूपी मेघ छाये हुए हैं तभीतक तृष्णा (कामना) रूपी कुटजकी लता विकसित रहेंगी अहंकाररूपी मेघके शान्त होतेही कामनारूपी नवीन बिजलीकी लता बुझेहुए दीपककी लौके सदृश

शीघ्रही न मालूम कहांचलीजाती है अहंकार-रूपी विन्ध्याचलपर्वतमें मनरूपी उन्मत्त गजेन्द्र ऐसे गर्जता है जैसे मेघ बिजलीमें गर्जता है। इस शरीररूप महा बिकटबनमें जो अहंकाररूपी मृगपति (सिंह) उत्साहपूर्वक बिराजता है, उसकेही कारण यह संसार व्याप्त है। जैसे कामीपुरुष मोतियोंकी मालाको कण्ठमें धारण कर प्रसन्न होते हैं वैसेही तृष्णारूपी तागेमें गूथीहुई अनन्तजन्म परम्पराको इस अहंकारने धारण किया है।

हे मुने! इस अहंकार नामक बैरीने बिना तंत्र मंत्रही पुत्र, मित्र, और स्त्री आदिमें मोहका बन्धन बांधरक्खा है। अहंकारको मनसे दूरकरतेही सब प्रकारकी मानसिक व्यथा अपने आप शीघ्र नष्ट होजाती हैं अहंकार रूप मेघके शांत होतेही आकाशमें स्थित जो

भ्रान्तिरूप कोहरा है वह न मालूम कहां विलीन होजाता है ।

हे ब्रह्मन्! मैं अहंकार रहितहूं किन्तु अ-ज्ञान बश दुखपाता हूं, इसलिये जो कुछ मेरे लिये हितकारी है वही वर्णन करना आपको योग्य है ।

हे महानुभाव ! यावन्मात्र आपत्तियोंका स्थान, नश्वर (नाशहोनेवाला) हृदयमें रहनवाला सद्गुणोंरहित और दुखसे पूर्ण इस अहंकारका मैं त्याग करता हूं जो कुछ शेष है उसका उपदेश आप मुझको कृपापूर्वक कीजिये ।

जैसे ब्याध जाल बिछाकर पक्षियोंका बन्द करलेताहै जिससे वे अत्यन्त दुखी होते हैं वैसेही अहंकाररूपी ब्याध ने तृष्णारूपी जालडालकर जीवको बन्धन किया है जिससे

वह महा दीनहोगयाहै ।

हे मुनीश्वर ! मैंने यह निश्चय किया है कि जहां अहंकार है वहां सब आपत्ति आजाती-हैं जैसे सब नदियां समुद्रमें आ मिलतीहैं ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे पंचदशः सर्गःसमाप्तः ॥

अथ षोडशः सर्गः प्रारंभः १६.

अथ चित्तदौरात्म्य वर्णनम् ।

दोहा ।

कहूं षोडश स्सर्गमें, या विधि रघुकुल केतु ॥
बहु प्रकार वर्णन कियो, मन चंचलता हेतु ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे, हे मुनीश्वर ! यह मेरा चित्त काम, क्रोध, लोभ मोह और

तृष्णादिक दुखोंद्वारा जर्जर होगया है, और महापुरुष जो गुण, वैराग्य विचार, धैर्य, और संतोषहैं इनकी ओर नहीं जाता,सर्वदा विषयके चारों ओर भटकता फिरता है जैसे मोरका पंख वायुके लगनेसे एक जगह नहीं ठहरता है जैसे गांवका कुत्ता (रोटी न मिलनेसे) इधर उधर दूर दौडता फिरता है वैसेही यह चित्तभी वांछित पदार्थ न मिलनेसे व्याकुल होकर इधर उधर व्यर्थ दौडा फिरताहै।फिरइस मनको कहीं कुछ नही मिलता और यदि कहीं धनभी मिल जाता है तौ इसकी तृप्ति ऐसे नहीं होतीहै जैसे बांसके पिटारेमे पानी भरनेसे वह कभी नहीं भरता अर्थात् " धन प्राप्त होनेपर मनुष्यकी यही इच्छा रहती है कि और धन मिलै. कभी यह नहीं कहता कि बस अब इच्छा नहीं "

हे मुनीश्वर ! बुरी आशावोंके जालसे

बन्धाहुआ और शून्य जो यह मनहै सो कभी शान्तिको ऐसे नहीं प्राप्त होता है जैसे अपने समूहसे बिछडा हुआ मृग कभी शान्त नहीं होता। जैसे लहर चंचल होती है वैसेही मन भी है कभी स्थूल बिषयमें और कभी सूक्ष्म बिषयमें लीन रहताहै, इनको त्यागकर कभी क्षणभरके लियेभी शान्तिलाभ नहीं करता यह मन सदा बिषय बासनाओंसे खेदित होकर दशों दिशाओंमें ऐसे डोलता है जैसे रूईरूप मन्दराचल पर्वतसे मथा हुआ क्षीर समुद्रका जल मनोरथरूपी तरंगोंसे युक्त और मायारूपी मकरोंसे व्याप्त इस मनरूपी समुद्र को रोकनेमें मैं असमर्थहूं। जैसे मृग गड्ढेमें गिरनेकी शंका न करके हरी दूबकी ओर दौडता है वैसेही यह मन नरकमें गिरनेकी चिन्ता न करके बिषयोंकी ओरही दौडता है जैसे समुद्र

अपनी चंचलताका कभी परित्याग नहीं करता है वैसेही यह मन भी अपने अति चंचल पनेको कभी नहीं त्यागता है।

जैसे पिंजरामें बन्द किया हुआ सिंह स्थिर नहीं होता वै वैसेही चिन्ताओंके समूहसे घिरा हुआ यह मन कभी शान्तिलाभ नहीं करता है। जैसे राजहंस पानीमेंसे दूधको शीघ्र अलगकर लेता है वैसेही मोहरूपी रथमें चढा हुआ यह मनभी समतासुख (आत्मज्ञान) कोशरीरसे हरलेता है । हे मुनींद्र ! अनेक प्रकारकी कल्प-नाओंकी सय्यापर सोती हुई चित्तकी बृत्ति इसी प्रकार नंहीं जागती हैं इसीसे मैं अत्यन्त व्या-कुलहूं । हे मुने ! जैसे सूखे तृणको अग्नि जलाता है वैसेही निरन्तर क्रोध से युक्त और चिन्तारूपी ज्वालाओंसे व्याप्त यह चित्तरूप अग्नि मुझको दग्ध करती है । हे ब्रह्मन् ! जैसे

क्रूर कूकर कूकरी सहित मृतके देहका भक्षण करता है वैसेही इस क्रूर मनने तृष्णारूपी स्त्री सहित मुझ ज्ञानहीनका भक्षण कर लिय है। हे ब्रह्मन् ! जैसे तीरपर उगा हुआ वृक्ष नदीके वेगसे उखडकर बह जाता है वैसेही तरंगके सदृश चंचल और तीव्र गतिको धारण करने-वाले इस अज्ञानी चित्तने मुझको बहादिया है। जैसे बांधसे जल रुक जाता है वैसेही संसार सागरसे पार होनेका उत्सुक मैं हूँ इसचित्तसे रुकाहूँ अर्थात दुष्टचित्तके इसकारण मैं संसारसे पारनहीं होसक्ता।जैसे कूआकी ढेंकरी बारम्बार

१ ढेंकरी उस लम्बी लकडीको कहते हैं जो कुँए पर लगाई जाती है, उसके उस सिरे जो कुएँके बाहर नीचे की ओर रहता है उसमें एक बडा पत्थर बांध देते हैं और ऊपरवाले सिरेपर रस्सी बांधकर उसमें एकपात्र बांध देते हैं, पानी भरते समय उस रस्सीको पकडकर नीची ऊची करते रहतेहैं.

रस्सी द्वारा ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर जाती आती रहती है वैसेही मैंभी ऊर्ध्वगामी और कभी अधोगामी मनकी बुरी बासनाओं से लिपटाहुआहूं जैसे बालक अपनी पर-छाहींको बैताल समझकर भय मानता है किन्तु समर्थ होनेपर उसे बेतालका भय जा-ता रहता है वैसेही चित्तरूपी बैतालने मे-रा स्पर्श किया है उससे मैं भयको पा-ताहूं इसलिये वही कहियें जिससे चित्तरूपी बैताल नष्ट हो जाय । मनरूपी भूत जि-सने मुझको पकडा हैं यह बडा कठोरहै, यह अग्निसेभी अधिक जलानेवालाहै है इस्का उल्लंघन करना पर्वत फांदनेसे भी कठिनहै और यहबज्रसे अधिक दृढ है । यह चित्त भोगबिलासके कामोंकी और तौ ऐसे विगरता रहता है जैसे पक्षी मांसपर झपटता है

और सत्कार्योंसे ऐसे बिरक्त रहता है जैसे बालक खिलौना छिपा देनेसे होजाता है। हे तात! जैसे अति गम्भीर समुद्रमें बडी बडी लहरें भँवर और बडे२ शरीर वाले जन्तु उसके जलको चलायमान करते रहतेहैं उसीतरह जड प्रकृति, विपुल वृत्ति, और कामादि शत्रु, क्षुभित मनरूपी समुद्रको चलायमान करतेरहतेहैं हे साधो! समुद्रका सोख लेना सुगम है, बडे भारी सुमेरु पर्वतका उखाड डालना कुछ कठिन नहीं है और अग्निका भोजन करना सरलहै परन्तु चित्तका बशकरलेनासबसे कठिन कार्य है। सब विषयोंका कारणचित्तही है चित्तके रहतेही तीनों जगत्का अस्तित्वहै चित्तके क्षीण अर्थात् बासना रहित होनेपर जगत् नष्ट होजाताहै इसलिये रोगके सदृश इस चित्तकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करनी.चाहिये।

हे मुने ! मैं यह मानताहूं कि इस चित्तसे ही सम्पूर्ण सुख और दुःख ऐसे उत्पन्न हुए हैं जैसे पर्वतसे बन चित्तके क्षीण होनेपर वे अपने आप क्षीण होजाते हैं । जिस चित्त के जीतनेपर महात्माओंने सद्गुणोकी प्राप्तिकी आशा कीहै उसी चित्तरूपी शत्रुको जीतने के लिये मैं कटिबद्धहूं ॥ जैसे चन्द्रमाको बादल अच्छे नहीं लगते वैसेही वैराग्य प्राप्त होनेसे मुझको भी मूर्ख और मलिन पुरुषोंको आनन्द देनेवाली लक्ष्मी अच्छी नहीं लगतीहै ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणेषोडशःसर्गः समाप्तः१६
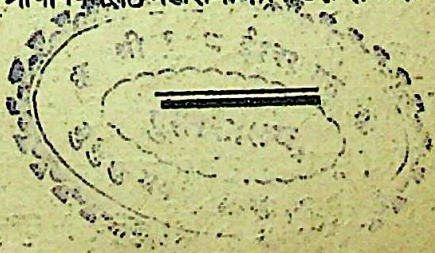
अथ सप्तदशः सर्गःप्रारंभः १७.

अथ तृष्णा गारुडी बर्णनम् ।

सोरठ--

याविधि रघुकुल चन्द, तृष्णागति बर्णन कियो
सुनिहहिं सज्जन बृन्द, छुटिहहिं पाप त्रितापदुख

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि, इस संसारमें तृष्णाका दमन करना अत्यन्त कठिन है, यह तृष्णा आत्मतत्वके प्रकाश को रोकने के लिये घोर अन्धकारमय रात्रि है जिस्मे कामक्रोध, मोहादिक उलूक जीवरूपी आकाशमें बिहार करते हैं जैसे सूर्यकी भीषण किरणमाला सरस और कोमल पंक (कीच) को शुष्क करदेती है वैसेही हृदयमें दाहकर

नेवाली इस चिन्ताने स्नेह और दयायुक्त जो मैं हुं उसको शुष्क करदियाहै अज्ञानरूपी अंधकारसे आच्छा दित जो यह मेरा चित्तरूपी महा बिकट जंगल हैं उसमें आशारूपी पिशाचिनी घोररूपसे नाच रही है जिसप्रकार लहैरं समुद्रको मथती हैं उसीप्रकार तृष्णाभी मनको अत्यन्त क्षुभित करतीहै । अनेक बिषयोंमें संचार करनेवाली तृष्णानदीकी तरह हमारे शरीररूपी पर्वतसे निकलती है त"ा मिथ्याभाषणादि कर्महो इस नदीकी लहरोंकी घोर गडगडाहट है । इस में प्रवृत्तिही गहरी लहर हैं जिस प्रकार पुराने तिनुके को आंधी उडाकर कहींका कहीं लेजाती है वैसेही तृष्णाका बेग उसकी निवृत्तिके लिये उद्यत चित्तरूपी चातकको उडाये उडाये फिरती है बिवेक

और वैराग्यादि जिन जिन उत्तमगुणोंका मैं आश्रयलेता हूं उन्हीको यह तृष्णा ऐसे काट-देती है जैसे मूषक उत्तम बीणाको कुतर डालते है। जिसप्रकार पानीके भंवरमें पुराना पत्ता चक्करखाता है, वायुके प्रचण्ड बेगमें जैसे पुराना तृण उडता है और आकाशमें जिसप्रकार शरदृऋतुका बादल भ्रमण करता है उसीप्रकार मैं भी चिन्तारूपी चक्रमें भ्रमण करता हूं। जैसे पक्षी जालमें फंसजाता है और उड नही सक्तावैसेही हम चिन्तारूपी जालमें फसे हुये हैं और आत्मपदको पाने में असमर्थ हैं।

हे तात ? इस तृष्णरूपी ज्वालाने मुझको ऐसा भस्म कर दिया है कि अमृतसेभी उसके दाहके शान्त होनेकी आशा नहीं है। जैसे पागल घोड़ीयहांसे वहां और वहांसेयहां दौडती

फिरती हैं वेसेही यह तृष्णाभी दिशाओंके अन्ततक भ्रमण करती रहतीहै!जैसे कूपकी रस्सी कभी जलको स्पर्श करती है कभी ऊंचेको और कभी नीचेको जाती है इसी तरह तृष्णा भी कभी बिषयमें आसक्त होती है कभी ऊपर और नीचेको जाकर स्वर्ग और नरकमें जानेका हेतु होती है और कभी संचलन, अस्थिरता, और अज्ञानकी गांठ देहके भीतर लगाती है इसलिये यह तृष्णा किसी तरह नहीं कट सक्ती हैं, और मनुष्यको इस प्रकार भ्रमाती है जैसे बैलकी नाथ बैलको घुमाती हैं।

जैसे व्याध पछियोंमें जाल बिछाता है वैसेही इस तृष्णाने पुत्र, मित्र, स्त्री आदि रूपी जाल इस संसारमें फैलाया है। जैसे अन्धेरी रातमें धीर मनुष्यकोभी डर लगता है वैसेही यह तृष्णा यद्यपि मैं धीरहूं मुझको भयभीत

करती है मेरे नेत्रहैं तौभी मुझको अंधा करतीहै और मैं आनन्द सहितहूं तो भी मुझको दुखित करती है। जैसे काली सांपेणी तनक छूटतेही मनुष्यको काटलेती है वैसेही यह कुटिल कोमल स्पर्शवाली विषयरूपी विष देनेवाली तृष्णा भी तनक स्पर्श करनेसे डस लेती है । दुर्भाग्य देनेवाली मायासे भरे हुए कामोंको करनेवाली, दीनताको ग्रास करनेवाली यह तृष्णाकाली राक्षसीके सदृश मनुष्यके हृदय को बेधन करती है। हे ब्रह्मन्! आलस्यसे प्रयुक्त शरीररूपी कोशमे बैठी हुई तृष्णा अच्छी नहीं लगती है।

पर्वतकी गुहासे उत्पन्न तृष्णारूपी लता निरन्तर अत्यन्त मलीन (नीचप्रकृतिका हेतु) विषम उन्मादको देनेवाली, दीर्घतंत्री (दूरतक फैलीहुई) और घनस्नेहा(प्रबलस्नेहका कारण)

है। यह तृष्णा क्षीण लताके सदृश (उत्तमगुण रूपी) फलोंसे शून्य, निश्फल, व्यर्थ बढीहुई अमंगल करनेवाली दुख दायनी और कठोरहै। वृद्ध वेश्याके सदृश यह तृष्णा मन हरण करनेमें असमर्थ होनेपरभी चारों ओर दौडती है किन्तु कुछ नहीं पाती।.बिबिध प्रकारके रसों से पूर्ण इस महान् संसार समूहकी भोगरूपी नृत्यशालाओंमें यह तृष्णा वृद्धनर्तकी है। तृष्णारूपी विषलता इस संसाररूपी जंगलमें लहलहारही है बृद्धावस्था इसका पुष्प है और उन्नति और अवनति इसके फल हैंचिन्तारूपी चपल मोरनी बर्षाकालमें (मोहके समय) नृत्य करती है बिवेकरूपी प्रकाश आने पर शान्त होजाती है, और दुर्गम स्थानपर भी अपना पद (न प्राप्त होनेवाले विषयमें आसक्ति) रखती है। जैसे बर्षाकालकी

नदी बीचबीचमें जलकी प्राप्तिसे अत्यन्त बढ जाती है वैसेही तृष्णा भी बीचबीचमें सन्तोष प्राप्त करके क्षणभरके लिये उत्साहित होजाती है ।

जिस प्रकार भूख प्याससे व्याकुल पक्षिणी फल रहित वृक्षको छोडकर दूसरे पर उडजाती है उसीप्रकार यह तृष्णारूपिणी चपल वानरी अलंघनीय स्थान (दुष्प्राप्य वस्तु) में भी पद रखती है, तृप्त होने पर भी अन्य फलोंकी आकांक्षा करती है और क्षणभर भी एक स्थानपर नहीं ठहरती हैं । तृष्णा दुर्लभ वस्तुमें भी आसक्त होती है और बहुत कालतक एक वस्तुमें आसक्त न रहकर अनेक वस्तुओंका अवलम्बन करती है इस तृष्णाके सम्बन्धमे केवल ईश्वर की माया प्रबल है । हृदय कमल की तृष्णारूपी भ्रमरी

क्षणभरमें पातालमें जाती है क्षणभरमें आकाशमें चढ जाती है और क्षणभरमें दिशाओंकी कुंजोंमें भ्रमण करने लगती है। संसारके सब दोषोमेंसे यह तृष्णाहीं अधिक दुख देती है जो अन्तःपुरमें रहता है उसको भी यह अत्यन्त कष्ट देती है अर्थात् जीवको भी यह दुख देती है।

मोहरूपी कोहरेसे युक्त यह तृष्णारूपी मेघोंकी मालापरमप्रकाशका रोककर अत्यन्त जडता प्रदानकरती है। हिमके सदृश मेघवर्षनेवाली मेघमाला सूर्यको ढककर अत्यन्त शीत गेरती है और मोह अर्थात् अज्ञानसे व्याप्त तृष्णा आत्मतत्वको ढककर मनुष्यों का अज्ञान अधिक बढाती है जैसे इन्द्रका धनुष चित्रचित्रबणोंसे युक्त प्रत्यंचाहीन शून्य स्थानमें रहता है वैसेही तृष्णा भी अनेक प्रका

रके बिचारों से युक्त आश्रयहीन और हृदयके शून्यस्थानमें रहतीहै यह तृष्णा विवेकादिगुण रूपी खेतीके लिये वज्रके तुल्य है ज्ञानरूपी कमलोंके लिये हिम (पाला) और आज्ञनरूपी अंधकारके लिये जाडोंकी रात्रि है।

यह तृष्णा संसार नाटककी नटी है। कार्य रूपी घोंसले की पक्षिणी है मनरूपी बनकी हरिणी है और कामरूपी संगीत की बीणा है। व्यवहार समुद्रकी तरंग है मोहरूप हस्ती के बांधनेकी शृंखला (जंजीर) संसार बटवृक्ष की सुहावनी लता है और दुखरूपी कुमुदोंके लिये चांदनी है। यह तृष्णा वृद्धावस्था औ मृत्युके कष्टोंके लिये रत्नोंसे भरी पिटारीके तुल्य है और मानसिक और शारीरिक बिलासों के लिये उत्तम बिलास करनेवाली रमणी है तृष्णा आकाशमार्गके तुल्य है, जैसे कभी

प्रकाश कभी अंधकार और कभी कुहरा गिरना यह आकाशके धर्म है वैसेही कभी बिबेकरूपी प्रकाश और कभी अज्ञानरूपी अंधकार यह तृष्णाके धर्म हैं। यह तृष्णा शरीर के परिश्रमोंको शांतकरनेके लिये ऐसे शान्त होजाती है जैसे घोर अंधकार युक्त कृष्णपक्षकी रात्रि राक्षसोंकी निवृत्तिके लिये होती है। जिसप्रकार विष विशूचिका (हैजा) रोग जबतक शांत नही होता उस समयतक रोगी बोलनेमें असमर्थ और जडवत् मूर्छित रहता है उसीप्रकार जबतक तृष्णा निवृत्त नही होती तबतक संसारी पुरुष अध्यात्मशास्त्रमें गुंगा, व्याकुलचित्त और मोहग्रस्त रहता है। चिन्ताके त्यागतेही यह संसार सम्पूर्ण दुखोंको त्याग देता है, चिन्ता त्यागदेनाही तृष्णारूपी विशूचिका का

नाश करनेवाली उपाय हैं जैसे सरोवरकी म
छली तृण, पत्थर, काष्ठ आदि सब वस्तुओंको
मांस समझकर ग्रहण करतीं हुई इधरउधर दौड
ती हैं तृष्णाभी वैसीही है अर्थात् अन्तसमय
पर्यन्त सब विषयोंमें लीन रहती है । जैसे
सूर्यकी किरण कमलको ब्याकुल करदेती है
वैसेही रोग यंत्रणा, कामिनी और तृष्णा
गम्भीर (धीर) मनुष्यकोभी बिचलित करदे-
ती है । तृष्णा बांसकी लताके समान भीतरसे
पोली, गांठदार, बडे अंकुर वाली कांटेदार
और मुक्तामणिसे प्रेमकरनेवाली है (तृष्णाका
अंकुर चिन्ता, कण्टक बिद्वेष, मुक्तामणि,
तृष्णाकी सामग्री है मुक्तानामक रत्न बांससे
उत्पन्नहोता है)

अहो ! कैसे आश्चर्यकी बात है कि बुद्धि-
मान् ज्ञानीगण इस दुश्छेद्य तृष्णाकोभी विवेक

रूपी विमल कृपाणसे छेदन कर देते हैं। हे ब्रह्मन् । हृदयमें स्थित यदि तृष्णा जितनी तीक्ष्ण है न तो उतनी खड्गकी धार तीक्ष्ण है, न वज्रकी किरण तीक्ष्ण है और न तप्त-लोहेके कण उतने तीक्ष्ण हैं तृष्णासे ऐश्वर्य और उज्वलता होती हैं किन्तु परिणाम उस-का कष्टदायक और मलीन होता है तथा यह तृष्णा अन्तमें दाह उत्पन्न करनेवाली है । सुमेरुके तुल्य स्थिर (अत्यन्त गभीर) अत्यन्त बुद्धिमान्, शूरवीर पुरुषको यह एक तृष्णाही क्षणभरमें तृणसमान कर देती है। बडे बडे वनोंसे युक्त घनीलता और धूलिसे व्याप्त अंधकार हिमानी संपन्न भयंकर वि-न्ध्याचलकी तटी और तृष्णा दोनों एकसी है क्योंकि तृष्णा नानारूपसे विस्तीर्ण और गहन अर्थात् दुर्लक्ष्य है अज्ञान इसकी हि-

मानी (कुहरा) इसमें भीषणताभी है यह तृष्णा वैराग्यसे निवृत्ति पाती है और किसी उपायसे इसकी निवृति नहीं होती है जैसे अन्धकारका नाश प्रकाशसे होता है और किसी से नहीं होता तृष्णारूपी हल है जो गुणरूपी पृथ्वीको खोदडालता है ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणे सप्तदशः सर्गः समाप्तः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशः सर्गः १८.

अथ देहनैराश्य वर्णनम्

सोरठ-

बहुबिधि देह निरास,बर्णन किय रघुवंसमणि ॥
जो सुनि ज्ञान प्रकाश,होत कहौं पावन चरित॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि अनेक प्रकारके बिकारोंसे युक्त, मांस मंजासे पूर्ण और क्षणभंगुर जो यह देह संसारमें दीखता है यह भी केवल दुखका हेतु है। यह शरीर, अज्ञ है न तज्ज्ञ अर्थात् न जड है और न यह चैतन्य है। यह शरीर थोडेही में सुखी हो जाता है और थोडेही में दुखी हो जाता है इसलिये इसके समान नीच, शोचनीय और गुणहीन कोई अन्य पदार्थ नहीं है।

यह देह वृक्ष रूप है. भुजा इसकी शाखा हैं, अंगुल इसके पत्र हैं, जंघा इसके खम्भ हैं और विषय बासना इसकी जड है, अनेक प्रकारके सुख दुख इसके फूलहैं, इसमें तृष्णा रूपी घुन लगाहुआहै जो रातदिन इसदेहरूपी बृक्षको खाता रहता है, इस देहमें नेत्ररूपी भ्रमर हैं, शिररूपी बडे बडे फल हैं, पक्षियों

के रहनेके लिये कर्णरूप घोसले हैं । ऐसे शरीररूपी वृक्षमें तृष्णारूपी विषसे भरी हुई सर्पिणी निवास करती है जो कोई कामनाओंके लिये इस वृक्षका आश्रय लेता है उसको यह तृष्णारूपी सर्पिणी डस लेती है, और वह उस विषसे मरजाता है, हे तात ! संसार-रूपी समुद्रसे पार होनेके लिये बार बार हो-नेवाली इस शरीररूपी नौकामें कौन प्राणी आत्मभाव करसक्ता है ।

इंद्रियरूपी अनेक गर्तोंसे युक्त और रोम-रूपी असरंव्यवृक्षों सहित इस देह नामके शू-न्य बनमें चिकराल तक निःशंक वास कर-नेका किसको विश्वास है मांस नाडी हड्डी-योंसे व्याप्त और, असार जो यह देहरूप नगर है इसमें मैं विलावके सदृश रहताहूं । संसाररूपी जंगलमें उत्पन्न, चिन्तारूपी लता-

ओंसे शोभित, दुखरूपी घुनोंसे कुतरा हुआ, तृष्णारूपी सर्पिणींका गृह कोपरूपी काकों (कौवों) का घोंसला, हास्य और पुण्यरूपी पत्रोंका उत्पत्तिस्थान, कान्ति युक्त, शुभ, और अशुभ फलोंसहित, सुन्दर स्कन्धरूपी शाखाओं सहित, हस्तरूपी गुच्छेसे सुन्दर आशारूपी पवनसे काम्पित, सब इन्द्रियरूपी पक्षियोंका अधार, उत्तम जंघारूपी स्तम्भसे ऊंचा उठाहुआ, काम नामक पथिक द्वारा सेवित, दीर्घ केशरूपी तृष्णोंकी पक्तियोंका शिरपर धारण करनेवाला, अहंकाररूपी गीधोंका घोसला, उदररूपी कोटर युक्त, वासनारूपी जालोंसे बहु मूल्य होनेके कारण उखाडके अयोग्य, और परिश्रमसे विरस यह शरीर रूपी बडका वृक्ष मेरे सुखके लिये नही है ।

हे मुनीश्वर! अहंकाररूपी गृहस्थका बडाभारी घर जो यह शरीर है सो चाहै गिरपडै अथवा स्थिर रहै मुझको इससे क्या! इंद्रियरूपी पशु जिस्में बंधे है राग (अनुराग और चिन्ता) रूपी गारेसे जिसके सम्पूर्ण स्थान लिप्त हैं और तृष्णारूपी बलवती स्त्री जिसकी स्वामिनी है ऐसा जो शरीरूपी गृह इसकी मुझको इच्छा नहीं है विशाल आयुरूपी बन्धनयुक्त रुधिररूपी पानीसे कीचड सहित और जरा रूपी चूनेसे धवल (सफेद) शरीररूपी गृह मुझको इष्ट नहीं है। चित्तरूपी सेवककी बडी बडी चेष्टाओंसे स्थित और मिथ्या और मोह रूपी खम्भोंसे युक्त यह शरीररूपी गृह मेरा इष्ट नहीं है। दुखरूपी बालक जिस्में रुदन करते हैं सुखरूपी सुन्दर शय्या जिस्में बिछीहै और दुष्ट चेष्टारूपी जिस्में दासी हैं ऐसे शरी,

रूपी गृहकी मुझको इच्छा नहीं है । जिसके ज्ञानरूपी झरोखोंमें बैठकर बुद्धिरूपी स्त्री क्रीडा करती है और चिन्तारूपी कन्या जिस में निवास करती है ऐसा शरीररूपी गृह मुझ को इष्ट नहीं हे केश जिसकी छत है, और कु-ण्डलोंसे युक्त दोनों कान जिसके ऊपरके अटा हैं, और अंगुलीरूपी काठकी पुतलियों से सजा है ऐसा शरीररूपी गृह मुझको अभी-ष्ट नही है ।

क्षुधारूपी कूकरी ने जिसको भीतरसे व्या कुल कर दिया है और प्राणरूपी प्रभंजन जिस्में व्हां व्हां शब्द करते है ऐसा शरीररूपी गृह मुझको इष्ट नहीं है, जो वायुके निरन्तर आने और जानेसे व्यग्र है और इंद्रियरूपी जिस्में बिशाल झरोखें हैं ऐसे शरीररूपीगृह की मुझको आकांक्षा नहीं है जिव्हारूपी

बानरीसे आक्रमण किया गया, मुखरूपी द्वारसे अतिभयंकर और दांतरूपी हड्डी जिस्में देख पडती हैं ऐसा शरीर रूपी गृह मेरा इष्ट नहीं। हास्यरूपी दीपकसे जो कभी प्रकाशित हो जाता है और कभी शोक और दुखरूपी अंधकारसे व्याप्त हो जाता है। सम्पूर्ण रोगोंका आश्रय, सम्पूर्ण मानसिक व्यथाओंसे परिपूर्ण और खालकी सुकडन और सफेद केशोंका नगर यह शरीररूपी गृह मेरा इष्ट नहीं है। यह देहरूपी शून्य बन मुझको इष्ट नही है क्योंकि यह इंद्रियरूपी भालुओंसे अति भयानक है। तथा इसमें निस्साररूपी बडी बडी गुफा हैं और इसके बाम, दक्षिण और अवयवरूपी निकुंज अज्ञानरूपी अंधकार व्याप्त है।

हे मुनिश्वर! जिसप्रकार दुर्बल मनुष्य

कीचडमें फसे हुए हस्तीका उद्धार करनेमें असमर्थ होता है उसी प्रकार मैं भी इस शरीरको धारण करने में असमर्थहूं । लक्ष्मी राज्य देह और विषय चेष्टा इनसे क्या लाभ है क्योंकि थोडेही दिनमें काल इस सब को काट डालता है हे मुनीश्वर, इस रक्त मांसमय नश्वर देहकी बाह्य और अभ्यन्तर विवेचना करके बताइयेकि इसकी रमणीयता क्या है ।

हे तात ! यह शरीर मृत्युके समय जीवके संग नहीं जाता है फिर बतलाइये कि ऐसे कृतघ्न शरीरमें बुद्धि मान मनुष्यका क्या विश्वास होसक्ता है ? मस्त हाथीके कानके अग्रभागके सदृश चंचल और पतनोन्मुख जलकी बुन्दके समान क्षणभंगुर यह शरीर जबतक मेरा त्याग करै

उससे पूर्व मैं इसकात्याग करदूंगा प्राणरूपी पवनसे चंचल कोमल, स्वभावसेही क्षुद्र कटु और निरस यह शरीररूपी पत्र मुझको इष्ट नहीहै। चिरकालतक भोजन और पान करके भी यह कोमल छोटे पत्ताके समान कृश हो जाता है और बिनाशकी ओरही जाता है। भाव और अभावमय उन्ही उन्ही सुखों और दुखोंको पुनः पुनः अनुभव करता हुआ भी यह देह लज्जित नहीं होता है बहुतकालतक प्रभुता करनेपर और ऐश्वर्य भोगकरनेपरभी यह शरीर न बढता है और न स्थिर रहता है फिर ऐसे शरीरके पालन करनेसे क्या प्रयोज न ? यह शरीरधनी और निर्धन दोनोंके लिये समान है इसको विशेष ज्ञान नहीं है, यह वृद्धा- वस्थाके समय वृद्ध होजाता है और मृत्यु के समय मैं मृत्युको प्राप्त होता है। इस सं-

साररूपी समुद्रमें भस्मकरनेके योग्य बहुत से शरीररूपी काष्ठ बहरहे है, उनमेंसे कोई कोई मनुष्यका देहभी है । बिषयरूपी कीचडमे फंसाहुआ सहसा जराग्रस्त यह शरीररूपी मण्डूक (मैंढक) नहीं मालूम शीघ्र कहां और कैसे चलाजाता है, शरीरूरपी पवनोंके समग्र कार्य निस्सार (असार) हैं वे पवन रजोगुणरूपी मार्गसे बहरहे हैं किन्तु किसीको नहीं दीखते । हे भगवन् ! वायु, दीपक और मन इतकी गति (उत्पत्ति और बिनाश) ज्ञात होते हैं किन्तु इस शरीरकी गति किसीको मालूम नहीं होंती हैं । जो पुरुष शरीरको अधिककालतक स्थिर रहनेवाला और जगत् स्थिर मानते हैं वे मोहरूपी मदिरासे उन्मत्त हैं उनको पुनः पुनः धिक्कार है ।

हे मुनिवर ! नतो देहका मुझसे उम्बध हैं

और न मेरा देहसे सम्बन्धहै यह बिचार करके जो जिनने मनमे शान्तिलाभ कीहै वही मनुष्य पुरुषोंमें श्रेष्ठहैं। पदपदपर मान और अपमान तथा बिबिध प्रकारके लाभोंको दिखाकर जिनमें मनुष्योंके मन हरण करनेकी शक्ति हैं ऐसी अज्ञान दृष्टि देहात्मवादी मनुष्यको न छकर देती है। शरीररूपी गढमे शयन करने वाली कोमलाङ्गी अहंकार जनित तृष्णारूपी पिशाचीने हमको कपटसे छल लियाहै। हाय बडे शोककी बातहै कि शरीरकी स्थिरतामें विश्वास करनेवाली मिथ्या ज्ञानरूपी दुष्ट राक्षसीने दुर्वल, असहाय सद्बुद्धिको ठगलिया है।

इस दृश्य जगतमें कोई वस्तु सत्य नहीं हैं फिर वडे आश्चर्यकी बातहै कि मनुष्य इस शरीरमें क्यों विश्वास करतेहैं। कुछ दिनमें

कर यह शरीररूपी पत्ता अपने आप ऐसे गिर पडताहै जैसे झरनेसे जलका विन्दु स-मुद्रके फेनके समान शीघ्र ध्वंस होनेवाली और असार यह शरीर भीषण सांसारिक कार्यों के चक्रमें वृथा स्फुरित हो रहाहै, हे द्विज यह शरीर मिथ्या ज्ञानका परिणाम है स्व-प्नके तुल्य भ्रान्ति मय है और इसका नष्ट होना प्रत्यक्ष है इसलिये इस शरीरमें मेरी आस्था नहीं है। बिजुली, शरदृतुके मेघ और गंधर्व नगरोंकी स्थिरता जिसने निश्चय करली है वही इस देहकी स्थिरताकाभी बि-श्वास करसक्ता हैं? सब दोषोंके मूलकारण इस शरीरको तृणके समान त्यागकर मैं इस समय अत्यन्त सुखी हूं

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे अष्टादशः सर्गः १८॥

अथ एकोनविंशः सर्गः १९.

अथ बाल्यावस्था वर्णनम् ।

दोहा-

सिसुपन जिमि बर्णन कियो,बहुप्रकार रघुनाथ।
सुनिसप्रेम सज्जन लहहिं,चारिहु फलनिजहाथ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले जिसने संसारसारगमें जन्म पाया है उसको बाल्यावस्था प्राप्तहुई है सोभी परम दुःखका हेतु है। असामर्थ्य,नाना-प्रकारकी विपद् तृष्णा, मूकता, मूढबुद्धि, क्रीडादिमें अत्यन्त कामना, चपलता और कातरता यह सब बाल्यावस्थामें उत्पन्न होतेहैं। जिसप्रकारहस्ती लोहेके स्तम्भसे बंधाहुआ विविध प्रकारकी दशाओंको प्राप्त होते हैं वैसेही बाल्यावस्थामें बंधकर क्रोध रोदन, दौर्मनस्य,

दीनतासे अति जर्जर दशाओंको प्राप्त होता है जो जो चिन्ता वाल्यावस्थामें हृदयको पीडितकरतीहैं वे युवावस्था,जरा, रोग, बिपद तथा मृत्युमेंभी मनुष्यको दुख नहीं देती हैं। बाल्यावस्थाके आचरण मृत्युसेभी अधिक दुःखदायक हैं, सब लोग उसको निरादर करते हैं वाल्यावस्था और पक्षियोंके कार्य समान है अर्थात् बाल्यावस्थामें मनुष्य पशुओंके समान होताहै। बाल्यावस्थामें अज्ञानके बश, जल; अग्नि और बायु आदिसे जो जो दुःख भोगने पडते हैं क्या वैसा विपत्तिमेंभी किसीको भोगना पडता है। बालक, खेलकूद, बुरे व्यसन बुरी चेष्टाओं और बुरी इच्छाओंमें बलपूर्वक प्रवृत्त होनेके लिये महाअज्ञानका परिचय देता हैं। जितने दोषहैं, जितने दुराचार हैं और जितनी भयंकर मानसी व्यथा हैं वे सब

वाल्यावस्थामें ऐसे स्थित रहतीहैं जैसे अंध-कारमय गढोमें उल्लू रहते हैं । हे ब्रह्मन् ! जो अज्ञानी मनुष्य यह कल्पना करते हैं कि बाल्यावस्था रमणीय (सुन्दर) है उनमूढ बुद्धि अज्ञानी मनुष्योंके लिये धिक्कार है। जिस अवस्थामें चित्त सम्पूर्ण व्यवहारोंमें डामडौल रहताहै और जो जगत्में अमंगल है वह अवस्था किसप्रकार सन्तोष दायक होसक्तीहै ।

हे मुनीश्वर ! सब जीवधारियोंका मन, अन्य अवस्थाओंकी अपेक्षा बाल्यावस्थामें दशगुण अधिक चंचल रहताहै । मन तो स्वभावसेही चपलहै और बाल्यावस्था इस-सेभी अधिक चंचलहै जब यह दोनों मिल जातेहैं तब इनके बीचके अनर्थोंसे कौन रक्षा करनेमें समर्थ है।

हे ब्रह्मन्! कामिनियोंके कटाक्ष, बिजुली, अग्नि और तरंगोंने बाल्यावस्थासेही चंचलता सीखीहै अर्थात् बाल्यावस्था इनसेभी अधिक चपल है। बाल्यावस्था और मन सब समय और सब कार्योंमें सहोदर भ्राताओंके सदृश मालूम होतेहैं तथा इन दोनोंकी स्थिति क्षणभंगुरहै जैसे मनुष्य धनी पुरुषका आश्रय लेतेहैं वैसेही जितने दुःख हैं, जितने दोष हैं और जितनी मानसी पीडा हैं सब बाल्यावस्थाका आश्रय लेती हैं। यदि बालक प्रति दिन नवीन प्यारे पदार्थ नहीं पाताहै तो उसकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय होजाती है। बालक थोडेहीमें प्रसन्न होजाताहै और थोडहीमें क्रोधित होजाताहै और कुत्तेके सदृश सदा अपवित्रस्थानोंमें क्रीडा करताहै। सदा आंसुओंसे भिगाहुआ, कीचडसे लिपटा

हुआ और अचेतन यह बालक ऐसे रहता है जैसे वर्षासे भीगी हुई तप्तभूमि । भय, आहार, चपलता, देखी हुई और बिना-देखी बस्तुकी अभिलाषा करना और कातरता यह बालकके धर्महैं केवल दुखके लियेही शरीर इस बाल्यावस्थाका भोगकरता है बलहीन बालक जब अपने इष्टपदार्थको नहीं पाता है तो उसके हृदयमें बडा सन्ताप होता है । जो दुखबालकों को होताहै वह किसीको नहीं होता है इस दुखका मूल दुष्टोंकी कुत्सित चेष्टा असद्‌ व्यवहार और ठगनेकी वक्र युक्तियां है ।

जिस प्रकार ग्रीष्मसे वनकी भूमि तप्तरहती है उसीप्रकार अपने मनोरथोंमें लीन बलवान् मनद्वारा बालक नित्य परि तप्त रहताहै जब बालक पाठशालामें जाताहै तो उसको

विषके समान भयंकर ऐसी पीडा होतीहै जैसे शृंखलासे बंधे हुए हस्तीको। विविध प्रकारके मनोरथोंसे पूर्ण, मिथ्या पदार्थोंकी कल्पना करनेवाली और कोमल प्रकृति यह बाल्यावस्था केवल अत्यन्त दीर्घ दुःख-का हेतु है जिस बाल्यावस्थामें बालक मूर्खताके कारण भुवनका भोजन करन चाहताहै और आकाससे चन्द्रमा उतारनेकी इच्छा करताहै वह किसप्रकार सुखका कारण होसक्ताहै। हे महामते! बालक और वृक्षमें क्या भेद है क्योंकि दोनो शीत और धूपकी पीडाको तो मनमें जानते हैं किन्तु उससे अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं। भयसे व्याकुल होकर और भूखके समय बालक पक्षियोंके समान पंख फैलाकर उडनेकी इच्छा करताहै। बाल्यावस्थामें गुरु, माता, पिता

अपरिचित मनुष्य और बडे बालकसे भय होताहै अतएव बाल्यावस्था भयका स्थानहीहै हे महामुने ! जहां सम्पूर्णदोषोंकी दशाओंसे अंतःकरण मलिन है और जो अविवेकरूपी बिलासी पुरुषोंका आश्रय है ऐसी बाल्यावस्था संसारमें किसीको प्रसन्न नहीं करसक्ती है।

हे मुनीश्वर ! यह अत्यन्त मूर्खअवस्था है, इस अवस्थावाला कभी कहता है हे पिता ! मुझको बरफका टुकडा मूनदे कभी कहता है चन्द्रमाको उतारदे, यह सब मूर्खताके बचन हैं इस लिये ऐसी मूर्खावस्थाको मैं अंगीकारनहीं करता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे एकोनविंशःसर्गः ०

अथ विंशः सर्गः २०.

अथ यौवन निन्दा वर्णनम्।

दोहा–

बहुप्रकार वर्णन कियो, यौवन निन्दा राम॥
सुनहु सुजन मन लाइकै, जो चाहहु हरिधाम॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि दुःखरूप बाल्यावस्थाके अनन्तर युवावस्था आती है सो वहभी अत्यन्त दुःखदायक है क्योंकि इसी अवस्थामें कामरूपी पिशाच मनुष्यको आय घेरता है। इस अवस्थामें अनेकप्रकारके बिलास युक्त अपने अति चंचलमनकी वृत्तिसे यह मूर्खमनुष्य दुखके पीछे दुखही भोगता है। अपनेही चित्तमें हरनेवाला और अनेकप्रकारके

भ्रमोंको उत्पन्न करनेवाला यह कामरूपी पिशाच युवामनुष्यको बलपूर्बक (जबरदस्ती) अपने बस करलेता है। महा नरकका मूल और सदा भ्रम उत्पन्नकरनेवाले इस यौवनने जिस्को नष्ट किया है वह और किसीसे नष्ट नहीं होसक्ता । बिविधप्रकारके बिषयोंके अभिलाषरूपी दुस्तर जलोंसे पूर्ण और लोभ कामादिरूपी चोर और व्याघ्रादिकोंके आश्चर्य जनक विवरणसे व्याप्त इस यौवनरूपी बन भूमिसे जो पारहोगया वही मनुष्य धीरहै थोडे समयतक उज्वल रहनेवाला और बिजलीके समान प्रकाशवान् यह युवावस्था मुझको अच्छी नहीं लगती, भोगसमयमें मधुर स्वाद और परिणाममें तिक्त, दोषयुक्त और दोषोंका भूषण है अतएव यह यौवन मुझको अच्छा नहीं लगता है।

युवावस्था स्वप्नमें स्त्रीसंग करनेके समान है क्योंकि दोनोंही असत्य (झूंठे) किन्तु सत्य-वत् प्रतीत होते हैं और शीघ्रही मनुष्यको धोखा दे देते हैं अर्थात् दोनों शीघ्रही नष्ट होजाते हैं इसलिये यह युवावस्था मुझको अच्छी नहीं लगती । थोडेकालतक मनोहर रहनेवाला और सब पदार्थोंमें श्रेष्ठ और सब मनुष्योंके लिये मनोहर यह यौवन गंधर्व नगरके समान है इसलिये मुझको अच्छा नहीं लगता है । क्षणभरके लियेही सुखदेनेवाला और सदैव दुख देनेवाला निरन्तर हृदयके सन्तापादि दोषोंका देनेवाला यह यौवन मुझको अच्छा नहीं लगता है । थोडे कालके लिये सुख देनेवाला सद्भाव वर्जित और वेश्या स्त्रीके संगमके समान (क्षणभंगुर) यह यौवन मुझको अच्छा नहीं लगता । दुख के देनेवाले

जितने कार्य हैं वे सब युवावस्थामें ऐसे समीप आजाते हैं जैसे प्रलयकाल में महा उपद्रव। हृदयमें अंधकार करनेवाली युवावस्थाकी अज्ञानरूपिणी रात्रि भैरवके से आकारवाले भगवान्‌भी भय खाते हैं। सदाचारोंको भुलानेवाला और दुष्टबुद्धिको देनेवाला यह यौबन का मोह अनेक प्रकारके भ्रमोंको उत्पन्न करता है। युवावस्थामें प्राणप्रियाके वियोगरूपी अग्निसे मनुष्य ऐसे जलता है जैसे दावानलसे वृक्ष।

निर्मल, बिशाल और उत्तमगुणों से पवित्र बुद्धिभी युवावस्था में बर्षाकालकी नदीके समान मलिन होजाती है। बडी २ तरंगोंवाली भयंकर नदीके पार मनुष्य जासक्ता है किन्तु अति चंचल युवावस्था के पार कोई मनुष्य नहीं जासक्ता। हाय! वह सुन्दर प्राणवल्लभा

वह उसके स्थूल कुच वह उसके बिलास, वह उसका मुख (कैसा सुन्दर है इसी चिन्ता से मनुष्य युवावस्था में सदा जर्जरीभूत रहता है। जो युवामनुष्य तृष्णासे पीडित नहीं है उसको साधुगण प्रशंसा करते हैं किन्तु तृष्णा पीडाने जिसका छेदन किया है उसका गले हुए पत्तेके समान तिरस्कार करतेहैं। कामादि मदसे पीडित दोषरूपी मुक्ताके धारण करने वाले अभिमानसे मत्त गजराजके समान अविवेकी पुरुषके नाशके लिये यह युवावस्था स्तम्भरूपहै। हाय! यह यौबनही हृदयके दाहसे उत्पन्न हुई शुष्कता और रोदनरूपी वृक्षोंका आगमबन है और मनही इन वृक्षोंका विशाल मूल है और उसपर दोषरूपी सर्प बैठेहुए हैं।

यह नवयौबन पाप पुण्यरूप असार पर्वों-

सहित हृदयरूपी सरोवरके तटपर बिचरनेवाले आधिव्याधिरूप पक्षियोंका घोंसला है। इस यौवनको अनेक प्रकारकी बुरी चिन्तारूपी भ्रमरोंका कमल समझना चाहिये, युवावस्था में क्षणभरका सुख कमलके मकरन्दके समान है रागद्वेषादि केशर और अनेक प्रकारकी मिथ्या कल्पना इसके पत्ते हैं। जैसे मर्याद रहित समुद्रमें जलोंकी असंख्य लहरें उठा करती हैं उसी प्रकार इस नवयौवनमें अज्ञान रूपी अनेक प्रकारके संकल्प विकल्प उठा करते हैं।

जैसे प्रचण्ड पवन धूलिको उडाकर चारों ओर अंधकार फैला देती है ऐसेही यह नव-यौवन रजोगुण और तमोगुण को फैलाकर अच्छे अच्छे गुणोंको दूरकर अज्ञानको फैला देता है। जैसे मकडी अपने शरीरसे उत्पन्न

हुए जालके नष्ट करनेमें कुशल होती है उसी प्रकार रजोगुण और तमोगुणको बढानेवाली यह विषम युवावस्थाभी बडे बडे प्रयत्नोंसे इकट्ठे कियेहुए सद्गुणोंके नाश करनेमें निपुण है यहायौवनरूपी रूखीधूल इन्द्रियों से प्रेरितहोकर आकाशमें चढ जाती है और मुखको पीलाकर देती है।

पापकी सम्पात्तियोंके बिलासका हेतु यह मनुष्योंका यौबनका उल्लास (अधिकता) दोषोंको जगाता है और गुणोंके समूहको नष्ट करता है। यह नव यौबन रूपी चन्द्रमा शरीर रूपी कमलके परागकी इच्छा करनेवाली बुद्धि रूपिणी भ्रमरीको बांधकर मोहित कर लेता है। शरीर रूपी क्षुद्र कुंजमें उत्पन्न यौबन रूपी कुसुम मंजरी बढकर मनरूपी भ्रमरको स्पर्श मात्रसे ही मोहित

कर लेती है शरीर रूपी मरुस्थल (भूडारेत) में कामदेव के तापसे उत्पन्न युवावस्थारूपी मृग तृष्णामें मनरूपी मृग दौडते हैं और बिषयरूपी गढोंमें गिरतेहैं । शरीररूपी रात्रिकी चन्द्रिका, हृदयरूपी सिंहकी सटा (कंधाके ऊपरके बाल) और जीवनरूपी समुद्रकी तरंग यह इस युवावस्थसे मुझको सन्तोष नहीं है । इस शरीररूपी बृक्षसे यौबनरूपी शीघ्रही ऐसे उड जाता है जैसे मन्दभाग्य पुरुषके हाथमेंसे चिन्तामणी चली जाती है । जब जब युवावस्था परम उन्नतिको प्राप्त होती है तभी तभी सन्ताप-ज्वर सहित काम उसके नाशके लिये वृद्धि को प्राप्त होता है । जबतक युवावस्थारूपी रात्रिका अन्त नहीं होता तबतक द्वेषादि-रूपी पिशाच अधिकतासे बिचरते हैं

विविध प्रकारके विकारों (काम क्रोधादि) से युक्त क्षणभंगुर इस युवावस्था परभी ऐसे करुणा करौ जैसे मृतपुत्रपर करते हौ। जो मनुष्य इस क्षणभंगुर युवावस्थापर मुग्ध होकर अज्ञान बश प्रसन्न होता है वह मनुष्योमें पशु कहलाता है। जो मनुष्य अभिमान और अज्ञान से इस मदमत्त युवावस्थाकी अभिलाषा करता है वह दुर्बुद्धि शीघ्रही पश्चात्ताप करता है।

हे साधो! वेही पूज्य हैं, वेही महात्मा हैं और वेही इस संसारमें मनुष्य हैं जो इस यौबनरूपी संकटसे सुखपूर्वक पार होगये हैं। बडे बडे मकरोंसे व्याप्त समुद्रको मनुष्य सुखपूर्बक पारकर जाते हैं परन्तु काम क्रोधादिरूपी प्रबल तरंगोंसें व्याप्त नानाप्रकारके दोषोंसे युक्त इस युवावस्थाके पार

कदापि नहीं जासक्ते ।

हे मुनिवर ! विनयसे भूषित, श्रेष्ठ मनुष्यों का विश्रान्ति स्थान, दया आदिसे उज्ज्वल और उत्तम गुणोंसे पूर्ण यौवन इस संसारमें ऐसाही अलभ्य है जैसे इन्द्रका नन्दनबन दुर्लभ है ।

युवावस्था जीवकी परम शत्रु है जो पुरुष इस शत्रुके शस्त्रसे बचे हैं वे धन्य हैं, इसके शस्त्र कामक्रोधादिक हैं जो इनसे छूटा है वह वज्रके प्रहारसे भी न छेदा जावेगा और जो इन करके बंधा हुआ है सो पशु है । जैसे आकाशमें बनका होना आश्चर्यहै वैसेही युवावस्थामें वैराग्य, विचार, शान्ति और सन्तोष इनका पाना बडा आश्चर्यहै इसलिये हे मुनीश्वर ! आप मुझसे वही उपाय कहिये

जिससे युवावस्थाके दुखकी मुक्ति हो जाय और आत्मपदकी प्राप्ति होय !

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणेवैरागयप्रकरणे विंशः सः

अथ एकविंशःसर्गः २१.

अथ स्त्रीनिन्दा वर्णनम्

दोहा—

एकविंश सुस्सर्गमें, कहूं कथा सुख खानि ॥
त्रियनिन्दा वर्ण्यो यथा, बहुबिधि सारंग पाणि

श्रीरामचन्द्रजी कहनेलगे—नाडीअस्थिऔर ग्रंथिसेबनी हुई मांसकी पुतली जो रमणीयहै उसकेयंत्रके समान चंचल अंगसमूहमे कौनसी

बस्तु अधिक सुन्दर है हे जीव ! त्वचा, मांस
रक्त, आंसुओंका पानी और नेत्र इनको छोड़·
कर बिचारोकि स्त्रीके अंगमे कौनसी बस्तु
रमणीय है यदि कोई है तो उसपर आसक्त
होनहीं तो बृथा मोहित होनेसे क्या लाभ
है । कहीं केश हैं और कहीं रुधिर है इन्हीं
सबसे स्त्रीका देह बना है, बिबेकी पुरुष इस
निन्दित नारी देहको लेकर क्या करेगा !
हाय ! जो शरीर बस्त्र उबटनों आदिसे बार·
म्बार सुशोभित कियाजाता है उसी शरीरको
मांसाहारी जीव भक्षण करलेते हैं सुमेरु पर्व·
तकी शिखरपर प्रवाहित गंगाजलकी धाराके
समान सुन्दर मोतियोंकी माला जिस स्त्रिके
स्तनोंपर देखी गई थी वोही काल पाकर
उन्हीं स्तनोंका स्वादु कुत्ते स्मशानभूमिके
एक कौनेमें ऐसेलेते है जैसे अन्नके छोटे पि·

ण्डका। जैसे जंगलमें उण्टका देह रक्त, मांस और अस्थिसे बना है वैसेही स्त्रीका देहभी बना है फिर कामिनीके देहमें इतना प्रेम क्यों? हे मुनीश्वर! स्त्रियोंमें केवल थोड़ीही देरकी रमणीयता होती है किन्तु मेरी समझमें थोडी देरकीभी रमणीयता नहीं होती वह केवल भ्रममात्र है। मदिरा और मदिरनयना (मतवाले नेत्रोंवाली) मेंकुछभी भेद नहीं है क्योंकि कामदेवसे उत्पन्न होनेवाली मत्तता वा उन्मत्तता ये दोनोंही समानरूपसे चित्तमें विकार करते हैं। स्त्रीरूपी बन्धनस्तम्भ (खूंटे) में बंधे हुए मनुष्यरूपी हाथियोंके समूह निद्रामें ऐसे अचेत होरहे हैं कि शमरूपी दृढ अंकुशोंसे ताडना किये जानेपरभी चेतनही करतेकज्जलसेकाले केशोंकोधारण करनेवाली, स्पर्शकरतेही सन्ताप देनेवाली, नेत्रोंकी प्रिय,

पापरूपिणी अग्निकी शिखारूप स्त्रियां मनुष्योंको तिनुकाके सदृश जलाती हैं । लम्बी लकडी दूर जलती हुई अग्निमें ईंधनका काम देती है तथा सरसहोनपरभी नीरस होजाती है और देखनेमें सुन्दर होनेपरभी धीरे धीरे जलकर दारुण कोयला बनजाती है इसी तरह स्त्रीभी दूर जलती हुई नरककी अग्निके लिये ईंधनके समान है वह देखने में सरस मालूम होती है परन्तु परिणाममें संसारिक दारुण यंत्रणाओं की मूल है । केशोंके समूहरूपी अंधकारवाली, नेत्रोंकी पुतलीरूप तारागण सहित मुखरूपी चन्द्र सहित, हास्यरूपी पुष्पों के समूहयुक्त, अपनी लीलाओंसे पुरुषको चंचल करनेवाली कामके सिवाय अन्य सब कार्योंको नष्ट करनेवाली यह कामिनीरूप रात्रि बुद्धिको मोहनेमें

बडी निपुण है । सुन्दरतारूपी पुष्पोंसे शोभित, हस्तरूपी पत्ताओंसे शोभायमान्, नेत्र रूपी भ्रमरोंके विलासोंसे पूर्ण, स्तनरूपी पुष्पोंके गुच्छको धारण करनेवाली, फलोंकी केशरके सदृश गौर अंगवाली और मनुष्यों के संहारकरनेमें तत्पर, यह स्त्री मनुष्योंको ऐसे संहार करती है जैसे बिषकी लता अपने रक्षकको मारडाती है । जैसे भल्लूकरमणी(मादी) बिल मेंसे सर्पको केवल श्वास लेनेसेही खींच लेती है वैसेही स्त्री थोडेसे आदर और गौरवसे लम्पट पुरुषको बश करलेती है । कामदेव नामक व्याधने स्त्रियोंपर मुग्ध मनुष्यरूपी पक्षियोंको पकडने के लिये अपना जाल फैला रक्खाहै । हे ब्रह्मन् ! यह मनरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी खम्भ में रतिरूपी श्रृंखला (जंजीर) से बंधा हुआ मूकके समान चुप

खडा रहता है । मनुष्य इस संसाररूपी सरोवर के मत्स्य हैं, चित्तरूपी कीचड उनके किलोल करनेका स्थान है, दुष्टवासना है, उन मछली पकडनेवालोंकी बंसी (मछली पकडने की) रस्सी है और स्त्री उस बंसीमें चूनकी गोलीके समान हैं अर्थात् जैसे मछली चूनके लोभ से उस बंशीमें उलझंजाती हैं वैसेही मनुष्य स्त्रीमें फँस जाते हैं ।

जैसे अश्वोंके लिये अश्वशाला (अस्तबल) हस्तियों के लिये खम्भ और सर्पोंके लिये मंत्र बंधन स्वरूप हैं वैसेही पुरुषोंके लिये स्त्री बंधन है । हे मुने ! नानाप्रकार के श्रृंगारादि रसोंसे पूर्ण यह स्त्री विषयभोगोंकी विचित्र भूमि है स्त्रीका आश्रय लेकर मनुष्य इस संसा- रमें परमस्थितिको प्राप्त हुएहैं । स्त्री सम्पूर्ण दोषरूपी रत्नों की पिटारी है और दुखों को

स्थिरकरनेवाली शृंखला है ऐसी स्त्रीसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं है । स्तनोंसे क्या, नेत्रोंसे क्या, नितम्बोंसे क्या और भौंहसे क्या ? क्योंकि इन सबमें केवल मांसही सार है अर्थात् ये सब मांसके बनेहैं मांस, रक्त और अस्थि इन विविध पदार्थोंसे बना हुआ स्त्रीका देह थोडे दिनमेंही नष्ट होजाता है ।

हे तात ! पुरुष नामधारी अज्ञानी मनुष्य जिन स्त्रियोंको प्रिया कहकर अत्यन्त प्यार करते हैं हे मुनिवर ! उन्हीं स्त्रियोंको हाथ, पांव स्मशानभूमि मे इतःततः फैले हुए हैं और वे गाढ निद्रा में मग्न हैं । हे ब्रह्मन् ! जिस स्त्रीके मुखपर प्रीतमने अत्यन्त प्यार के साथ कर्पूर चन्दनादिका तिलक लगाया था आज उसी स्त्रीका मुख जंगलमें सूख रहाहै । थोडे सेही दिनोंमें स्त्रियोंके केश स्माशानभूमिके वृ-

क्षोंके चमर बनजातेहैं और हड्डियां पृथ्वीपर ता-
रागणोंके समान चमकतीहैं । धूलि और शृगा-
लादि अनेक मांसाहारी जीव रुधिरको पीलेते
हैं शृगाल चर्मको खालेते हैं और प्राणवायु
आकाशमें उडजाती है । यह स्त्रियोंके देहकी
शीघ्रही होनेवाली दशा मैंने आपके सन्मुख
बर्णन कर दी, फिर हे जीवगण ! आप
क्यों भ्रांतिके पछि दौडते हो । पृथ्वी आका-
शादि पांचमहाभूतोंसे जो आकार प्रगट
हुआ है उसका नाम कामिनीहै भला बुद्धिमान्
मनुष्य अनुरागके बश कब स्त्रीपर आसक्त
होवेगा । दुख सुखरूपी कटुफलोंको धारण
करनेवाली स्त्री विषयकी चिन्ता ऐसे अत्यन्त
बढगई है जैसे शाखाओं और प्रशाखाओंसे
युक्त कडवे और खट्टे, कच्चे फलोंवाली सुताला
नामवाली बनलता अत्यन्त बढजाती हैं ।

अत्यन्त धनकी बांछासे अत्यन्त अंधदशा को प्राप्त यह मन " कहां जाऊं " कैसे धन प्राप्त करूं " इन बिचारोंसे ऐसा मोहग्रस्त होरहा है जैसे अपने झुण्डसे बिछडा हुआ मृग होता है ! इस संसारमें तरुणीपर आसक्त युवा पुरुष ऐसी शोचनीय दशाको प्राप्त होता है जैसे हथिनीपर आसक्त विंध्याचलपर्वतके गढेमें बंधाहुआ हस्ती । जिसके स्त्री नहीं है उसे भोगकी इच्छा कहां जिसने स्त्रीको त्याग दिया, उसने सब संसारको त्यागदिया इसप्रकार इस संसारको त्यागकर मनुष्यको सुखी होना उचित है । हे ब्रह्मन् ! थोडी देर के लिये रमणीय, भ्रमरके पंखोंके समान चंचल अतिदुस्तर भोगमें मैं जरा रोग और मृत्युके भयसे आसक्त नहीं होऊंगा परन्तु

शान्तिका अवलम्बन कर यत्नपूर्वक परमपद-
को प्राप्त होऊंगा ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणे
एकविंशःसर्गःसमाप्तः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशःसर्गःप्रारंभः२२.

अथ जरावस्था निन्दा वर्णनम् ।

चौपाई ।

कहूं सर्ग द्वाबिंस सुहावन । जो सुनि होत
सकल नर पावन ॥ निन्दा जराअवस्था केरी ।
कीन्ह राम उपमा बहु हेरी ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहनेलगे बाल्यावस्था

क्रीडादिसे सन्तुष्ट नहीं होने पाती कि युवा-
वस्था आकर बलपूर्वक उसका पान कर
लेती है और फिर यौवन भोगविलासादिसे
तृप्त नहीं होने पातीं कि बृद्धावस्था आकर
उसका पान करलेतीहै एकबार इन
अवस्थाओंकी आप क्रूरताको तो अवलोकन
कीजिये । जैसे बरफरूपी बज्र कमलका
नाश कर देता है जैसे प्रबल बायु
तिनुकाके अग्रभागपर पडी हुईजलकी
बुंदको नष्ट करदेती है और जैसे नदी
अपने तरिपर उगेहुए वृक्षको उखाड
डालती है वैसेही बृद्धावस्था शरीरका नाश
करदेती है । बृद्धावस्थाके कारण जिसके
अंग शिथिल होगये हैं और जिसका देह ज-
र्जरीभूत होगया है ऐसे मनुष्यको स्त्री गर्द-
भके समान देखती है । सहसा दीनता देने-

वाली जराअवस्था जब मनुष्यको ग्रसलेती है तब बुद्धि उससें ऐसे भाग जाती है जैसे सपत्नी (सौत) से हारकर दूसरी स्त्री भाग जाती है सेवक, पुत्र, स्त्री, बांधव और मित्रगण वृद्धावस्थासे जर्जर मनुष्यका उपहास ऐसे करते हैं जैसे मस्त मनुष्यका देखनेके अयोग्य, अच्छे गुणोंसे हीन, दुर्बल, वृद्ध-मनुष्यके पास लोभ ऐसे आता है जैसे बडे ऊंचे वृक्षपर गृध्र । हृदयमें सन्ताप उत्पन्न करनेवाली दीनता तथा अन्य दोषोंसे व्याप्त सम्पूर्ण आपदाओंकी एक मात्र सखी कामना (इच्छा लालसा) वृद्धावस्थामें बढतीही जाती है।

हाय ! " अब मैं क्या करूं " परलोकमें मेरे लिये अति भयंकर कष्ट है जिसका उपाय नहीं होसक्ता " इस प्रकारके भय

बृद्धावस्थामें बढते हैं। " मैं क्षुद्रमनुष्य हूं " 'क्या कहूँ ' " कैसे करूं " चुपचाप बैठा रहूं इत्यादि इस प्रकारकी दीनता बृद्धावस्थामें उत्पन्न होती है। कैसे कब और किसप्रकार मुझको स्वादिष्ट भोजन मिलेगा इसप्रकारकी चिंता बृद्धावस्थामें सदा चित्तको भस्म करती है। " अभिलाषा तौ अत्यन्त होती है परन्तु प्रसन्नता पूर्वक भोग करनेकी शक्ति नहीं है इसप्रकार शक्तिका प्रभाव होनेसे बृद्धावस्थामें हृदय दग्ध होताहै। हे मुने ! शरीररूपी बृक्षपर बैठीहुई, शरीरको कष्ट देनेवाली रोगरूपी सर्पोंसे ब्याप्त बृद्धावस्था रूपिणी बकी (एकपक्षी) जब रोती है उसीसमय प्रबलमूर्छारूपी अंधकारका आकांक्षी मृत्युरूपी उलूक कहींसे आकर दिखाई पडता है जैसे सायंकालकी संध्याको देखकर

अंधकार दौडता है वैसेही शरीरमें बृद्धावस्था देखकर मृत्युभी सामने आताहै ।
हेमुने?जरा अवस्थारूपी फूलोंसे फलेहुये शरीररूपी बृक्षको देखकर मृत्युरूपी बन्दर बडे बेगसे उसपर गिरता है शून्य नगर,शाखारहित बृक्ष और बृष्टि विना (दग्ध) देशभी शोभायमान् मालूम होते हैं किन्तु जरासे जर्जरी भूत देह शोभा नहीं पाता। कासरूपी शब्द करती हुई बृद्धावस्था मनुष्यको भक्षण करनेके लिये ऐसे बेगसे ग्रहण करती है जैसे गृध्नी (गीद्धनी मांसको)। जैसे बालिका पुष्पको देखकर उत्साहयुक्त होकर क्षणभरके लिये शिरपर धारण कर उसको छिन्नभिन्न करदेती है वैसेही बृद्धावस्था भी शीघ्रही शरीरको नाश करदेती है, जैसे आंधी शीत्कार शब्द करती हुई और धूलिसे जर्जर करती हुई

वृक्षके पत्तोंको नष्ट करदेतीहै वैसेही यह जराभी शरीरको जर्जर करके नष्ट करदेती है। जराग्रस्त, जीर्ण देह ओलोंसे मुरझाये हुए कमलके सदृश प्रतीत होताहै जरारूपिणी चान्दनी जिस समय शिररूपी पर्वतपर प्रकाशित होती है उससमय वह बात रोग और कासरोगरूपी कुमुदिनीको खिलाती है अर्थात् वृद्धावस्थामें बात रोग खांसी आदि बहुत से रोग शरीर में होजाते हैं। वृद्धावस्थारूपी क्षारसे धूसर और अच्छीप्रकार परिपक्व इस मस्तकको काल ऐसे भक्षण करता है जैसे कूष्माण्डको उसका मालिक खाता है। जैसे गंगाजीके तटपर ऊगे हुए वृक्ष उसके प्रवाहसे जर्जरीभूत होजातेहैं वैसेही आयुरूपी प्रवाहके वेगसे शरीरभी जर्जरीभूत होजाताहै। वृद्धावस्थारूपिणी यह मार्जारी (बिल्ली) युवा-

वस्थारूपी मूषकको भक्षणकरके अत्यन्त प्रसन्न होती है इस संसारमें ऐसी अशुभवस्तु और कौनसी है जैसी कि यह देहरूपी जंगल में महा रोदन करनेवाली वृद्धावस्थारूपी शृगाली अशुभ है। वृद्धावस्थारूपी अग्निज्वाला जिसपर जल रही है वह तो निश्चयही भस्म होगया है खांसी और श्वास रोग इस ज्वाला का शीत्कार (सों, सों) शब्द है और दुख इसका धूंआ है।

हे तात ! जैसे पुष्पोंके भारसे छोटी लता नय जाती है वैसेही अंगरूपी पत्रा जिसके श्वेत होगये हैं ऐसी शरीररूपी लता (वृद्धावस्थासे (नय जाती है।

हे मुनीश्वर ! जरा अवस्थारूपी कपूरद्वारा श्वेत शरीर रूपी केलेके पेडकों मृत्युरूपी हस्ती क्षणभरमें उखाड डालता है।

मृत्यु एक राजा है, उसके आनेके समय मानसिक और शारीरिक पीडारूपी सेना आगे २ चलती है और जरा उसका चमर है।

हे मुनिवर। जिनको असंख्य शत्रुभी समरमें जीत नही सके, देखिये उन्हीको पर्वतकी गुहामें प्रवेश करनेपरभी वृद्धावस्थारूपी राक्षसीने शीघ्रही जीत लिया। जब यह शरीररूपी गृह वृद्धावस्थारूपी हिमसे पूर्ण होजाता है तब इन्द्रियरूपी बालक गण उसमें कुछभी चेष्टा नहीं कर सक्ते हैं। जैसे वेश्या नृत्य करते समय बाजेके शब्दसे अपने चरणों को इधरउधर चलाती है और आनन्दमें मग्नहो दण्डनामक संगीतके तृतीयचरण पर झुकजाती हैं इसी तरह यह वृद्धावस्थाभी कफ कांसी और आधोवायु के बिचित्र शब्दों

से शुक्त होकर इधर उधर फिरती है और देह रूपीलाठी झुकजाती है सम्पूर्ण बिषय भोगों के स्थान संसाररूपी राजाके व्यवहारोंका साधन करनेवाली बृद्धावस्थारूपी चमरकी शोभा इस शरीररूपी दण्डके ऊपर बिराज रही है ।

हे मुनिवर ! जिससमय यह शरीररूपी नगरी जराअवस्थारूपी चन्द्रमासे श्वेत होजाती है उसीसमय मृत्युरूपी कुमुद शीघ्रही विकसित होजाता है । जरावस्थारूपी चूने से जब देहरूपी गृह श्वेत होजाता है तब अशक्ति पीडाओ और बिपत्ति नामके स्त्रियां उसमें सुखपूर्वक रहती हैं ।

हे मुनिवर ! जब चारोंप्रकारके प्राणियोंको बृद्धावस्था धर दबाती है और इसके पश्चात मृत्यु उनको जीत लेती है तो फिर इस जगत

में मुझ सरीखे मन्दमतिका क्या विश्वास है ? हे तात ! बृद्धावस्थासे ग्रसेजानेपरभी यह जीव बचनेका अनुचित आग्रह क्यों करता है जगतमें बृद्धावस्थाको कोई पराजितभी नहीं करसक्ता है इसलिये यह अजेया बृद्धावस्था किसी कामनाको पूर्ण नहीं होने देती ।

जैसे मांसके टुकडेको देखकर आकाशते उडती चील्ह आयकर लेजातीहै तैसे जराअवस्था शरीर रूपी मांसको काल लेजाता है, हे मुनीश्वर ! यह तो कालका ग्रास बना हुआ है. जैसे सुन्दर बृक्षको हस्ती खाजाता है वैसेही जरा अवस्था शरीर को काल देखकर भोजन कर जाता है ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणे जरावस्था निन्दानिरूपण नाम द्वाविंशःसर्गःसमाप्तः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशःसर्गःप्रारंभः २३.

अथ कालापवाद वर्णनम् ।

॥ दोहा ॥

त्रयोबिंशके सर्गमें, कह्यो काल अपबाद ॥
जो सुनि सज्जनलहिंहिंमुद, छूटहिंसकल बिषाद

श्रीरामचंद्रजी कहने लगे कि मूढपुरुष अनेक प्रकारकी सत्य और असत्य कल्पनाओं के निमित्त अनेकप्रकारके वाक्योंका प्रयोग करता है और राग द्वेषादिके बिभेदसे इस दुस्तर संसारमें भ्रमको इतना बढा दिया है कि उसका नाश होना कठिन होगया है ।ऐसे बिषयरूपी जालके पंजरमें सज्जनोंकी आस्था किसप्रकार होसक्ती है, जैसे बालक दर्पणमें फलका प्रतिबिम्ब देखकर उसके खानेकी इच्छा करता है उसीतरह अज्ञानी और

अज्ञानी पुरुष इस आसार संसारमें नाशवान् पदार्थोंमें सुखकी झलक देखकर मोहित हो जाते हैं। इस तुच्छ संसारमें मनुष्योंको जो कुछ सुखकी आशाहै उसको काल ऐसे काटडालता है जैसे मूषक सूतको कुतरडालताहै जिसप्रकार बडे भारी समुद्रको वडवानल ग्रास करलेता है उसीप्रकार इस संसारमें ऐसी कोई बस्तु नहीं है जिसको सर्बभक्षी काल न भक्षण करलेताहो सर्व साधारणरीतिसे काल भगवान् ईश्वरका ईश्वर और महा भयंकर है यह सम्पूर्ण जगत् को भक्षण करनेके लिये उद्यत है यह काल बुद्धिमान् और बलवानोंकोभी क्षणभर को भी प्रतीक्षा नहीं करता किन्तु उनकोभी शीघ्रही मार डालता है यह काल सब जगत्का भक्षण करनेवाला अनन्तरूप है इसके उदरमें चराचर जीवमात्र स्थित हैं। जो जो पदार्थ रमणीय हैं

और जो सुमेरुपर्वतके समान गरू (भारी) हैं उनकोभी यह काल ऐसे निगलजाता है जैसे गरुडजी सर्पोंको निगलजाते हैं। निर्दय, कठिन, क्रूर, कर्कश (कडवी बात कहनेवाला) कृपण, (कंजूष) और अ-धमभी ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसको काल भक्षण न करता हो पर्वतादि सबका भक्षण कर लेनाही इस कालका मुख्य कर्त्त-व्य है, असंख्य मनुष्योंका यह काल भक्षण करचुका है परन्तु तौभी इसकी तृप्ति नहीं होती। जिसप्रकार तोता अनार के छिलका-को कुतर कर बीज खालेता है उसीप्रकार काल इस संसाररूपी असत्य बंधनको तोड-कर मनुष्यरूपी बीजको खालेता है। काल हाथीके समान पराक्रमी है, अभिमानसे फूलेहुए मनुष्योंके जीवात्मारूपी महाबनमें

यह निवास करता है, शुभ और अशुभकर्म फल उसके दोनों दांत हैं और प्राणरूपी पल्लवोंको यह काल हस्ती अपने दोनों दांतोंसे नष्ट करता है। ब्रह्माण्डरूप एक महा बृक्ष है, उसका मूल ब्रह्मा है, देवतागण उसके फल हैं, ब्रह्मरूपी महावन ऐसे बृक्ष का आश्रय है और काल इस बनका अधिकार करके इसमें बास करता है। रात्रिरूपी भ्रमरोंसे पूर्ण, दिनरूपी मंजरी और बर्ष, युग और कलारूपी लताओंको बनाता हुआ कभी नहीं हारता!

हे मुनीश्वर! धूर्तोंका सर्दार यह काल काटेसे नहीं कटता, जला हुआभी नहीं जलता तथा दृश्य होनेपरभी नहीं दीखता। यह काल मनसे कल्पित राज्यके सदृश पलभरमें किसी बस्तुको उत्तम प्रकारसे बनाता

है और किसी बस्तुको एकबारही नष्ट कर देता है। दुष्ट बिलासोंको भोगनेवाले प्राणियोंके कष्टोंसे पुष्ट चेष्टाद्वारा यह काल अविवेकी पुरुषोंको बारबार स्वर्ग और नरकमें भ्रमण कराता है। यह काल अपना पेट भरनेके लिये धूलि, तिनुका, महेन्द्र, सुमेरु, पत्ता और समुद्र सबका भक्षण कर-जाता है। क्रूरता इस कालमें अच्छी प्रकार भरीहुई है, लोभका यही स्थान है, सब दुर्भाग्यभी इसीमें बिद्यमान् है और इसमें पलताभी भली प्रकार मौजूद है, जैसेकोई बालक अपने आंगनमें दो गेंदोंमेंसे कभी एकको उठाकर और कभी दूसरेको फेंक कर खेलता है वैसेही यह आकाश सूर्य और चन्द्रको प्रेरणा कभी किसीको उदय और कभी अस्त करता हुआ खेलता है। सम्पूर्ण

प्राणियोंके अस्थियोंकी बालासे शिरसे पांव-तक शोभायमान् और सम्पूर्ण प्राणियोंके बिभागोंका बिनाश करनेवाला यह काल कल्पके अन्तमें क्रीडा करता है। कालके कामोंको कोई नहीं रोक सक्ता, प्रलयकालमें इसीकालके अंगसे निकली हुई बायु सुमेरु-पर्बतकोभी छिन्न भिन्न करके भोजपत्र की तरह आकाशमें उडादेती है।

कभी यह काल रुद्रका रूप धारण कर-लेताहै, कभी इन्द्र बन जाता है कभी ब्रह्मा के भेषमें प्रगट होता है और कभी कुछभी नहीं रहता अर्थात् इस कालको कोई एक मुख्य रूप नहीं है।

जैसे समुद्र एक तरंगको उठाता है और दूसरीको नष्ट करदेता है वैसेही यह कालभी कभी कभी किसी सृष्टिको बनाता है और

किसीका नाश कर देता है। महाकल्प नामको बृक्षोंसे देवता और असुररूपी पक्कफलोंको नाश कर देता है। सम्पूर्ण प्राणीरूपी शब्द करनेवाले मशकों सहित गिरनेवाला, असंख्य ब्रह्माण्डरूपी गूलरके फलोंसे युक्त यह काल एक बड़ा बृक्ष है। हेमुनीश्वर! ब्रह्म चन्द्रिका (चांदनी) है और जगत्की सत्ता, कुमुदिनी है इसी चंद्रिकाकी समीपतासे बिकसित कुमोदिनीकी सहायताके लिये काल अपने शरीरको प्रसन्न करता है और उसकी सहचरी प्राणियोंको शुभाशुभ क्रियारूपिणी प्रियतमा उसकी सहचरी हैं! कहीं यह काल अंधकारके सदृश श्यामवर्ण है कहीं दिनके समान कान्तियुक्त है और कहीं दोनों रूपोंसे व्यतरिक्त अपना स्वभाव प्रगट करता है। सैकडों महा कल्पोंके व्यतीत होनेपरभी यह

काल न खेदयुक्त होता है, न प्रसन्न होता है, न आता हैं, न जाता है न अस्त होता है और न उदय होता है रात्रिरूप कीचडमें उत्पन्न मेघरूपी भ्रमरोंसे युक्त दिनरूपी लाल कमलों को अपने आत्मारूपी सरोवरमें धारण करता हुआ स्थित है । यह कृपण काल कृष्णरात्रि रूपी पुरानी मार्जनी (बुहारी) को चारोंओर चलाकर सूर्यके प्रकाशरूपीसुवर्णके टुकडोंको इकट्ठे करता है ! जगत उसका घरहै।यह काल क्रियारूपी अंगुलीद्वारा सूर्यरूपी दीपकका संचार करके जगत्‌रूपी गृहके कोनमें कौ-नसी बस्तु कहां है यही देखा करता है । यह काल सूर्यरूपी नेत्र और दिनरूपी निमेषद्वारा जगत्‌रूपी पुराने बनके लोकपालरूपी फलों-को देख देख कर भक्षण करता है यह काल जगत्‌रूपी पुरानी कुटीमें बिखरी हुई मनुष्य

रूपी मणियोंको बडे उदरवाले मृत्युरूपी पिटारेमें क्रमसे रखता है । जो संसाररूपी रत्नोंकी माला गुणोंसे पूर्ण होजाती है उसको भूषणके समान शरीरमें धारण करके फिर छिन्नभिन्न कर डालता है । यह काल दिनरूपी हंस सहित, तारागणरूप केशर युक्त, निशारूप कमलकी मालाको निरन्तर धारण करता है जिसके पर्वत, समुद्र, स्वर्ग और पृथिवीरूपी चार सींग है ऐसे जगत्रूपी मेष (भेंड) का हिंसक यह काल तारागणरूपी उसके बिन्दुओंको देखकर प्रतिदिन भक्षण करलेता है ! यह काल युवावस्थारूपी कमलिनीके लिये चन्द्रमा है और आयुरूपी हस्तीके लिये सिंह है इस संसारमें छोटी अथवा बडी कोई ऐसे वस्तु नहीं है जिसको यह काल न हरलेता हो । यह काल बि-

श्वका कर्त्ता, भोक्ता, नाश करनेवाला और स्मरण करनेवाला है तथा सुभग और दुर्भगरूपमें यह काल सर्वत्र बिराजमान हैं इस कालका रहस्य बुद्धिकी कुशलतासेभी नहीं जाता सम्पूर्ण जीवधारियोंको उनके कर्मानुसार शीघ्र उत्पन्न और नाश करता है, यह काल संपूर्ण प्राणियोंसे बलवान् है।

इति श्रीयोगबासिष्ठे महारामायणे बैराग्यप्रकरणे काल विलासवर्णनंनाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३

अथ चतुर्विंशतितमःसर्गः प्रारंभः २४

अथ कालविलास बर्णनम्।

सोरठ-

बर्ण्यो काल बिलाश, राम चतुर्विंस सर्गमें ॥
जो सुनि ज्ञान प्रकाश,होथ कथा पावन सुनत

श्रीरामजन्द्रजी कहने लगे हे महर्षि ! इस कालकी लीला अनन्त है, और इसका पराक्रम अनुमान से बाहर है तथा इससे सम्पूर्ण आपादा दूर हैं परब्रह्मरूपी राजाका कालरूपी युवराजका चरित्र अब मैं बर्णन करता हूं। यह राजपुत्र काल इस जगत्रूपी अत्यन्त प्राचीन बनमें मुग्ध, और कातर प्राणीरूप मृगों की अहेर करता है। हे महर्षि ! जगतरूपी जंगलके एक भागमें स्थित प्रलयकालका समुद्र उक्त शिकारी राजपुत्रकी रमणीक क्रीडा पुष्करिणी है, बडवानल उस पुष्करिणीका कमल है। कालरात्री कालकी प्रियभार्या है, सिंहनीके सदृश सब प्राणियोंकी संहारकरने वाली यह कालरात्रि अपनी सब माताओं सहित निरन्तर इस संसाररूपी बनमें विहार करती है! सर्व प्रकारके रसोंसे

युक्त लाल, सुफेद, और नीले कमलोंके समूह से ढकी हुई यह पृथ्वी कालके हाथके नीचे रक्खा हुआ विशाल पान करनेका पात्र है। जिनके भुजाओंकी फटकार अत्यन्त दुःसह सहनेके अयोग है जिनके कंधोकी केशर स्पर्श करनेमें कोई समर्थ नहीं है सिंहके समान भयंकर नाद करने वाले नृसिंह देव, दैत्य रूपी क्षुद्र पक्षियोंके बध करनेके लिये कालरूपी राजपुत्रके हाथमें बाज नामक पक्षीके समान है, तुम्बाकी वीणाके समान सुन्दर शरदकाल के निर्मल आकाशके समान नील कान्ति संहार भैरव नामक महाकाल इस कालरूपी राजपुत्रकी क्रीडाओंके लिये कोकिलके बालकके समान है। सदैव टंकार ध्वनि करनेवाला, और दुःख रूपी बाणोंका फेकनेवाला और सबको संहार करने वाला धनुष काल

नामक राजपुत्रके पास रहता है यह काल जहां जहां बडे स्थान बसते हैं उनकूं उजाडकर देता है और उजाड़में बस्ती कर देता है जैसे बानर बागमें वृक्ष को ठहरने नहीं देता तैसे कालरूपी बानर किसी पदार्थ को स्थिर नहीं रहने देता।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणेकाल विलासवर्णननाम चतुर्विंशातितमः सर्गः ॥२४॥

अथ पंचविंशतितमः सर्गः प्रारंभः२५

अथ कालविलास वर्णनम्।

दोहा—

श्रीरघुबंश शिरोमणि, बर्ण्यों काल बिलाश ॥
पंचबिंश शुभ सर्गमें, ताको करहुं प्रकाश ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे हे महर्षि ! इस संसारमें सम्पूर्ण दुष्ट बिलासोंका शिरो-

मणि काल सम्पूर्ण क्रियाओंको करता है और स्वयंही उनका नाश कर देता है, जिस कालका क्रियाके शिवाय न कोई रूप प्रतीत होता है क्रियासेही कालका अस्तित्व मालूम होता है स्वरूपतौ उसका किसीको दीखताही नहीं) न कर्म प्रतीत होता है, और न कोई चेष्टा प्रतीत होती है वही काल सम्पूर्ण जीवधारियोंको ऐसे नष्ट कर देता है जैसे धूप बरफको नष्ट कर देती है। यह जो विशाल जगत् मण्डल है सो इस कालकी नृत्यशाला है जिसमें वह निरन्तर नृत्य करता है। इस कालका दूसरा नाम कृतांत है, यह वर्णसंकरका रूप धारण करके जगत्में अपनी स्त्री नियतिके संग निरन्तर नृत्य करता है! शेषनाग, चन्द्रमाकी कला, और तीनों प्रकारके गंगाजीके प्रबाह

यह कालके संसाररूपी बक्षस्थलपर उपवीती और अवीति (उपवीति नामस्कन्धका यज्ञोपवीत और अवीति दक्षिणस्कन्धका यज्ञोपवीत) के सदृश है, चन्द्रमा और सूर्य उसके दोनों हाथोंके कडे हैं, और सुमेरु पर्वतरूपी कमल उसके हाथमें खेल नेके लिये है, तारागण इसके शरीरमें चित्र विन्दु हैं, पुष्कर और आवर्त नामक प्रलय कालके मेघ इसके बस्त्रके किनारे है, असीम समुद्र इसका एक बस्त्र पहिरनेको है और आकाश दूसरा ओढनेका बस्त्र है, ऐसे भेषधारी उस वर्णसंकरके सामने उसकी नियति नामकी स्त्री प्राणियोंके भोगानुकूल कार्य आरम्भ करके निरन्तर नृत्य करती है। इस नियतिका स्वरूप कैसा है ? आकाश उसका बडा शिर है, पाताल उसके चरण

हैं उनमें नरकोंकी पंक्ति घुंघरूके समान है, ये नूपर पापरूपी डोरामें गुथे भये है । नरककी अग्नि उन नूपुरोकी चमक है और नरकस्थ प्राणियोंके रोनेका शब्द उन नूपुरोंकी झनकार है, प्राणियोंके शुभ कर्मरूपी सुगन्धिके प्रगट करनेके लिये शुभ क्रियारूपी सखी से रचित यमरूपी ललाटपर चित्रगुप्त रूप कस्तूरीका तिलक है यही काल कामिनी नियति कल्पान्तके समय अपने स्वामीके चेष्टायुक्त मुख भावको जानकर अत्यन्त चंचलतासे नृत्य करती है उससमय पर्वतोंके फूटनेका जो भयंकर शब्द होता है वही नृत्य करनेमें उसके चरणोंकी ध्वनि प्रतीति होती है, नियतिकी पीठपर लम्बे २ कार्तिकेयके भरेहुये मयूखोंके समूह लटकते है, इधर फैलेहुए महादेवजीके जटाजूट

सहित पाचों मस्तकोंमें चन्द्रमाकी कान्तिके समान चंचल और लम्बे तीनों नेत्रोंके गर्तोंमें बडा भयंकर शब्द होता है ऐसे पांचों मुण्ड उसे नियतिकी मुण्डमाला हैं रुचिर मन्दारके पुष्पोंसे शोभित पार्वतीके केश समूहरूपी चमरोंसे शोभायमान हैं, नृत्यमें मस्त पर्वताकार भैरवका उदरही इसका कमण्डलु है, सहस्र छिद्रोंसे युक्त शब्द करता हुआ इन्द्रका शरीररूपी कङ्काल इसका भिक्षा कपाल है। और पीठकी सूखी हुई हड्डियोंका ठठर इसकी खट्वांग है इसतरह सबको संहार करनेवाली नियति आकाश मण्डलको परिपूर्ण करके अपने स्वरूपको अपने आप डराती है अत्यन्त भयानक शब्द करनेवाली यह नियति अनेक प्रकारके मस्तकरूपी कमलोंकी माला धारणकर नृत्य करती हुई महाप्रलयमें

शोभायमान होती है। प्रलय करनेवाले पुष्कर और आवर्त यह दोनों मेघ इसके डमरू हैं, महाप्रलयमें इन डमरुओंके शब्दसे तुम्बरु आदि गंधर्वगण इस नियतिके पाससे भाग जाते हैं। हेमहर्षि ! चन्द्रमण्डलकी कान्तिसे देदीप्यमान तारागणोंकी ज्योतिसे प्रकाशित मोर पंखके सदृश अपने केशोंसे भूषित आकाशरूपी नृत्य करती है। इसके एक कानमें हिमालय पर्वतरूपी चमकती हुई हड्डियोंका कुण्डल है, और दूसरे कानमें सुमेररूपी अत्यन्त प्रकाशमान् सुवर्णका कर्ण भूषण है, इन्हीं कानोंमें सूर्य और चन्द्रमारूपी कुण्डल गण्डमण्डलपर चंचल होरहे हैं और लोकालोक पर्वतोंकी पंक्ति इसकी कटि मेखला है, चपल बिजली इसका कंकण है और पवनसे कम्पित मेघोंकी पंक्ति इसकी

चित्र विचित्र साडी है, पहिली २ सृष्टियोंके विनाश होनेपर उनसे निकले हुए कृतान्तोंसे एकत्रित किये हुए मूसल मुद्गरतीक्ष्ण शूल, बर्छी, तोमर, पटास्वरूपमें परणित हुए हैं। चलायमान जीवरूपी मृगोंके बंधनके लिये विस्तार कियेहुये उक्त महाकालके हाथसे गिरे और अनन्त देवादिके शरीररूपी महा सूत्रद्वारा प्रस्तुत रस्सीसे उक्त मूषलादि ग्रथित होकर कृतान्तके कण्ठमें मालाके समान शोभा देतेहैं। अनेक प्रकारके रत्नोंकी कान्तिसे दैदीप्यमान जीवरूपी मकर समूहोंसे युक्त सप्तसागररूप कंकणोंकी पंक्ति उसके दोनों हाथोंको आभूषण है। शास्त्रीय और लौकिक व्यवहाररूपी भ्रमरोंकी ध्वनिसे युक्त रजोगुण और तमोगुणसे पूर्ण, सुखदुख रूपी श्यामवर्णकी इसकी मनोहर रोमावली है,

इसतरह कृतान्तरूपी काल युगान्तरमें ताण्डव नृत्यको समाप्तकर बिश्राम करता है, पछि फिर ब्रह्मादिकोंके संग इस जगत्को रच जरा मरण शोक दुख,पराजयसे,विभूषितहो अपनी नाट्यलीलाका विस्तार करता है । बालक जिसतरह मिट्टीको लेकर अनेक प्रकारके खिलौना बनाता है और उसमें कुछ परिश्रम नहीं समझता इसी तरह कालभी नानाप्रकार के जगत् देश, बन, जीव और उनकी स्थिर, अस्थिर आचार परम्परा रचता है किन्तु थकता नहीं है ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्य प्रकरणे काल

विलासो नाम पंचविंशातितमः सर्गः२५.

अथ षडविंशःसर्गः प्रारंभः २६;

कालबिलास बर्णनम् ।

चौपाई !

बहुरि बखानौं काल बिलाशहि । जो सुनि जनमन को भ्रम नाशहि ॥ कौशलेश मुखकी है बानी ॥ कथा सुधा मृदु मंगल खानी ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहनेलगे हे महर्षि ! जब इस संसारमें कालादिके ऐसे चरित्र है तो बताइये कि मेरे समान मनुष्य इसमें कैसा बिश्वास करैं। प्रपंच रचने में चतुर इन दैव-कालादिके कारण हम बिकेहुयेके समान स्थित हैं और उनके मोहपें बंधकर हम बनके मृगोंके समान होगयेहैं । अपने पेट भरनेमें तत्पर यह महाधूर्त काल इस संसारमें

सब मनुष्योंको आपदाओंके समुद्रमें गिराता है। यह काल भीषण चेष्टाओंद्वारा दुराशा उत्पन्न करके प्राणियोंका ऐसेदग्ध करता है जैसे अग्नि अपनी अति उष्ण और प्रकाशमान् ज्वालाओंसे संसारको भस्म करती है। यह नियति (कर्मके अनुसार अवश्य फल देनेवाली मर्यादा) मर्यादारूप कृतान्त (यम) की प्यारी भार्याहै स्त्री होनेके कारण स्वभावसेही चपल और अपने कार्यमें तत्पर यह नियति समाधि स्थित योगियोंकी धीरताको नष्ट करदेती है । सर्प जिसप्रकार बायुका भक्षण करता है उसीप्रकार यह क्रूर हृदय कृतान्त प्राणियोंके वरुण शरीरोंको वृद्ध बनाकर भक्षण करलेता है । सम्पूर्ण निर्दयोंका राजा यम तौ किसी दुखीपर दया करना सीखाही नहीं है सम्पूर्ण प्राणियोंपर

कृपा करनेवाला तो इस संसार बहुत दुर्लभ है।

हे मुनिवर ! अज्ञ मनुष्य जिसको भोगोंका स्थान समझते है वह सब अति दारुण दुःख का मूल है, और च्यूंटीसे लेकर ब्रह्मापर्य्यन्त जितने प्राणी है सब दुःखोंके रहनेके स्थान है। आयु अत्यन्त चंचलहै, मृत्यु अत्यन्त निठुर है, युवावस्था अचिरस्थायी है और बाल्यकाल अज्ञानसेही नष्ट है। यह संसार विषयकी चिन्तासे कलंकित है जितने बंधु है वे सब इस संसारके बंधन है, जितने भोग है वे सब इस संसारमें महारोग है और तृष्णा केवल मृगतृष्णाके समान है। इन्द्रियगणही परम शत्रु है, सत्य, असत्यके तुल्य प्रतीत होता है मन आत्माका परम शत्रु है आत्मा मनकी संगतिके कारण अपनेको

आपही दुःख देती है । अहंकार आत्मकलंकका कारण है बुद्धि क्षीण होगई हैं, क्रिया सब दुःखके देनेवाली हैं और लीला (बिलास) सब स्त्रीके आधीन होगई हैं। सम्पूर्ण वासना बिषयसे शोभित होगई आत्माका चमत्कार नष्ट होगया, स्त्रियां दोषोंकी पताका हैं और सम्पूर्ण अनुरागरस नीरस होगया है। वस्तु अवस्तु प्रतीत होती है चित्त अहंकारमें नियुक्त होगया है और सब भाव पदार्थ नश्वर हैं ।

हे साधो ! बुद्धि अत्यन्त व्याकुल होकर केवल सन्तापको प्राप्त होरही है, रागरूपी रोगही इस संसारमें अधिक फैलाहुआ है परन्तु वैराग्य यहां अत्यन्त दुर्लभ है रजोगुणसे प्राणियोंकी दृष्टि नष्ट होगई है, तमोगुण वढरहा है, सत्वगुण प्राप्त नहीं होता

है और तत्त्वज्ञान तो अत्यन्त दूर है । जीवन अस्थिर है मृत्यु सन्मुख खडी है, धैर्य बिल्कुल नष्ट होगया है और असार वस्तुओं में प्रीति नित्य बढती है बुद्धि मूर्खतासे मलिन होगई शरीर विनाशके वशीभूत है जरा अवस्था शरीरपर जलरही है और पाप चमक रहा है । यत्न करनेपर भी युवावस्था चली जा रही है सज्जनोंकी संगति दूर है कोई गति कहीं नहीं है और सत्यताका कहीं भी प्रकाश नहीं है मन मोहजालमें फंसगया है सन्तोष दूर भागगया है उत्तम करुणा कभी हृदयमें उत्पन्न नहीं होती केवल नीचताही दूरसे समीप आती जाती है । धीरता अधीरताको प्राप्त होगई है प्राणी जन्म और मरणमें निमग्न हैं दुष्ट मनुष्योंका संग सुलभ है और सज्जनोंका संग अत्यन्त दुर्लभ है ।

सब पदार्थ उत्पत्ति और नाशके वशी-भूत हैं, विषय बासना संसार बंधनका हेतु है नहीं मालूम यह काल प्राणियोंके समूहों-को नित्य कहां लेजा रहा है। महाप्रलयमें दिशा अदृश होजाती हैं, देशोंके नाम बदल जाते हैं और पर्वतभी नष्ट होजाते हैं फिर हम सरीखे मनुष्योंका क्या बिश्वास ? जब सत्यस्वरूप ईश्वर आकाशको ग्रसलेता है, भुवनोंकाभी भक्षण करलेता है और यह पृथ्वीभी नष्ट होजाती है फिर हमारे सदृश मनुष्योंका क्या बिश्वास ? समुद्रभी सूख-जाते हैं, तारागणभी बिदीर्ण होंजाते हैं और सिद्धलोगभी नष्ट होजाते हैं फिर हमारे स-दृश मनुष्योंका क्या बिश्वास ? दानवभी बिदीर्ण होंजाते हैं, ध्रुव (तारे) काभी जीवन चिरस्थायी नहीं है और देवताभी

मरजाते हैं, फिर हमारे सदृश प्राणियोंको क्या बिश्वास ? इन्द्रपरभी आक्रमण होता है, यमभी शान्त होजाता है और बायुभी अबायु होजाता है फिर हमारे सदृश मनुष्योंका क्या बिश्वास ? चन्द्रमाभी शून्य होजाता है, सूर्यकेभी खण्डखण्ड होजाते हैं और अग्निभी शान्त होजाती है फिर हमारे सदृश प्राणियोंका क्या बिश्वास ? ब्रह्माकीभी समाप्ति होजाती है हरिभगवान्‌काभी संहार होजाता है भव (महादेव) भी अभावको प्राप्त होजाते हैं फिर हमारे सदृश मनुष्योंका क्या बिश्वास? जो कालकाभीसंहार करलेता है, नियतिकोभी दूर करदेता है और अनन्त आकाशकाभी बिनाश होजाता है फिर हमारे सदृश मनुष्योंका क्या बिश्वास ? जो न कानोंसे सुनाजाता है न बाणीसे कहाजा

ता है न नेत्रोंसे देखाजाता है और न जिस-
की मूर्तिके बिषयमें कुछ ज्ञान होसक्ताहै
है ऐसा एक पदार्थ है जो स्वयंही अपने
आपमें भ्रमोत्पादक माया शक्तिद्वारा ब्राह्मण
को प्रगट करता है तीनों लोकमें ऐसी कोई
बस्तु नहीं है जिसको यह बाधा न पहुंचाता
हो, वही अहंकारयुक्त होकर सब जगह बिरा-
जमान् है अश्व सहित सूर्यभगवान्भी बनके
साधारण पत्थरके समान अबश होकर पर्वतों
शिखरोंपर फेंके जाते हैं ! जैसे पका हुआ
अखराट छिलकेसे लिपटा रहताहै, वैसेही सुर
और असुरोंका निवास स्थान भूगोलभी और
सूर्यचन्द्रमादि ज्योतिश्चक्रभी उसके प्रभावसे
व्याप्त है।

स्वर्गमें देवतागण पृथिवीमें मनुष्यगण
और पातालमें भुजंग ये सब संकल्पमात्रसे

बनाये गये हैं किन्तु यहभी दुर्दशाको प्राप्त होते हैं ! जैसे मत्त हस्ती अपने मद्को बर्षाते हुए चारोंदिशाओंमें सुगन्ध फैलाते हैं वैसेही ऋतुराज बसन्तने खिले हुए पुष्पों की सुगन्धिको चारोंदिशाओंमें फैलाकर मनुष्योंके अन्तःकरणको बिचलित कर दिया है स्त्रियोंके चंचल कटाक्षोंमें जिसका मन फंसगया है उसके स्थिरकरनेमें महान् विवेकभी असमर्थ है। परोपकार करनेवाली और पराये दुखसे दुखी होनेवाली शीतल बुद्धिसे जिसको आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है उसीको मैं सुखी समझताहूं। जीवनरूपी समुद्रमें सदा उत्पन्न और नष्ट होनेवाला कालरूपी वडवानलसे गिरने वाली पदार्थरूपी तरंगोंकी संख्याकरनेमें कौन समर्थ है। मृग जिसप्रकार जंगलकी लताओंमें फँसकर

शिथिल होजाताहै उसीप्रकार मनुष्यगण मोह वशसे जीवनरूपी बनमें दुराशारूपी कालमैं फँसकर शिथिल होजातेहैं। हे ब्रह्मन्। सब लोग पुनः पुनः जन्म ग्रहणकरके कुकर्मों में फँसकर अपनी अपनी आयुको वृथा खोते हैं उनके मनकी अभिलाषा आकाशमें उत्पन्न हुए वृक्षके फूलके समान अर्थात् मिथ्या और दुखदाई है। ज्ञानी पुरुष इस फूलपर कभी ध्यान नहीं देते है। हेमुनिवर ? मनुष्य रातदिन अपनी चंचल बुद्धिके प्रभावसे ऐसी ऐसी मिथ्याबातोंमें कि जैसे आज अमुक उत्सव है, आज अमुक ऋतु है, आज यमयात्रा है हमारे भाई बंधु मित्र पिता माता है, ये हमको सुख है यह उत्तम भोग है इन्हींमें फंसा रहताहै और इन कपोल कल्पित सारहीन

बस्तुओंमें सुखकी कल्पना करके ब्यर्थ रात और दिनको खोता है ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणमें कालविलासो नाम षड्विंशतितमःसर्गःसमाप्तः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशतितमःसर्गःप्रारंभः २७,

अथ सर्वपदार्थाभाव वर्णनम् ।

दोहा ।

सर्व पदार्थ अभाव जिमि;बर्ण्यों कौशल पाल॥
रुचिर कथा बर्णन करूं,सुनि छूटहि भ्रमजाल॥

रामचन्द्रजी कहने लगे हे तात ! और भी देखिये बाहरसे रमणीक किन्तु वास्तव अरमणीय इस जगतमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिससे चित्त परम शान्तिको प्राप्त हो । कल्पित क्रीडाओंसे चपल बाल्यावस्थाके बीतनेके

पश्चात् मनरूपी मृगके कामिनी रूपी गुहामें प्रवेश करनेपर और शरीरके जर्जर होनेपर यह मनुष्य केवल संसारमें कष्टकाही भागी होता है। जरा अवस्था रूपी बरफसे मारी हुई शरीर रूपी सरोजनीको जब जीवरूपी भ्रमर दूरसेही छोडकर चल देता है तब संसार-रूपी सरोवर सूखजाता है। नव बिकसित बहुतसे पुष्पोंके भारसे परिशोभित, शिथिल बन्धवाली देहलता बृद्धावस्थाके कारण ज्यों जर्जरी भूत होती है त्यों त्योंही प्यारी लगती है तटपर उगे हुए सन्तोषरूपी वृक्षको जडसे उखाडनेमें निपुण यह तृष्णारूपी नदी अपने प्रबल प्रवाहसे सम्पूर्ण पदार्थोंको ग्रसती हुई संसारमें बह रहीहै। चर्मसे बंधी हुई, बिवेकरूपी मल्लाहसे रहित यह शरीर रूपिणी नौका

चंचल होकर संसाररूपी समुद्रमें भ्रमण कर रही है और हमारी पांचों इन्द्रियरूपी मकर उसको डुबा रहे हैं, तृष्णारूपी लताबनमें बिचरणे वाले मनरूपी बानर कामरूपी बृक्षकी अनेकों शाखाओंपर डोलते हुए केवल समय नष्ट कर रहे हैं और कुछ फल नहीं पाते हैं। बिपत्तिके समय जिसको बिषाद अथवा मोह नहीं होता है, सम्पतिसे जिसको अभिमान नहीं होता हैं और सुन्दरी गण जिसके हृदयपर आघात नहीं कर सक्ती हैं ऐसा महापुरुष इस संसारमें अन्यन्त दुर्लभ हैं। मातङ्गा (हस्ती) रूपी तरंगोंसे व्याप्त समर सागरके जो पार होजाते हैं (जो रणमें हस्तियोंसे जीत जाते हैं) उनको मैं शूर नहीं समझताहूं किन्तु शरीर और इंद्रियरूपी समुद्रमें जो मनरूपी तरंगोंके पार होजाते

(अर्थात् मनको जीतकर बासना रहित हो जाते हैं) वेही मनुष्य मेरी दृष्टीमें शूर कहे जाने योग्य हैं। इस संसारमें किसी मनुष्य-की कोई क्रिया ऐसी नहीं मालूम पडती जिसका अवलम्बन करके दुष्ट आशाओंसे ग्रस्त मनुष्य शान्तिको प्राप्त हो। जो अपनी कीर्तिसे जगत्को पूर्ण कर देते हैं जो अपने प्रतापसे दिशाओंको व्याप्त कर देते हैं, जो धनसे याचकोंके गृहको पूर्ण कर देते हैं और जो उदारतादि सदगुणोंसे लक्ष्मीकी शोभा बढाते हैं ऐसे धीर बीर महापुरुष इस सं-सारमें सुलभ नहीं है। कोई मनुष्य पर्वतोंको शिलामेंकी गुफामें क्यों न हो और बज्रके सदृ-श भवनके भीतर क्यों न रहता हो उसक सदा भाग्यनुसारं सम्पत्ति और बिपत्ति अव श्य प्राप्त होंगी। हे तात! पुत्र, कला·

और धन यह सब बुद्धिसे उपकार करनेवा
ले कल्पना किये हैं किन्तु वास्तवमें य
कुछभी उपकार नहीं करते हैं अन्तसमय
अति सुन्दर विषयभोगभी विषकी मूर्छना
तुल्य दुख दायक होते हैं । शरीर औ
आयुके अन्त समयमें विषम शोक यु
होकर, अपने धर्म हीन पहिले कार्यों
स्मरण कर वृद्धावस्थासे ग्रस्त यह जीव अ
न्तर्दाहसे दग्ध होता रहता है। जो मनु
प्रथम धर्मकी प्राप्तिमें विघ्न करनेवाले का
और अर्थके उपयोगी कार्योंमें दिवसोंको व्य
तीत करता है फिर उसका मयूरके पंख
समान चंचलचित्त किस प्रकार शान्ति
प्राप्त होसक्ता है । सत्कार्योंका फलभी न
दीके उत्तंग तरंगोंके समान क्षणभंगुर हो
हैं, संचित होनेपरभी वे प्रायः भोगनेमें न

आते दैव योगसे प्रारब्ध रूपमें बदलकर भोगका समय उपस्थित होता है उस समय देहादि असार वस्तुओं में आसक्त जीव गण वंचित होजाते हैं । कार्याकार्य करनेके निरन्तर विचार जो प्रथम अच्छे लगते हैं परन्तु परिणाममें दुखदायी होते हैं । वे स्त्री और स्वजनोंके मनकी प्रसन्नताके लिये मरणपर्य्यन्त मनुष्योंके चित्तको जर्जरकर देते हैं ।

जिसप्रकार वृक्षोंके पत्ते उत्पन्न होकर थोडेही समयमें जीर्ण होकर नष्ट होजाते हैं उसी प्रकार आत्मविवेकसे हीन प्राणी जन्म धारण करके थोडेही दिनोंमें नष्ट होजाते हैं । दिनमें यदि विवेकी पुरुषका समागम और कोई सत्कार्य न हो तो इधर उधर दूर दूर तक बिहार करनेपर संध्या समय गृहमें प्रवेश करनेपर रात्रिमें किसको निद्रा

आती है (केवल मूढ पुरुषको) समस्त शत्रुओंको जीतकर और समस्त ऐश्वर्यको प्राप्त कर जब सुख भोगनेका समय आता है तभी न मालूम मृत्यु कहांसे आजाती है। संपूर्ण बिषय थोडे समय के लिये दृष्टिगोचर होते हैं और क्षणभरमें नष्ट होजाते हैं। उनका असाररूप कैसी अज्ञात कारण वृद्धि को प्राप्त होगया है, अहो ? इन बिषयोंमें फंसेहुए मनुष्य के समीप आई हुई मृत्युको नहीं जानतेहैं। जो बिषयासक्त मनुष्य शरीरके पालनेसेही बलपूर्वक स्थूल होगये हैं और कुकर्मरूपी जालमें बंधे हुए हैं उन मनुष्यरूपी भेडोंको प्राणरूपी यजमान मृत्युका मुख बनाते हैं। तरंगोंकी मालाके समान क्षणभंगुर यह मनुष्योंका समूह सदा न मालूम कहांसे आते है और कहां चलेजाते हैं।

बिषके बृक्षोंपर फैली हुई लता और स्त्रीगण। अपनी सुन्दरताके कारण मनुष्यके मन हरण करलेतीहैं,किन्तु प्राणोंका हरना उनका मुख्य काम है,उनके ओष्ठ और पत्ता लाल होतेहैं और भ्रमरनयन (भ्रमररूपी नेत्र) अथवा भ्रमरके सदृश काले नेत्र) चंचल होते हैं। इस लोकमें अथवा स्वर्गनरकादि अन्य लोकोंसे आकर हम लोग मिलेंगे ऐसे संकेतमें बंधे हुए पुत्र मित्र और स्त्रियोंका ब्यवहारकी जो यह माया है वह केवल देवोत्सव वा यात्राके समानहैं हे मुनीश्वर! बुझते हुए दीपकके समान इस असार संसारमें यह नहीं मालूम होता है कि सार बस्तु क्या है वर्षाके बुद बुद के समान क्षणभंगुर यह संसारकी प्रबृत्तिरूप दुष्ट चाक्रि का असावधान पुरुषके चित्तमें अपना चिर स्थत्व चिरस्थित(सदैव स्थिर रहना) स्थापन

करनेमें समर्थ होतीहै। मनुष्यकी युवा अवस्था जो गुण शोभायमान थे वेही अब दैव वशसे बृद्धावस्थामें ऐसे नष्ट होगये जैसे जैसे हेमन्त ऋतुमें कमल नष्ट होजाते हैं, अतएव गुणोंमें बिवेकी मनुष्योंकी बिश्वास होना कठिण है। जो बृक्ष दैवेच्छासे बारम्बार उत्पन्न होकर अपनी छाया, पत्र और पुष्पोंद्वारा मनुष्योंका उपकार करताहै वही वृक्ष जिस संसारमें कुठारोंसे काटा जाता है, उस संसारमें बिश्वास किस प्रकार होसक्ता है। अनेक दोषोंको धारण करनेवाले शान्ति और जीवके नाशके लिये उत्पन्न विष बृक्षके समान मनोरम मनुष्यके भी मूर्छाही होती है। संसारमें कौनसी दृष्टिदोष हीन है। कौनसी दिशा दुख और दाहसे शून्य है, वह कौनसी प्रजा है जो क्षणभंगुर नहीं है, और कौनसी वैलौकिक

क्रियाहैं जो छलसे शून्य हैं ? । सम्पूर्ण पर्वत् पाषाणमय हैं, पृथ्वी मृत्तिका मयीहैं, सम्पूर्ण वृक्ष काष्ठ हैं और सम्पूर्ण प्राणी मांसादिसे बने हैं, केवल व्यवहारके लिये उनके भिन्न भिन्न नाम धर लिये गये हैं इस संसारमें कोई अपूर्वबस्तु बिकार रहित नहीं है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश परस्पर एक दूसरेसे मिलकर गोघट आदि रूपसे इस जगत्की लक्ष्मीको सिद्ध करते हैं इसलिये अविवेकी पुरुष इस जगत्की लक्ष्मीको चेतन युक्त देखते है परन्तु बिबेकी पुरुष इसको पंचभूतसे जुदा नहीं समझते; हे साधो ? मिथ्या जगतमें बुद्धिमानोंको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले व्यवहारोंकी विचित्रताभी असम्भव नहीं दिखाई देती है जैसे स्वप्नमें भी मिथ्या विषयोंका बिचित्र व्यवहार दिखाई देता है ।

आकाशलताके फलकी तरह अज्ञानके कारण मिथ्या भोगोंकी कल्पना प्रबल होती है और सामान्य लोभसे व्याकुल चित्तवाले मनुष्योंकी नवीन बय बीतजानेपरभी उनको परमात्मा सम्बंधी कथा अच्छी नहीं लगती है फिर बैराग्यकी उत्पत्ति कहांउत्तम भोग और धन संचय करनेका प्रयत्न करता हुआ मनुष्य अपने मनमें खिन्न होकर ऐसे गिरता है जैसे पर्बतकी शिखरपर ऊगी हुई हरीलताके खानेके लोभसे पशु गिरता है। जिन मनुष्योंने अपनी बिद्या और धनादिको केवल अपने शरीरकेही पोषणमें नष्ट करदिया है इस संसारमें उनका जन्म ऐसे निरर्थ है जैसे दुर्गम स्थानमें लगाये हुए बृक्षोंकी छाया पत्र और फल इत्यादि उपकार रहित होते हैं।

जैसे कृष्णसार मृगगण कभी कोमल भूमिमें और कभी कठोर घने जंगलोंमें विचरण करते है वैसेही मनुष्यभी कभी दया,दाक्षिण्य आदि मृदुल गुणों युक्त चित्त भूमिमें और कभी काम क्रोधादिक कठोर चित्त भूमिमें विचरते हैं! मुर्देके समान दया और मायासे शून्य ब्रह्माके क्षणभरके लिये रमणीय और परिणाममें भयंकर नये नये कार्य जो अन्तमें कष्ट देनेवाले हैं उनसे किन ज्ञानियोंको आश्चर्य नहीं होता।

कामसक्त पुरुष नाना प्रकारकी कुटिल चेष्टाओंमें तत्पर हैं (इसी कारणसे वे दुख भोगते हैं) और सद्गुणों युक्त विवेकी पुरुष तो इस जगतमें भी नहीं मिलसक्ता, जितनी क्रिया हैं वे सब महादुखसे युक्त है, मैं नहीं जानता कि जीवन अवस्था अब

किस प्रकार व्यतीत करनी उचित है ।

जब प्राणी आत्मपदसे विमुख होता है तब वह जगत्के भ्रमको देखता है । और जब आत्मपदको प्राप्त हो जाता है तब उसको यह सम्पूर्ण जगत् बिरस मालूम होता है । इस जगत्में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो स्थिर रहेगा इसलिये मैं अब किसमें आस्था करूं ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणे सर्वपदार्थाभाववर्णनम् नाम सप्तविंशतितमः सर्गःसमाप्तः॥ २७॥

अथ अष्टाविंशतितमःसर्गःप्रारंभः२८.

अथ जगद्विपर्यय वर्णनम् ।

दोहा—

जगत्विपर्यजिमिकह्यो, रघुकुलमणिचितलाय ।
तिमि भाषौं पावन कथा,जोसुनिजगभ्रमजाय॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे हे ब्रह्मन्। जो कुछ स्थावर जंगम जगत् दिखाई देताहै वह सब स्वप्नके समागमके समान अस्थिरहै । हे मुने! आज जो सूखे हुए सागरके सदृश गर्तके तुल्यदृष्टि होताहै, प्रातःकाल वही मेघ माला- ओंसे ढका हुआ पर्वत रूप होजायगा । जो स्थान आजविशाल बनसे पटा हुआहै और आकाशको स्पर्श करता है वही कुछ दिन पीछे पृथ्वीके समान अथवा कूप होजाताहै। जो अङ्गआज रेशमीवस्त्रोंसे ढका हुआहै और अनेक सुगन्धित द्रव्योंसे भूषितहै वही अङ्ग कल नग्न होकर किसी दूरके गढमें सडकर नाश होजायगा । जिस स्थानपर आज अनेक विचित्र आचारोंसे युक्त नगर दीख पडताहै वही स्थान कुछ दिनोमें निर्जन भयंकर जंगल बन जायगा । हेराजन्! जो मनुष्य आज बड़ा

तेजस्वी और चक्रवर्त्ती राजाहै वही थोडे दिन पश्चात् भस्मका ढेर बन जाताहैं । जहां आजआकाशकेसमानबडाविशालऔर बिस्तीर्ण जंगलहै वही ऐसी नगरी बस जातीहै जो अपनी पताकाओंसे आकाशका आच्छादन कर लेतीहै। जो भूमि आज अनेक प्रकारकी लताओं और सुन्दरबनोंसे शोभितहै वही कुछ दिन उपरान्त मरु भूमि (रेतीका मैदान) होजाताहै । जल, स्थल होजाताहै, स्थल जलमय होजाताहै, इस प्रकार काष्ठ, जल, और तृणसे युक्त इस सम्पूर्ण जगत्का परिवर्त्तन होता रहताहै। इस जगत्में बाल्यावस्था युवावस्था, शरीर, और द्रव्यसमूह येसब, अनित्यहैं क्योंकि यह तरंगके समान निरन्तर एक अवस्थाको छोडकर दूसरी अवस्थाको प्राप्त होते रहतेहैं । इस संसारमें मनुष्यका

जीवन वायुमें रखे हुए दीपकके समान चंचल है और तीनोंलोकोंके पदार्थोंकी शोभा विजलीकी चमकके समान क्षणभंगुरहै।

जैसे बीज खेतमें बोनेसे, और अंकुर उपजनेसे निरन्तर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थाको प्राप्त होता रहता है वैसेही सम्पूर्ण पदार्थ पुनः पुनः एक रूपसे दूसरे रूपको प्राप्त होते रहतेहैं मनरूपी पवनके बेगसे अनेकानेक प्राणी रूप धूल धूसरित वस्त्रोंको धारणकिये हुए पतन उत्पतन और परावर्त्तन रूप उत्तम अभिनयसे भूषित जो संसारकी स्थितरूप आडम्बरकी नटी है वह नृत्य करनेके उत्साहसे अनेक रूप धारण करके भ्रम उत्पन्न करतीहै हे राजन्! यह संसारकी रचना रूप नटी कैसी अद्भुत शोभा देतीहै, यह गन्धर्व नगरके समान भ्रान्ति उत्पन्न करतीहै, कटाक्षके समान

चंचल व्यवहारोंसे मनोहरहै, और बिजलीके समान बारबार चपल दृष्टि फैलातीहै ।

वे उत्सवके दिन, वे महात्मालोग, वे सम्पत्तियां और वे क्रिया इन सबका स्मरण मात्र रहगया और हमभी क्षण मात्रमें जातेहैं । प्रतिदिन नष्ट होताहै और प्रतिदिन पुनःउत्पन्न होताहै किन्तु तौभी इस दग्ध संसारका अन्त नहीं होताहै,मनुष्य,पशु पक्षी आदियोनियोंको प्राप्त होजातेहैं पशु पक्षी आदि मनुष्योंका जन्म धारण करतेहैं, देवता, अदेवता होजाते हैं, अतएव हे बिभो ! इस जगत्में स्थिर पदार्थ कौनसाहै ! कालरूपी सूर्यभगवान् अपनी किरणोंसे पुनः पुनः दिन और रात्रि करते है और प्राणियोंके नाशकी अवधिको देखते रहतेहैं, ब्रह्मा,बिष्णु,रुद्र और सब प्राणियोंकी जाति अपने नाशकी ओर ऐसे दौड़ रहेहैं जैसे

जल बडवानल और । स्वर्ग, मृत्युलोक, वायु, आकाश, पर्वत नदी और दिशा ये सब बिनाश रूपी अग्निके लिये शुष्कईन्धनहै, धन बन्धु, भृत्य मित्र और सम्पत्ति ये सब मृत्युके भयसे ग्रस्त मनुष्यके लिये निरस होजातेहैं, बुद्धिमान मनुष्यको सम्पूर्ण पदार्थ उसी समयतक भले मालूम होतेहैं जब तक मृत्युरूपी राक्षसीका उसको स्मरण नहीं होताहै ।

क्षणभरमेंही मनुष्यसे ऐश्वर्यवान् होजाताहै क्षणभरमेंही दरिद्री होजाताहै क्षणभरमेंही रोग रहित होजाताहै और क्षणभरमेंही रोग ग्रस्त होजाता है ।

क्षण क्षणमें उलट पुलट होनेवाले इस जगत् भ्रमसे ऐसा कौनसा बुद्धिमान् है जो मोहित नहीं हुआहै, क्षणभरमेंहीं यहआकाश मण्डल अंधकार रूप पंक (कीचड) से लिप्त

होजाता है और क्षणभरमेंही सुवर्णके द्रवके समान कोमल चन्द्रादिके प्रकाशसे सुन्दर होजाता है। कभी आकाश मेघ रूपीनीले कमलोंसे शोभित होताहै कभीभयानक उच्च शब्दोंसे पूर्ण होजाताहै और कभी मूकके समान निशब्द (शब्दरहित) होजाता है यह गगनमण्डल कभी तो तारागणोंसे खचित होताहै, कभी सूर्यके प्रकाशसे शोभायमान् होता है, कभी चन्द्रमाके प्रकाशसे रमणीय होताहै और कभी, सूर्य चन्द्रमा आदि कुछभी नहीं रहताहै। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली इस संसारकी दशासे कौनसा धीर पुरुष भयभीत नही होताहै। क्षणमेंहीआपत्ति आजातीहैं, क्षणभरमेंही सम्पत्ति मिलजातीहैं, एकक्षणभरमेंही जन्म होताहै और एकक्षणभरमेंहीं मृत्यु आजातीहै, फिर हे मुने! इस संसारमें ऐसी

कौनसी बस्तुहै जो क्षणिक नहीं है। जिस मनुष्यका पहिले और सुरूपथा उसका रूप थोडेही दिनमें बिल्कुल बदल गया' हे भगवान्! इस संसारमें कोईभी बस्तु सदैव एक रूप से स्थिर नहीं है। घट (घडा) का पट (वस्त्र) होजाताहै, और पटका घट होजाताहै घटके टूटनेपर उसका चूर्ण करके कपासके खेतमें डालनेसे वह जमकर कपासके वृक्षमें परिणित (रूपान्तर) होजाताहै और क्रमसे पट होजाताहै, और वस्त्रभी इसी तरह जीर्ण होनेपर मट्टी होजाताहै और क्रमसे घडा बन जाता है। ऐसेही संसारमें कोई वस्तु ऐसी नहीं दीखती जिसका परिवर्तन न होता हो वृद्धि, परिवर्तन (बदलजाना) विनाश और पूनर्जन्म, मनुष्योंके समीप दिन रात्रिके समान आते रहते हैं। कायर पुरुषको वीरको

मार डालता है, एक मनुष्यही सौ मनुष्योंको नष्ट कर देता है, नीच पुरुष प्रभुताको प्राप्त होजाते हैं, (धनवान् हो जाते हैं) तथा धनी निर्धन होजातेहैं, इसी प्रकार समस्त संसारका परिबर्तन होता रहता हैं। यह जन समूह निरन्तर ऐसे परिबर्तित (बदलता)होता रहता है जैसे जलकी गतिके संसर्गसे तरंगोंका समूहहै। उसी प्रकार बाल्यावस्था थोडेसेही दिनोंमें चली जाती है, पश्चात् युवावस्थाकी शोभा थोडेही समयमें नष्ट होजातीहै,और फिर वृद्धावस्था आजाती है, जब शरीरही इस प्रकार एक अवस्थासे दूसरीमें बदलता रहता है तब अन्य बाह्य पदार्थोंमें क्या बिश्वास हो ! नटके समान यह मन क्षणमें ही आनन्दित होता है क्षणमेंही बिषाद युक्त होताहै और क्षणमेंही क्रोधित होजाता है ! कहीं कुछ वस्तु और

कहीं कुछ वस्तु रचता हुआ यह ब्रह्मा ऐसे नहीं हारता है जैसे बालक खेलनसे । संसारके पदार्थोंका आबिर्भाव और कभी तिरोभाव सदा होता रहता है इस जगत् में मनुष्योंकी बिपद् और सम्पद् कोईभी स्थिर नहीं है । यह काल प्रायः सभीको विपत्तिके सागरमें डुबाता हुआ क्रीडा करता है, खेलते समय सम्पूर्ण चतुर मनुष्योंको बिचलित करनेमें यह बडा निपुण है । तीनोंलोकोंमें जितने प्राणी है वे सब फलके समान है, समपाक और विषमपाकके वशसे वे सब अनेक प्रकारके हैं यही सब फल समयरूपी पवनके बेगसे संसाररूपी बिशाल बृक्षसे प्रतिदिन गिरते रहते हैं ।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणे जगद्विपर्य्ययनाम अष्टा विंशति तमः सर्गः समाप्तः ॥ २८ ॥

अथ एकोनत्रिंशः सर्गः प्रारम्भः २९.

अथ सर्वान्तप्रतिपादनम् ।

दोहा-

सर्ब अन्त बर्णन कियो, कौशिक सो रघुबीर ॥
सो सप्रेम सज्जन सुनहि, छूटहि भवभयपीर ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे इस प्रकार दोष दर्शनरूप दावाग्निसे दग्ध मेरे चित्तमें भोगोंकी आशा ऐसे नहीं उदय होती है, जैसे सरोवरमें मृग तृष्णा । समयके प्रभावसे संसारकी स्थिती प्रतिदिन ऐसे कटु होती जाती है, जैसे नीमपरचढी हुई बेल । हे राजन् ! कांटेके वृक्षके समान कर्कश मनुष्योंके चित्तोंमें प्रतिदिन दुर्जनताकी तो वृद्धि होती जाती है और सुजनताका लोप होता जाता है । सूखी

हुई अदकी फलीके समान, सांसारिक अवस्था थोडेही समयमें भग्न [टूट] जाती है । इस फलीके टूटनेमें तो टंकार शब्द होता है किन्तु संसार की अवस्थाके भंग होने में यह शब्द नहीं होता ।

हे मुनीश्वर ! राज्य और जितने भोग हैं वे सब चिन्ताके स्थान हैं । चिन्ता रहित होकर निर्जन स्थानमें रहना उनसे अच्छाहै । बाटिकामें मुझको आनन्द नहीं मिलता स्त्रियोंसे मुझको सुख नहीं है, धनकी आशासे मुझको हर्ष नहीं हैं, मनका शान्त रहनाही मेरे लिये सब कुछ है किन्तु हे तात ! जगत् अनित्य और सुखहीन है, तृष्णा दुर्वह (धारण करनेके अयोग्य) और चित्त चपलता से दूषित है, फिर मैं किस प्रकार शान्ति लाभ करूंगा । न मैं मृत्युसे प्रसन्न होता हूं और

न मैं जीवनसे प्रसन्न हूं, जैसे जिस दशामें रहूं उसमें चिन्ता रहित होऊं यही मेरी इच्छा है। राज्य, भोग, धन और कामना यह मेरे लिये किसी कामकी नहीं हैं क्योंकि इन सबका मूल जो अहंकार है वह तो मेरा नष्ट होगया है। जन्मपरम्परा रूप चर्मकी रज्जुसे इन्द्रियरूपी दृढ ग्रन्थियोंसे सब जीव बद्ध हैं उनसे छूटनेके लिये जो प्राणी उद्योग करते हैं वेही प्रशंसाके योग्य है।

कामदेवने स्त्रियोंद्वारा मनुष्यके हृदयको ऐसे मथन कर लिया है जैसे हस्ती अपने पावोंद्वारा कोमल कमलको रौंद डालते हैं। हे मुनिवर ! यदि अवही निर्मल बुद्धिद्वारा इस मनकी चिकित्सा न की जायगी तो फिर इसकी चिकित्साके लिये अवसर कहां मिलेगा विषयभोगही भयंकर बिष है, संसारमें जिसको

बिष बोलते हैं वह बिष नहीं है कारण कि एक जन्मका बिषयरूपी बिष जन्मान्तर मृत्युके मुखमें डालता है अर्थात् मोक्षका बाधक होता है किन्तु बिषतो एक जन्मकी देहकोही नष्ट करता है। सुख, दुख, सुहृद्, मित्र, मरण जीवन, कोईभी आत्मज्ञानीके चित्तके बांधनेमें समर्थ नहीं हैं। हे पूर्वापरके वेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मन् ! इसलिये जिसप्रकार मैं शोक, भय और खेदसे मुक्त होकर आत्मज्ञानको प्राप्त होऊं वही मुझको उपदेश कीजिये । अज्ञानरूप एक महा भयंकर जंगल है, वासनाओंके जालसे तो वह बेष्टित है, दुखरूपी कांटोंसे व्याप्त है, और इसमें निपतन और उत्पतन (बिपद और सम्पद) रूपी बहुतसे ऊंच, नीचे स्थान हैं ।

हे मुनिवर ! मैं आरीके दान्तोंके रगडको सह सक्ताहूं किन्तु संसारके व्यवहारसे उत्पन्न आशा और बिषयके रगडको मैं सहन करनेमें असमर्थ हूं । जैसे बायु धूलिके ढेरको कंपाती है वैसेही वह नहीं है यह है । इत्यादि ब्यवहाररूपी अज्ञान अंजनसे उत्पन्न भ्रान्ति मनको चंचल कर देती है । संसारके समान है, यह तृष्णारूपी डोरामें पिरोया हुआहै जीवसमूह उसमें मोती हैं यह साक्षि चैतन्य निर्मल मनरूपी शिखामणि उसमें चमकती है यह कालरूपी लम्पटका आभूषण है, मैं इसको वैराग्यद्वारा ऐसे तोड डालूंगा जैसे सिंह जालको तोडडालता है । हे तत्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! मेरे मनके अज्ञानरूपी अंधकारको बिज्ञानरूपी दीपकसे दूर कीजिये । हे महात्मन् ? जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर रात्रिका अंधकार दूर होजाता है वैसेही ऐसी कोईभी

मानसिक व्यथा नहीं है जो उत्तम पुरुषोंकी संगतिसे नष्ट न होजाय । आयु बायुके बेगसे परिचालित बादलमें लटकते कणके समान क्षणभंगुर है, सम्पूर्ण भोग बादलोंके समूहमें चमकती हुई बिजलीके समान चंचल है और युवावस्थाके आनन्दजलके प्रबाहके समान अस्थिर है। इसप्रकार मैंने थोडेही समयमें बिचार करके चित्तकी शान्तिके लिये यही उपाय स्थिर किया है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणे सर्वांत प्रतिपादन नामैकोनत्रिंशत्तमः सर्गः समाप्तः ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशत्तमःसर्गःप्रारंभः ३०
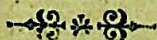
अथ वैराग्यप्रयोजन वर्णनम् ।

॥ दोहा ॥

जिमिवैराग्य प्रयोजन, भाष्यो रघुकुल चन्द ॥
सो वर्णों जाके सुनत, होत मनुज आनन्द ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि इसप्रकार सैंकडों अनर्थोंसे व्याप्त इस संसाररूपी कोटरमें सब जीवोंको निमग्न देखकर मेरा मन चिन्तारूपी कीचडमें मग्न होगया है, और मेरा मन अत्यन्त डावाँडोला होरहा है, भयभी उत्पन्न होता है और मेरा शरीर ऐसे कांपता है जैसे बायुसे पुराने बृक्षके पत्ते। उत्तम सन्तोष और धैर्यरूपी माताकी गोदको न पाकर अत्यन्त ब्याकुल वह बुद्धि ऐसे डरती है जैसे अल्प अवस्थावाली बालिका शून्य जंगलमें भयको प्राप्त होती है। अनेक प्रकारके बिचारोंसे अन्तःकरणकी बृत्तियां दुखरूपी गढेमें ऐसे गिरपडती है जैसे चारेके लोभसे सूक्ष्म तृष्णोंसे ढके हुए गढेमें हरिण गिरपडता है।। अज्ञानी पुरुषोंके बशोभूत चक्षु आदि इन्द्रियां सांसारिक

पदार्थोंमें ऐसे गिरपडती हैं जैसे बिना नेत्रों- के अन्धा पुरुष कुएमें गिरपडता है जीवरूपी ईश्वरके आधीन चिन्ता प्रियस्थानमें नव- वधूके समान न स्थिर रहसक्ती है और न मनवांछित पदार्थोंको पा सक्ती है।

सन्तोष पौषमासकी लताके समान किसी किसी पुरानी बस्तुको त्यागता और किसी बस्तुको ग्रहण करता हुआ क्रमसे जर्जर होगया है। चित्तकी चंचलतासे हमारे संसारिक और पारमार्थिक सब प्रकारके सुख नष्ट होगये हैं, इससमय संसारकी अवस्था हमको कुछ अंशमें त्यागकर और कुछ अंशमें ग्रहणकरके स्थितहै। इस समय हमारी बुद्धि आत्मतत्वके निश्चयसे शून्य है। शाखाहीन बृक्षके मूलको देखकर जैसे मनुष्य यह चोर है, नहीं ऐसे संदेहसे व्याकुल होते हैं वैसेही हमारी बुद्धि " यह

तत्व नहीं है " ऐसेही सन्देहमें ग्रस्त है। चित्त चंचल है बिबिध प्रकारकी भोगबासनाओंसे पूर्ण है और त्रिभुवन उसका बिहारस्थल है, देवतागण जिसप्रकार अपने बिमानको नहीं त्यागते वैसेही यह मन अपनी भ्रांतिको नहीं त्यागता है। अतएव हे साधो ! जहांपर शोक नहीं है ऐसा भ्रांतिनाशक, खेदरहित, सार बिश्रामस्थान कौनसा है। जनक प्रभृति महा पुरुषगण सांसारिक व्यवहारोंकी रक्षा करते थे और सम्पूर्ण कार्योंका निर्बाह करते थे फिरभी तत्वज्ञानीं होकर परमपदको कैसे प्राप्त होगये ? हेबहुमानप्रद मुनिवर ! अनेकप्रकारसे संसाररूप पंकके अंगोंमें लगे रहनेपरभी किसप्रकार मनुष्य उसमें लिप्त नहीं होसक्ता सो कहिये। वह कौनसी दृष्टि है जिसका अबलम्बन

कर आपके सदृश दोषरहित जीवन्मुक्त महा-
पुरुषगण संसारमें विचरण करते हैं । वि-
षयी पुरुषको जो विषयभयके लियेही लो-
भित कर रहे है ऐसे क्षणभंगुर संसारके वैभ-
व कैसे मंगलकारी होसक्ते हैं ।

मोहरूपी मातंग (हस्ती) से गदलीकी
हुई और कामादि पंकसे दूषित यह बुद्धिरूप
सरोवर किसप्रकार स्वच्छ होसक्ता है ? मनुष्य
संसारक्षेत्रमें ब्यवहार करता हुआ कमल
के पत्रमें पानीके समान बंधनको प्राप्त हो
इसका क्या उपाय है ? इस संसारको अन्तर
दृष्टिसे आत्मवत् और बाह्यदृष्टिसे तृणके
समान समझनेवाला मनुष्य कामादि वृत्तियों
को स्पर्श न करता हुआ किस प्रकारसे परम
पदको प्राप्त होसक्ता है अज्ञानरूपी समुद्रको
पार करनेवाले किस महा पुरुषके समान

आचरण करनेसे मनुष्य दुखको प्राप्त नहीं होता। कौनसा मंगलदायक पदार्थ है, कर्म उपासनादि का उत्तम फल कौनसा है? और असमंजससे पूर्ण इस संसारमें किस प्रकार व्यवहार करना उचित है। हे प्रभो! ब्रह्माके बनाये हुए इस अस्थिर जगत्के पूर्वापरका जिससे ज्ञान हो ऐसा तत्वपदार्थ का उपदेश मुझको कीजिये।

हे ब्रह्मन्! मेरे हृदयरूपी गगनमें चन्द्रमा-रूप चैतन्य उज्वल अन्तःकरण है उसकी मलिनता जिस प्रकार दूर होजाय वही उपाय कीजिये। इस संसारमें कौनसा पदार्थ त्याग-नेके योग्य है, कौनसा ग्रहण करनेके योग्य है, तथा वह कौनसा पदार्थ जो न त्यागनेके योग्यहै और न ग्रहण करनके। यह चंचल चित्त कैसे पर्वतके समान अचल होसक्ता है?

सैकडों प्रकारकी यंत्रणा देनेवाली यह संसार-रूपी बिशूचिका (हैजा) किस पवित्र मंत्रसे बिना परिश्रम कियेही शांत होसक्ती है ? मैं पूर्णचन्द्रके समान आनन्दरूपी वृक्षकी लताकी पूर्ण शीतलताको कैसे पाऊँ । आप तत्वज्ञानी साधु हैं मुझको ऐसा उपदेश दीजिये जिससे मैं आन्तरिक पूर्णताको प्राप्त होकर फिर दुखभोग न करूँ । हे महात्मन् ! जो क्षुद्रजीव सर्व श्रेष्ठ परमानन्द पदमें स्थिरताको प्राप्त नहीं हुए हैं मनकी वृत्ति उनकी ऐसी दुर्दशा करती हैं जैसे कुत्ता मृतप्रायः शरीरकी वनमें दुर्दशा करते हैं ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणें वैराग्य प्रयोजन वर्णनं नाम त्रिंशत्तम:सर्ग:समाप्त: ॥३०॥

अथ एकोत्रिंशत्तमःसर्गःप्रारम्भः ३१.

अथ राम प्रश्न वर्णनम् ।

दोहा ।

रुधिरप्रदन बहुविधि कियो,कौशिकसोंश्रीराम
सोबर्णों जाके सुनत, सुजन लहहि शुभधाम ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे आयु, उच्च वृक्षके चंचल पत्रपर गिरीहुई जलकी बूंदके समान पतोन्मुख शीघ्रही बिनाश होनेवाली है शरीर शिवजीके मस्तकके भूषण चन्द्रकला के समान दुर्लक्ष्यहै और धान्यके क्षेत्रमें शब्दायमान मेढकके--कण्ठके चर्म्मके समान नश्वरहै तथा सुहृद बांधवोंका समागम जीवके लिये जालके समान है । बासना रूपी पवन बह रहीहै, दुराशा रूपी विद्युत् तडक रहीहै,

मोह रूपी मेघ निरन्तर घोर गर्जना कर रहे हैं। लोभ रूपी प्रचण्ड उन्मत मयूर ताण्डव नृत्य कर रहेहैं, अनर्थ रूपी कुटजणे वृक्षकी कलिका बिकसित हो रहीहै प्राणीरूपी मूष-कोंके भक्षण करनेके लिये क्रूर यमराज रूपी मार्जार (बिलाव) अत्यन्त व्यग्र होरहाहै, ऐसी अवस्था में हमारा क्या उपायहै, क्या गति है ? हमारा आश्रय क्याहै ? किस बिषयकी चिन्ता करनी चाहिये।

पृथ्वी, आकाश और स्वर्गमें ऐसी कोईभी बस्तु नहीं है जो अति तुच्छ होने परभी आपके सदृश महात्मागणोंकी इच्छासे रमणीय न होजाय। निरन्तर दुख यंत्रणासे व्याप्त यह नीरस दग्ध संसार उत्तम स्वादुको प्राप्त हो किन्तु मोह ग्रस्त न होय इसका क्या उपायहै ? जिस प्रकार बसन्त ऋतुमें श्वेतादि

बर्णके पुष्पोंसे पृथ्वी शोभित होती है उसी प्रकार आशाके बिरुद्ध पूर्ण कामनारूपी दुग्ध से स्नान करनेसे यह संसार कैसे रमणीय होसक्ता है ! काम कलंकसे दूषित मनरूपी चन्द्रमासे किस प्रकार प्रक्षालनपर निर्मल अमृतके समान उत्तम चन्द्रिका उदय होती है। हम संसारकी गतिके देखनेवाले और इस लोक तथा परलोकके भोगोंसे शून्य किस महापुरुषका अनुसरणकर संसाररूपी बन में बिचरणकरै। रागरूपी महारोग तथा भोग से पूर्ण ऐश्वर्य संसाररूपी समुद्रमें चलनेवाले किस जन्तुको बाधा नहीं करतेहैं। हे धीर बीर ! जैसे रससे शोभित पारद अग्नि में गेरनेसे भी दग्ध नहीं होताहै वैसेही ज्ञानरूपी रस सम्पन्न संसारी मनुष्य संसाररूपी अग्निमें गिरनेपरभी दग्ध होनेसे किस प्रकार बच

सकताहै। जैसे जलके जीव निर्जल स्थानोंमें नहीं रह सक्ते इसी तरह संसारी प्राणी भी बिना कर्मोंकी उपार्जनाके स्थिर नहीं रहसक्ते।

जैसे अग्निकी ज्वाला दाहहीन नहीं होती वैसेही राग द्वेषसे शून्य सुख दुखसे बर्जित उत्तम क्रिया संसारमें नहीं है, तीनों लोकोंमें सद्युक्तिके बिना बासना सहित मनकी सत्ता का नाश होना असम्भव है इसलिये आप उसी उत्तम युक्तिका पूर्ण रीति से उपदेश कीजिये। व्यवहार करने परभी जिस युक्तिसे मुझको दुख न हो अथवा व्यवहार न करनेकी जो उत्तम युक्ति हो उसी का उपदेश आप कीजिये! जिसके करनेसे मन पवित्र और परम शान्तिको प्राप्त हो उसको पहिले किस मनस्वीने कियाहै और किस प्रकारसे कियाहै

हे भगवन्! साधुगण जिससे निश्चय दुःख

से रहित होगये हैं उस युक्तिको मोहकी निवृत्तिके लिये आप मुझसे वर्णन कीजिये अथवा हे ब्रह्मन् ! यदि ऐसी कोई युक्ति नहीं है, अथवा है परन्तु तौभी उसका उपदेश मुझको कोई नहीं करसक्ता, अथवा उपदेश पानेपरभी मैं अत्युत्तम शान्तिलाभ न कर सकूंगा तौ मैं सम्पूर्ण कामनाओं और अहं-कारका परित्यागकर न भोजन करूंगा न जल पीऊँगा, न वस्त्र धारण करूँगा, न स्नान दान आदि कोई कार्य करूंगा, न किसीका सम्पतिमें, न बिपति में और न अन्य किसी अवस्थामें स्थिर रहूँगा, और देह त्यागके सिवाय मुझको और कुछ इच्छा नहीं है। आशंका, ममता और मत्सर त्याग करके मैं चित्रके समान मौनहोकर कालपाय न करूँगा इसके अन्तर श्वासका गमनागमन, और

ज्ञानको परित्यागकर देहनामक इस अनिष्ट-कारक सामग्रीको त्याग दूँगा, । न मैं देहका हूँ और न यह देह मेरा है, और न अन्य देहादि मेरे हैं, मैं तेल रहित दीपकके समान निर्वाण होजाऊँगा, सबको त्यागकर उस कले-वरकोभी मैं त्याग दूंगा । निर्मल चन्द्र-माके समान अतिसुन्दर बिचारशील और उदार चित् रामचन्द्रजीने इतना कहकर ऐसे मौन होगये जैसे मयूरके रव करके श्रमसे कारण मेघोंके सन्मुख चुप होजाता है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे बैराग्यप्रकरणे राम-प्रश्न वर्णनम् नामैकत्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशःसर्गः प्रारंभः ३२

अथ नभश्चर साधुवाद वर्णनम् ।

चौपाई ।

नभचरसाधु बाद सुखदायक ॥ जिमि भाष्यो श्रीरघुकुल नायक। पावन चरित सुहावन सोई । ताहि सुनत भव भीति न होई॥

श्रीवाल्मीक मुनि बोले कमल लोचन राजनन्दन रामचन्द्रजीके मनके मोहके नाश करनेवाले बचनोंके कहनेपर उस सभामें बैठे हुए समस्त मनुष्य बिस्मय से बिकसित नेत्र होगये और उनके रोम उन बातोंको सुननेके लिये व्यग्र होकर बस्त्रोंको छेदकर बाहर निकल आये अर्थात् इन बातोंको सुनकर उनके रोम खडे होगये। वैराग्य बासनासे सबकी संसारी

बासना दूर होगई और सबके सब मुहूर्त भरके लिये अमृतके समुद्रमें लहरलेने लगे। आनन्द से प्रफुल्लित होकर सब मनुष्योंने चित्रके समान खडे होकर रामचन्द्रजीके बचनोंको आदर पूर्बक सुना।

सभामण्डपमें बैठेहुए बसिष्ठ बिश्वामित्र प्रभृति मुनिगण, मंत्रमें कुशल जयन्त धृष्टि आदिमंत्रीगण, दशरथ आदि राजा प्रजागण राजपुत्रगण, वेद वादी ब्राह्मणगण, भृत्यगण आमात्यगण, और पंजरस्थ पक्षीगण, रामचन्द्रजीकी इस कथाको सुनने लगे। क्रीडामृग निस्तब्ध होकर, तुरंगगण अपनी चंचलता को त्यागकर, और कौसल्या प्रभृति वनितागण अपने अपने झरोखेंमें बैठकर श्रीरामचन्द्रजी की इस कथाको सुनने लगीं। उस समय उनके भूषणोंका शब्दभी बन्द होगया।

वाटिकामें उगी हुई लता, और अटा-रियों पर रहनेवाले पक्षीगण, अपने पंखों और मुखोंके शब्दोंको बन्दकर श्रीराम-चन्द्रजीकी कथाको श्रवण करने लगे । सिद्ध-गण, गन्धर्व किन्नर, प्रभृति आकाशमें बिचर-नेवाले, नारद, व्यास, पुलहप्रभृति मुनिश्रे-ष्ठगण, अन्य देवतागण, इन्द्रादिक, बिद्याधर और महाभुजंगगण विचित्र अर्थोंसे युक्त उदारतासे भरेहुए रामचन्द्रजीके बचनोंको सुनने लगे । अनन्तर रघुकुलरूपी गगन स्थितपूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर कमल लोचन रामचन्द्रजीके मौन होनेपर आकाश स्थित सिद्धगण साधु वाद और पुष्प वृष्टि करने लगे, वह बृष्टि मन्दारके पुष्पोंके मध्य में बिश्राम करनेवाले भ्रमरोंसे शब्दामान उत्तम सुगंधोंसे मनुष्योंको प्रसन्न करने वाली

और अधीर करने वालीथी। वह वृष्टि आकाश वायुसे गिराई हुई तारागणोंकी पंक्तिके सदृश तथा पृथ्वीपर गिरी हुई देवताओंकी स्त्रियोंके हास्यकी शोभाके समान थी। विजलीसे शोभित गगनमण्डलसे गिरेहुए मेघोंके खण्डोंके समान और फेंके हुए मक्खनके लौंदाके समान थी। वह पुष्पवृष्टि, हिमवृष्टिके तुल्य, मोतियों हारोंके समूहके समान, चन्द्रमाकी किरणोंकी मालाके समान और क्षीर सागरकी तरंगोंके समान थी भ्रमरगण चारों ओर गुंजार करने, "सीत्कार" गीत गाती हुई सुगन्धित मधुर पवन पुष्पोंको इधर उधर उडाने लगी। नीलकमलके समान निर्मल आकाशसे पुष्पवृष्टिके कारण गृहोंके आंगन छत,और अटारियां ढक गईथी तथा नगरवासी नरनारीगण ग्रीवा उठा २ कर उसको देखते

थे। ऐसी पुष्पवृष्टि अबतक किसीने नहीं देखी थी, इस को देखकर सभी मोहित होगये। आकाशमें अदृश्यभावसे खडेहुए सिद्धगण इसीप्रकार आधी घडीतक पुष्पवृष्टि करते रहे। सभामण्डप और सभासद गण पुष्पोंसे ढक गयेथे। वृष्टिके शान्त होनेपर सभासदोंने सिद्धगणोंकी नीचे लिखीहुई बाणी सुनी "कल्प आरम्भ होतेही स्वर्गके चारों ओर सिद्ध मण्डलीमें हम भ्रमण करते हैं किन्तु जैसी कथा हमने आज सुनी है वैसी कानोंको सुख देनेवाली कथा पहिले कभीभी कहीं नहीं सुनी थी। रघुकुलचन्द्र श्रीरामचन्द्रजीने वैराग्यवेशमें जो कथा कही है वह बृहस्पतिजीको भी दुर्लभ है। अहो! आज हमने श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे निकले भये हृदयको आनन्द देनेवाले पवित्र वाक्योंको श्रवण कियाहै।

शान्तिरूपी अमृतसे शोभायमान् उत्तमपदको प्राप्त श्रीरामचन्द्रजीने जो उचित कथा कही है उसको सुनकर हमको शीघ्रही ज्ञान प्राप्त होगया ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणे नभश्चर साधुवादवर्णननाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशतमः सर्गः प्रारंभः ३३.

अथ नभश्चरमहीचर संमेलन वर्णनम् ।

दोहा—

नभचर भूचर संमिलन, भाषौंकथा अनूप ।
सज्जन सुनहि सप्रेम त्यहि, पुनि न परहिभवकूप

सिद्धगण बोले रघुकुलकेतु श्रीरामचन्द्रजीने जो परम पवित्र कथा कही है उसका महर्षि

गण ! जो उत्तर देंगे वही सुननेकी हमारी अभिलाषाहै। हे नारद ! व्यास और पुलह आदि श्रेष्ठ मुनिगण ! निर्विघ्नता पूर्वक शीघ्रही आप इस कथाको सुननेके लिये पधारिये । जिसप्रकार भ्रमर सुवर्ण के समान शोभायमान् कमलिनीपर जाते है उसी प्रकार हमकोभी सुवर्णसे मढीहुई, दशरथकी पवित्र सभामें चारों ओरसे जाना उचितहै।

श्रीबाल्मीकमुनि बोले कि बिमानोंमें बिराजित, समग्र दिव्य मुनि मण्डली इतनी बात कहकर शीघ्रही उस सभामें उतरी। बीणा बजाते हुए महर्षि नारदजी उस मुनि मण्डलीके अग्रभागमें थे, तथा मेघके समान श्यामबर्ण श्रीवेदव्यासजी पश्चात् भागमेंथे। तथा भृगु, अङ्गिरा और पुलस्त्य आदि महर्षिगण तथा च्यवन उद्दालक, उशीर

और शरलोमा आदि ऋषिगण मध्यभागमें थे। आपसमें एक दूसरेकी रगडसे उनकी मृगच्छालाओंके रोम ऊंचे नीचे होगये थे चंचल रुद्राक्षकी माला धारण कर रहेथे तथा एक २ उत्तम कमण्डलु उनके हाथमें था. अपने अधिक तेजसे श्वेतवर्ण वह मुनिमण्डल आकाशमें तारामण्डलके समान था तथा सूर्योंकी पंक्तिके समान वह एक दूसरेके मुखकी शोभा बढातेथे नानाप्रकारके रत्नोंकी कान्तिसे अंगोंके अनेक वर्ण दिखाई देतेथे और मोतियोंकी माला के समान सुन्दरतासे युक्तथे । जहांपर व्यासजी बैठे थे वहाँ ऐसा ज्ञान होताथा मानो तारामण्डलके समीप बादल आगयाहैं एक ओर नारदजी ऐसे शोभित होरहे थे जैसे तारागणोंके समूहमें चन्द्रमा शोभाको

प्राप्त होताहै जैसे देवताओंमें इन्द्र होता है वैसेही इस सभामें पुलस्त्यजी थे और अङ्गिरा ऋषि देवताओंमें सूर्यके समान विराजमान थे।

इसप्रकार जब सिद्धोंकी सेना पृथ्वीपर उतरआई तब राजा दशरथकी सम्पूर्ण सभा उठकर खडी होगई। फिर नभश्चर और महीचर परस्पर मिलकर अपने अंगोंकी प्रभासे दिशाओंको प्रकाशित करते शोभित हुए। उनके हाथोंमें बांसकी छडी और नीलकमल हैं उनकी शिखाओंमें दूर्वा (दूब) के अंकुर हैं और उनके केश चूडामणिसे शोभित होरहे हैं। जटाओंसे उनका वर्ण कपिल (धूम) होरहा है उनके मस्तक मालाओंसे वेष्टित होरहे हैं, हाथोंमें रुद्राक्ष और पुष्पोंकी माला धारण कर रहे हैं। वल्कल (छाल)

के वस्त्र धारण कर रहे हैं माला और पीता-म्बर पहर रहे हैं तथा मुंजकी मेखला उनकी कटिमें पडी हैं।

वशिष्ठजी और विश्वामित्रजीने पाद्य अर्घ्य और मधुर बचनोंसे उन सिद्धगणोंका क्रमसे स्वागत किया। नभश्चर गणोंनेभी अर्घ्य, पाद्य और मधुर बचनोंसे वसिष्ठ और विश्वा-मित्रकी आदरपूर्वक अर्चना करी! फिर राजा दशरथने सम्पूर्ण सिद्धगणोंकी सादर पूजा की और उननेभी कुशल वार्ता पूछ कर राजाकी अभ्यर्थना की। इसके पश्चात नभश्चर बृन्द और महीचर गण प्रीतिपूर्वक एक दूसरेका आदरसत्कार करके अपने अप-ने आसनों पर विराजमान् भये और उन सबने मधुर वाक्य, पुष्पवृष्टि और साधुवादसे नम्रतापूर्वक सन्मुख खडे हुए रामचन्द्रजीकी

पूजा की फिर राज्य लक्ष्मीसे शोभायमान् श्रीरामचन्द्रजी उनकी आज्ञानुसार) उसी स्थानपर बैठगये । विश्वामित्र, वसिष्ठ, वामदेव, मंत्रीगण, नारद, देवपुत्र, मुनिश्रेष्ठ, व्यास, मरीचि, दुर्वासा, अंगिरामुनि, ऋतु, पुलस्त्य, पुलह, मुनिवर शरलोमा, वात्स्यायन, भरद्वाज, मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी, उद्दालक, ऋचीक, शर्य्याति और च्यवन यह समस्त तथा औरभी वेदवेदांग परायण बहुतसे तत्वज्ञानी महात्मागण, वहांपर विराजमान हुए फिर नारद आदि महर्षियोंने वसिष्ठ और विश्वामित्रजीसे रामचन्द्रजीके बिषयमें जो नम्रता सिर नीचा किये हुए बैठे थे यह बात कही कि कुमार श्रीरामचन्द्रजीने बैराग्यरससे पूर्ण, कल्याण करनेवाली बडी परम उदार कथा कही है । ऐसी

रामचन्द्रजीकी कथा जिसमें बक्तव्य बिषय सि-द्धान्त स्वरूपहैं, जिस्में ज्ञानका परिचय बिशेष है जो उचित है बिद्वानोंकी मण्डली-में कहे जाने योग्य है, जो बहुत उत्तम है जो हृदयको प्रफुल्लित करती है जो श्रेष्ठ पुरु-षोंके योग्य है जो चंचलतासे रहित है जिस-के पद शुद्ध हैं, जिसका उच्चारण दोषहीन है जो हितकारी है और सन्तोषदायक है उसके सुननेसे किसको आश्चर्य नहीं हुआ। सैकडों वक्ताओंमेंसे किसी एकही प्रधान पुरुषका बाक्य सब अंशोंमें उत्तम, चमत्कार करनेवाला और मनके भावको प्रकाश कर-नेवाला होता है हे कुमार! विवेकरूपी फलों-से युक्त बुद्धिरूपिणी शरकी लता तुह्मारे शिवाय और किस मनुष्यके बिचार और बैराग्यरूपी फूल पत्तोंसेबिकासित हो।

आत्माको प्रकाशित करनेवाली बुद्धिः रूपी दीपककी शिखा, रामचन्द्रजीके समान जिस मनुष्यके हृदयमें प्रज्वलित होरही है वही मनुष्य है। बहुतसे मनुष्य रक्त, मांस और अस्थिमय शरीरके शब्द, स्पर्शादि विषयजालमें बंधेहुए हैं किन्तु बुद्धिरूपी दीपककी शिखा जिनके हृदयमें प्रज्वलित होरही है ऐसे चेतन पुरुष इन मनुष्योंके समान बंधनमें नहीं हैं। जो इस संसारमें नरदेह धारण करके तत्त्वज्ञानका बिचार नहीं करते वे पशुके समान हैं और पुनः पुनः जन्ममृत्यु, और जराकी यंत्रणाको भोगते हैं, रामचन्द्रके समान काम क्रोध आदि शत्रुओंको दमन करनेवाला, पूर्वापर विचार कुशल, निर्मल चेत्ता पुरुष संसारमें कहींपर किसी समय एकही दीख पडताहै। अति

उत्तम मधुर फलधारी आमके वृक्षके समान तत्व साक्षात्कार परिणाम सौम्यमूर्त्ति महा पुरुषगण संसारमें बिरले ही होतेहैं । मान-नीय श्रीरामचन्द्रजीनेही इस अवस्थामें त्हद-यमें आत्माबिवेककी मधुरताका अनुभवकर लियाहै और जगतकी अवस्थाको अच्छी प्रकार समझ लियाहै । सुन्दर फल फूलोंसे शोभित, चढनमें सुगमवृक्ष साधारण सब देशोंमें उत्पन्न होतेहैं किन्तु चन्दनका वृक्ष सब जगह उत्पन्न नहीं होताहै । फल और पुष्पोंसे शोभित वृक्ष सदा सब वनोंमें मिल-सक्तेहैं किन्तु अपूर्व शोभाशाली लवङ्गका वृक्ष सदा सब जगह सुलभ नहींहैं । चन्द्र-माकी चान्दनीके समान शीतल उत्तम वृक्ष-की मंजरी एक समान शोभायमान् और पुष्पोंकी सुगन्धिके समान (हृदयग्राही)

चमत्कृति श्रीरामचन्द्रजीहीमें देखीगईहै। हे द्विजेन्द्र गण॥ उद्दण्डता और दौरात्म्य (दुष्टता) से युक्त, और दैवसे रचित इस दग्ध संसारमें सार अत्यन्त दुर्लभहै। जो यशोनिधि (यशके समुद्र) वृद्धिशाली मनुष्य सारकी प्राप्तिके लिये यत्न करतेहैं वेही धन्यहैं, सज्जनोंमें अग्रगण्य (प्रथम गिने जाने योग्य) हैं और पुरुषोंमें उत्तम हैं। इस संसारमें रामचन्द्रजीके समान बिवेकी महात्मा न तौ इस समयहै और न आगे होगा यही हमारी सम्मतिहै। सम्पूर्ण संसारमें चमत्कार करनेवाले रामचन्द्रजीके हृदय-का मनोरथ यदि हमारे द्वारासिद्ध न हो तौ निश्चय हम मुनिनाम धारियोंकी बुद्धि एक बारही निष्फल है॥

इतिश्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वैराग्यप्रकरणे नभश्चर महीचर सम्मेलनं नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गःसमाप्तः

ॐ

श्रीहरिम्वन्दे

योगबासिष्ठ

भाषा प्रारम्भः ।

अथ द्वितीय मुमुक्ष व्यवहार प्रकरणम् ।

प्रथमः सर्गः

अथ शुक निर्बाण बर्णनम् ।

दोहा ।

दूजे प्रकरणकी कथा, है मुमुक्ष व्यवहार ।
सुकनिर्वाण बखान हूं, सो सुनि अघसंहार ॥

ी बाल्मीकि मुनि बोले, जिस समय

सभामें उपस्थित सिद्ध गणोंने उच:स्वरसे यह उपरोक्त बात कही तब उससमय विश्वामित्र सन्मुख बिराजमान रामचन्द्रजीसे प्रीति पूर्वक बोले हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ राघव ! आपके लिये अब और कुछ ज्ञातब्य (जानने योग) नहीं है तुमने स्वयं अपनी सूक्ष्म बुद्धिके बलसे सब जान लियाहै इसलिये स्वभावसेही निर्मल आपके बुद्धिरूप दर्पणमें केवल थोडासा मार्जन (शुद्धि) आवश्यकहै(गुरुके वाक्यों-सेही बुद्धिकी शुद्धि होतीहै) भगवान्‌ व्यास-जीके पुत्र शुकदेवजीके समान तुह्मारी बुद्धिभी ज्ञातव्य पदार्थको जान गईहै किन्तु शान्तिके लिये उपदेशकी अपेक्षा रखतीहै ।

श्रीरामचन्द्रजी बोले हे भगवन्‌ ! भगवान्‌ वेदव्यासके पुत्र शुकदेवजी तो स्वयं तत्व पदार्थ जाननेमें समर्थ थे तौभी प्रथमही उनका

चित्त शान्तिको प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु पीछे: गुरुके उपदेशसे उनको शान्तिलाभ हुई यह क्या बात है ! विश्वामित्रजी बोले हे राम ! मैं शुकदेवजीका वृतान्त कहताहूं, तुह्मारे वृतान्तके समान यहभी पुनर्जन्मका अन्त करनेवाला है, इसको आप श्रवणकीजिये । यह जो अंजन पर्वत कीसी कान्तिवाले, सूर्यके समान तेजस्वी भगवान् तुह्मारे पिताके निकट सुवर्णके आसनपर बिराजमान्हैं यही व्यासहैं और चन्द्रमाके समान मुखवाले, सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, महा बुद्धिमान शुकदेवजी इनके पुत्र हैं वे मूर्तिमान् यज्ञके सदृश बिराजमान हैं (अर्थात् वह ऐसे मालूम होतेहैं मानो यज्ञहि स्वयं बिराजमान हैं) मनही मनमें सांसारिक अवस्थाकी चिन्ता करते करते तुमारे समान इनके मनमेंभी विवेक उत्पन्न

हुआ, और बहुतकाल बिचार करके निज-विवेक बलसे इन महा बुद्धिमान् शुक-देवजीने सत्य और सुन्दर आत्मतत्वको प्राप्तकर लिया। अपनें आपही परम बस्तुके प्राप्त होने परभी इनके मनमें शांति नहीं हुई, क्योंकि यहही प्रकृत वस्तु (आत्मतत्व) है ' यह विश्वास इनके हृदयमें नहीं हुआ। जैसे चातक मेघकी धाराको छोडकर नदी इत्यादि के जलोंकी तृष्णा नहीं करता है, वैसेही शुकदेवजीका स्थिर चित्त केवल क्षणभंगुर विषय भोगकी तृष्णा नहीं करताहै। एक समय इन विमल बुद्धिवाले शुकदेवजीने सुमेरु पर्वतपर शान्ति पूर्वक बिराजमान अपने पिता कृष्णद्वैपायन मुनिसे भक्तिपूर्वक पूंछने लगे हे भगवन्। यह संसाररूपी आडम्बर किस प्रकार उत्पन्न हुआ है। किस समय और किस

देशमें स्थिति हुई है ! कब और किस प्रकार इसका अन्त होगा ! पुत्रके इस प्रकार प्रश्न करनेपर आत्मतत्वके वेत्तामुनि वेद्व्यासने जो कुछ वक्तव्यथा उस सबको यथावत् वर्णन कर दिया इस प्रकार उपदेश करनेपर शुकदेवजीने मनमें बिचाराकि यह सब तत्व तौ मैं पहिलेहींसे जानताहूं पिताजी कोई अपूर्व बात नहीं बताई, इस लिये इनने पिताके बचनोंका अधिक आदर नहीं किया। भगवान् वेद्व्यासभी पुत्रके इस अभिप्राय को जानकर बोले कि हे पुत्र ! मैं इसके अधिक यथार्थ रूपसे नहीं जानता, पृथ्वी तलपर जनक नामक एक राजाहै, वह ज्ञातव्य जानने योग्य)बिषयको यथार्थ रूपसे जानताहै, उससे तुमको सब कुछ प्राप्त होगा । पिताके इस प्रकार कहने पर शुकदेवजी सुमेरु पर्वतसे पृथ्वीपर आकर

जनकसे पालित मिथिला नगरीमें गये । सभामें पहुँचनेपर द्वारपालोंने जनकसे कहा हे राजन्? भगवान् वेदव्यासके पुत्र शुकदेवजी द्वारपर खडे हुए हैं राजाने शुकदेवजीकी परीक्षा करनेके लिये अवज्ञा करके द्वारपालोंसे कहा अच्छा रहने दो। यह कह सातदिन तक फिर कुछ न कहा । पश्चात् शुकदेवजीको आङ्गनमें बुलालिया, वहां परभी वह तत्त्वज्ञानकी प्रबल इच्छासे सात दिन तक आंगनमें ही पडे रहे, इसके अनन्तर राजाने उनको अपने अन्तःपुरमें भेज दिया और कह दिया कि हम सात दिनतक नहीं मिलेंगे । उस स्थान पर उन्मत्त कामिनियोंसे नाना प्रकारके भोजनोंसे और भोगोंके समूहसे जनकने चन्द्रमाके समान मुखवाले शुकदेवजीको ललचाया। किन्तु वह भोग और दुख उनके

चित्तको ऐसे विचलित न कर सके जैसे मन्द पवन दृढ मूलवाले पर्वतको वह उस जगह पूर्ण चन्द्रमाके समान केवल शान्त चित्त, और प्रसन्न मन होकर चुप चाप बैठे रहते । इस प्रकार इनके स्वभावकी परीक्षाकर, राजाने इनको अपने सन्मुख बुलाये और प्रणाम करके बोले हे शुकदेवजी! आपने जगत्के सम्पूर्ण कार्य समाप्त किये हैं और आपके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होगये हैं अब आपको क्या इष्टहै ? ।

शुकदेवजी बोले हे गुरो ! यह संसार आडम्बर किस प्रकार उत्पन्न हुआहै, और कैसे इसका अन्त होगा ? इसको यथार्थ रूपसे शीघ्र मुझसे कहिये ।

विश्वामित्रजी बोले कि इस प्रश्नके करनेपर राजा जनकने वही उत्तर दिया जो

इनके पिता महात्मा वेद व्यासजीने दियाथा। शुकदेवजी बोले कि इस बातको तो मैंने पहिलेही विवेकद्वारा जान लियाथा, और जब मैंने पितासे पूंछा तब उननेभी यही कहा। और हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! अब आपनेभी वही बात कही तथा शास्त्रोंमेंभी यही दीख पडता है। यह असार संसार अज्ञानसे उत्पन्न हुआ है और अज्ञानसे नष्ट होतेही इसका अन्त हो जाता है, यह निश्चय है। सो यदि हे माहाबाहो! यह सत्य है तो मेरे लिय ऐसे उपदेश करौ जिससे मुझको संशय न रहे और तत्वसंशयमें इधर उधर भ्रमता हुआ जो मैं हूं सो आपके बचनमें बिश्वास करके शान्तिपाऊं। जनकजी बोले हे मुने। जो तुमने स्वयं समझलिया और पुनः गुरु मुखसेभी श्रवण करलिया है इससे

अतिरिक्त और कुछ ज्ञातव्य नहीं है। अखंड एकरस चैतन्य पुरुषके अतिरिक्त इसमें अन्य कुछ नहीं है, मनुष्य अपनेही संकल्पसे बद्ध है, और संकल्पके न होनेसे मुक्त हो जाता है। हे महात्मन् ! इस सम्पूर्ण दृश्यसे प्रथम तुमको भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न हुआ है, अतएव तुमने ज्ञातव्य विषयको पूर्णरीतिसे जान लिया है। हे बाल ! हे महावीर ! आपकी बुद्धि महारोगरूपी भोगोंसे बिरक्त होगई अब आप क्या श्रवण करना चाहते हो। जैसी तुह्मारी कामनाओंसे निबृति होगई है वैसी सर्व ज्ञानके समुद्र, उग्रतपमें स्थित जो आपके पिता हैं उनकीभी नहीं हुई है। मैं वेदव्याससेभी अधिकहूं कारण कि व्यास जीके पुत्र और शिष्य जो आप हैं सो मेरे शिष्य है और तुम मुझसेभी अधिकहो क्यों

कि तुह्मारी भोगोंकी इच्छा निवृत्त होगई है। जो कुछ प्राप्त करनेकी वस्तु है वह सब आपने प्राप्त करली है और आपके मनोरथ पूर्ण होगये हैं हे ब्रह्मन् ! अब तुम इस दृश्य प्रपंच (संसार) में नहीं गिरोगे भ्रान्तिको परित्याग करौ तुम मुक्त होगये । महात्मा जनकके इस प्रकार उपदेश करनेपर शुकदेवजी मौनहोकर निर्मल परम पदमें स्थित होगये।

शोक, भय, खेद और चेष्टा रहित होकर तथा निःसंशय एवं निष्काम होकर शुकदेवजी समाधिके लिये योग्य सुमेरु पर्वतकी शिखरपर चलेगये । और उस स्थानपर दश सहस्र वर्ष पर्यन्त निर्विकल्प समाधिमें स्थित होकर तेलहीन दीपकके समान आत्मामें निर्वाणको प्राप्त होगये ! जैसे

जलके बिन्दु मेघोंसे सम्बन्ध छोड पृथ्वीमें गिरकर समुद्रके जलसे मिलकर एक हो जाते हैं वैसेही शुकदेवजीभी दृश्य सम्बन्ध और अज्ञानके नाश होनेसे निर्मलहो संस्कारोंके क्षीण होनेपर सुन्दर निर्मल स्वरूप परम पवित्र परमात्मामें मिलगये।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे श्री महारामायणे मुमुक्ष व्यवहार प्रकरणे शुकनिर्वाण नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयःसर्गः प्रारंभः २.

अथ विश्वामित्रोक्ति बर्णनम्।

चौपाई।

जेहि बिधि कौशिक बचन प्रकाशो। कहि मृदु बचन शोक भ्रम नाश्यो॥ कहौं द्वितीय सर्ग सुनु पावन॥ मन भावन उर मोद बढावन॥

श्रीविश्वामित्रजी बोले कि व्यासके पुत्र शुकदेवजीके केवल मलमार्जनके लिये जो उपदेश उपयक्त था हे रामचद्रजी ! उतनेही उपदेशकी आपको आवश्यकता है । हे मुनीश्वरो । रामचन्द्रजीने सम्पूर्णज्ञेय पदार्थको जानलिया है क्योंकि इन बुद्धिमान् कुमारको भोग समूह रोगके समान अच्छे नही लगते। जो मन ज्ञेय पदार्थको जान जाता है निस्सन्देह उसका लक्षण है कि फिर उसको भोग अच्छे नहीं लगते भोगोंकी बासनासे संसार बंधन दृढ होजाता हैं और उसके शान्त होनेपर निर्मल होजाता है । हे रामचन्द्रजी ! बासनाओंके क्षय होने- कोही पण्डितोंने मोक्ष कहा है और पदार्थोंमें बासनाका दृढ होनाही "बंधन" मानागया है । हे मुने ! आत्मतत्वसम्बन्धी स्थूल

ज्ञान मनुष्यको थोडेसेही परिश्रमसे प्राप्त होजाता है परन्तु विषयोंसे वैराग्य बडी कठिनतासे होता है अनुराग और विद्वेषसे जिसकी ज्ञान शक्ति नष्ट नही हुई है वही मुख्य तत्वज्ञ है, वही पण्डित है और वही ज्ञेय पदार्थको जाननेवाला है, ऐसे महात्माके भोगोंसे महा अरुचि होती है। जो यश, प्रतिष्ठा आदिके उद्देश्यको छोडकर भोगकी तृष्णासे बिरक्त होगये हैं भूमण्डलमें उनहींको जीवन्मुख कहते हैं। जबतक ज्ञेय पदार्थके ज्ञान नहीं होता तबतक विषयोंमें अरुचि होना वैसाही असम्भव हैं जैसा मरुभूमिमें लताका ऊगना। अतएव रघुकुलमें श्रेष्ठ श्री रामजन्द्रजीको तत्वज्ञ समझो क्योंकि रमणीय भोग सामग्री इनको अपनी ओर आकर्षण करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे मुनि-

श्वरो । श्रीरामचन्द्रजी जो अन्तःकरणमें जानते हैं वही सद्वस्तु है इनको वसिष्ठ जीके मुखसे यह कथा सुनकर शान्ति प्राप्त होगी । जैसे शरदृऋतुकी शोभा केवल मेघोंसे रहित निर्मल नील आकाशकी अपेक्षा रखती है वैसेही श्रीरामचन्द्रजीकी बुद्धि केवल शान्तिकी अपेक्षा करती है । इससमय महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके चित्तकी शान्तिके लिये श्रीमान् भगवान बशिष्ठजीको उपदेश करना उचित है, यह समग्र रघुकुल के प्रभु हैं और सदा कुलगुरू हैं, यह सर्वज्ञ सबको साक्षात् देखनेवाले और निर्मलभावसे तीनों कालके देखनेवाले हैं (इससे इनको उपदेश करना योग्य हैं) वे बसिष्ठ भगवन्! हम दोनोके वैरकी शान्तिके लिये और महामति मुनियोंकेमंगलके

लिये सरलनामक वृक्षोंसे पूर्ण निषध नामक पर्वतकी शिखरपर ब्रह्माजीने जो उपदेशकिया था क्या वह आपको स्मरण है ?। हे ब्रह्मन् ! उसी युक्ति पूर्ण ज्ञानसे यह संसारी बासना ऐसे नष्ट होजायगी जैसे सूर्यके उदय होनेपर रात्रि नष्ट होजातीहै, आप शिष्य रामचन्द्रजी को वही उपदेश कीजिये जिससे उनके चित्त को शांति प्राप्त हो। श्रीरामचंद्रजी पाप रहित हैं और उपदेशके पात्र हैं इनको उपदेश करनेमें अधिक परिश्रम न होगा क्योंकि निर्मल दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब बिना प्रयत्नही दीख पडता है।

हे मुनीश्वर ! वही उत्तम ज्ञान है वही उत्तम शास्त्रार्थ है और वही निन्दारहित उत्तम पाण्डित्य है जो वैराग्य सम्पन्न उत्तम शिष्य को उपदेश किया जाय। वैराग्य रहित

कुशिष्यके लिये जो कुछ ज्ञान उपदेश किया जाता है वह ऐसे अपवित्र होताहै जैसे कुत्ताके चर्मके पात्रमें गौका दूध । आपके समान बैराग्य संपन्न, भय और क्रोधसे शून्य, अभिमान रहित निर्मल प्राकृति महात्मागण ! जिस स्थानपर उपदेश करते हैं वहां निश्चय बुद्धि बिश्राम पाती है। गाधिके पुत्र बिश्वामित्रजी जब यह बात कहचुके तब बेदव्यास नारद आदि सब मुनियोंने उनकी बहुत प्रशंसा की। इसके पश्चात् राजा दशरथके निकट आसनपर बिराजमान ब्रह्माके पुत्र ब्रह्माजीके समान तेजवाले वशिष्ठजी बोले हे मुने ! जो आप आज्ञा देते हैं उसे मैं निर्विघ्नता पूर्वक पालन करूँगा क्योंकि कार्य करनेमें समर्थ होनेपर कौन सज्जनोंके बचनको उल्लंघन करसक्ता है ! मैं ज्ञानोपदेशद्वारा रामचंद्र आदि

राजपुत्रोंके अंधकारको ऐसे दूरकर दूँगा जैसे दीपक रात्रिके अंधकारको दूर करदेता है, संसार भ्रमकी शांतिके लिये निषध पर्वतपर जो उपदेश ब्रह्माजीने पहिले किया था वह मुझको ज्योंका त्यों स्मरण है।

बाल्मीकि मुनि बोले कि वह महात्मा बसिष्ठ इसप्रकार प्रतिज्ञा करके कमरकस शोभायमान वक्ता दिखाई देने लगे तदनन्तर अज्ञानको दूरकरनेके लिये तत्वबोधके शास्त्रके बर्णन करनेको प्रवृत्त हुए।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे विश्वामित्रोक्ति वर्णनं नाम द्वितीयःसर्गःसमाप्तः॥२॥

अथ तृतीय सर्गः प्रारंभः ३.

अथ असंख्यसृष्टिप्रतिपादन बर्णन् ।

सोरठ–

श्रीबासिष्ठ समुझाय, कह्यो परम पावन बचन ।
जिमिपूछयोरघुराय,अखिलबिश्वउपदेशहित ॥

श्रीबासिष्ठजी बोले कि सृष्टि आदिमें संसार की शांतिके लिये जो ज्ञानोपदेश किया था वही में अब कहताहूँ । श्रीरामचन्द्रजी बोले हे भगवन्! आप मोक्ष संहिता तो बिस्तार सहित अवश्य कहोगे परन्तु पहिले मेरेएक सन्देह को दूर करदीजिये । शुकदेवजीके पिता महामति गुरु बेदव्यासजी सर्वज्ञ होनेपरभी बिदेह मुक्त क्यों न हुए और उनके पुत्र शुकदेवजी कैसे होगये ।

बसिष्ठजी कहनेलगे हे रामचन्द्रजी ! परमात्मारूपी सूर्यके प्रकाशमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डरूपी त्रसरेणु जो उत्पन्न और लीन होजातेहैं उनकी गणना कदापि नहीं होसक्ती तथा बर्त्तमान समय में त्रिभुवनोंकी जो अनन्तकोटि हैं उनको कोई नहीं गिनसक्ता है। परमात्मारूपी सागर में जो असंख्य त्रिभुवन रूपी तरंग उत्पन्न होतेहैं उनके गिननेकी तो बातही क्या ?

श्रीरामचन्द्रजी बोले कि भूत भविष्यत सृष्टिका बिचारही युक्त है बर्तमानकी क्या आवश्यकता है बसिष्ठजी कहने लगे, पशु पक्षी मनुष्य और देवता आदिके मध्यमें जो प्राणी जहां और जिसप्रकार मृत्युको प्राप्त होजाता है, उसकी जीवात्मा उसीप्रकार उसी स्थानमें वक्ष्यमाण तीनों प्रकारके जगत्को देखता है

जैसी जिसकी बासना होती है वैसाही शरीर उसको मिलताहै वास्तवमें वह चिदाकाशस्वरूप आत्मा एक रस और जन्ममरणादि दुःखोंसे रहित है इसीप्रकार करोडों प्राणी मरगये, मरतेहैं और मरेंगे, इस सम्पूर्ण जगत् की मरणकाल में जैसी २ बासना थी उसीके अनुसार देवता, मनुष्य और पशु पक्षी आदि भिन्न भिन्न योनियोंमें प्रगट होरहा है।

जैसे जो पुरुष चक्कर खाता है उसको सम्पूर्ण पदार्थ फिरते हुए मालूम होते हैं, जैसे नौकामें बैठे हुए मनुष्यको नदी तटके बृक्ष चलते दृष्टि आते हैं, जैसे नेत्रके दोषसे आकाशमें मोतियोंकी माला दृष्टि आती है, जैसे स्वप्नमें सृष्टि भासती वैसेही जीवको भ्रमकरके लोक परलोक भासता है। इस जगत्की गति स्वप्नमें देखे हुए नगर स्मरणसे कल्पना किये

आकाशके फूलके समान है, इसको आत्मा जन्म मरण कालमें अपने बीचही अनुभव करता है।

इस स्थूल देहके भीतर एक अन्यदेहहै और उस कानाम सूक्ष्म देहहै और इससूक्ष्म देहके भीतर एकऔर अन्य देहहै जिसकानाम कारणदेहहै। केलाके छिलकाके समान स्थित यह तीनों देह संसार रूपसे बिराजमान हैं। यद्यपि न पृथ्वी आदि पंचमहाभूत हैं न जगतका क्रम है तथापि मृत और उत्पन्न प्राणियोंको जगत् काभ्रम है। अबिबेकी पुरुषोंके लिये यह अनन्त अविद्याही। बिबिध प्रकारकी गति धारण करके ऐसे शोभित होरही है जैसे चंचल तरंगोंसे नदी शोभित होतीहै। हे रामचन्द्रजी! परमात्मा रूपी बिशाल सागरमें बहुतसी सृष्टिरूपी तरङ्ग हैं येही तथा और अन्य तरङ्ग पुनःपुनःउत्पन्न

होते और नष्ट होतेहैं। जहांतक हमारी बिज्ञान दृष्टि पहुँच सकती है मैं उससे देखताहूं कि संसाररूपी तरङ्गोंके मध्यमें यह वेदव्यास-जीका देह बत्तीसवां देह हैं अर्थात् इनसे पहिले इकत्तीस व्यास होचुके हैं। उनमेंसे बारह व्यास कुल, ओंकार, और चेष्टाओंमें तो समान थे किन्तु ज्ञानमें कम हुए। फिर दश व्यास सब प्रकारसे समान हुए और बाकी बचे हुए दश व्यास कुल, आकारादिमें सर्वथा बिलक्षण हुए। तथा आगे भी व्यास, बाल्मीकि, भृगु, अङ्गिरा, और पुलस्त्य आदि ये सब उत्पन्न होंगे इनमेंसे कोई अपने पहिले आकारका होगा और कोई अन्य आकारके होंगे। कोई कोई मनुष्य, देवता, औरदेवर्षिगण एक कालमेंही नष्ट होजाते हैं और कभी २ पृथक् २ उत्पन्न और नष्ट होते

हैं। ब्राह्मकल्पका अवयव भूत त्रेतायुग प्रति ब्राह्मकल्पमेंथा, अब इस कल्पमें है और आगामी कल्पमें भी होगा मैं, तुम, तथा अन्य सब लोग पूर्व प्रकारके और उससे विलक्षण हुए और आगे होंगे । अद्भुत कर्मा दीर्घदर्शी इन बर्तमान महर्षि व्यासके जीवका दशम अवतारहै । हम अनेक बार व्यास, बाल्मीकि प्रभृति सब भिन्न २ कालमें भी उत्पन्न हुए हैं। हम सब कभी समान आकार और ज्ञानवान् हुए और कभी असमान आकर और ज्ञानयुक्त हुए, तथा कभी कभी हम अनेक प्रकारके आकार बाले और समान ज्ञानवान् हुए। यही व्यासजी पुनः आठबेर जन्म धारण करेंगे । और पुनः महाभारत इतिहासको रचेंगे। वेदोंका बिभाग करके और अपने कुलकी प्रख्याति बिस्तार करके

और ब्रह्मभावको प्राप्त होकर विदेह मुक्त होंगे। ये व्यासजी, शोक और भयसे रहित शान्त और बन्धन रहित, कल्पना वर्जित जीवन्मुक्त और मनके जीतनेवाले कहे गये हैं। धन, बन्धु, अवस्था, कर्म, विद्या, बिज्ञान और चेष्टा ये कभी तो जीवोंके समान होते हैं और कभी भिन्न २ होतेहैं कभी कभी सौ सौ सृष्टियोंके मध्यमेंभी उत्पन्न नहीं होते हैं और कभी ये सब प्रत्येक सृष्टिमें उत्पन्न होते हैं यह सब ईश्वरकी अनन्त मायाहै; यह जीवोंकी परस्परा सदा पूर्बकी अपेक्षा कुछ न कुछ उलट पलट होती रहती है। कभी उस क्रमसे और कभी अन्य क्रमसे कालरूपी समुद्रके तरंग सृष्टिके आकारमें बेर बेर उत्पन्न और नष्ट हुआ करते हैं किन्तु जो तत्वज्ञानी अज्ञान जनित बिकल्पसे शून्य हैं उसके हृदय

में यह सब तरंग क्षोभ नहीं करते । वह परम शान्तिरूपी अमृतसे तृप्त रहता है, इससे यह सिद्ध हुआ कि तत्वज्ञानका फल जीवन्मुक्ति है और बेद व्यासको यह मुक्ति प्राप्त होगई है॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षव्यवहार प्रकरणे असंख्यसृष्टि प्रतिपादनंनाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

अथ चतुर्थःसर्गःप्रारंभः ४,

अथ पुरुषार्थोपक्रम् वर्णनम्।

चौपाई।

पुरुषार्थोपक्रम मुनि नायक ॥ भाष्यो यथा सुन्यो रघुनायक ॥ गाथा रुचिर परम सुख दायक॥ गुणदायक वर्ण्यो मन भायक ॥

श्रीवसिष्ठमुनि कहने लगे नित्य मुक्त

स्वभाव आत्माका अज्ञानरूपी आवरणही बन्धन है, तथा जब ज्ञानसे अज्ञानका नाश हो जाय तभी मोक्ष है,जब अज्ञान नष्ट होजाता है तब यह असार संसार तसबीरमें खिंचे हुए व्याघ्रके समान कौतुकके लियेही होता है कुछ अनर्थ नहीं करता, इस प्रकार जीवन्मुक्ति और बिदेह मुक्तिका अभेदत्व दिखलाकर आत्मतत्वका बिस्तार सहित बर्णन करनेकी इच्छासे क्षीण मूलके दृढ करनेके हेतुसे प्रथम पुरुषार्थका समर्थन करते हैं। हे रामचन्द्रजी! जैसे समुद्रके ठहरे हुए जलमें और तरंग उठते हुए जलमें कुछ भेद नहीं है वैसेही जीवन्मुक्ति और बिदेह मुक्तिमेंभी कुछ भेद नहीं है। संदेह हो अथवा बिदेह हो मुक्ति बिषयके आधीन नहीं है बिषयको बिषय रहकर जो स्वाद नहीं लेते हैं उनको बिषयरसको बाध किस

प्रकार होसक्ता है। मुनिश्रेष्ठ! बेद व्यासजी जीवन्मुक्त हैं, केवल हम अपनी कल्पनासे इनको संदेह सन्मुख देखते हैं किन्तु इनके भीतर आशय हमको ज्ञात नहीं होता। सदेह मुक्ति और अदेह मुक्ति दोनो ही ज्ञानस्वरूपहैं और दोनोंहीमें कुछ भेद नहीं है देखो कि समुद्रका जल स्थिरदशामेंभी वही है अर्थात् उसका जलत्व दूर नहीं होता । जीव-न्मुक्ति और बिदेह मुक्तिमें कभी भेद नहींहै जैसे वायु जो चलती है वह भी वायु है और जो निष्पन्दरूप है अर्थात् नहीं चलती है वह भी वायु है । हमारी और वेदव्यासजीकी परमार्थ दृष्टि सदेह मुक्ति और बिदेह मुक्तिपर नहीं है किन्तु द्वैतहीन जीव ब्रह्मकी एकताही हमारी परमार्थ दृष्टिका बिषय है। अब मैं उत्तम तत्वज्ञानका उपदेश करता हूँ सो श्रवण

करो, यह उपदेश अज्ञानरूपी अन्धकार का नाशक है और श्रवणेन्द्रिय (कानों) का भूषण है। हे रघुनन्दन ! इस संसारमें यथायोग्य प्रयत्न करनेसेही सकल बिषय सदैव प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं।

उसी प्रकार पुरुषार्थ होनेपरभी ज्ञानप्राप्ति द्वारा जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं। प्रयत्न करनेसे प्रत्येक कार्य सिद्ध हो जाते हैं जो यह कहते हैं कि जो दैव करेगा सो होवेगा यह मूर्खता है। साधुओंके बताये हुए मार्गके अनुसार जो मन, बाणी और शरीरकी चेष्टा हैं वही असली पुरुषार्थ है, और वही सफल है, इससे भिन्न केवल उन्मत्तोंकी चेष्टा है। जो मनुष्य जिस बस्तु-को चाहता है यदि उसके लिये शास्त्रोक्त क्रमसे चेष्टा करे तो उसको अवश्य पाता है

परन्तु बीचमेंही प्रयत्नको न छोड दे । पुरुषार्थ नामक प्रयत्नसेही कोईजीव विशेष (मनुष्य) तीनों लोकके ऐश्वर्यसे उत्तम इन्द्रपदवीको प्राप्त हुआ है । पुरुषकार नामकही प्रयत्नसे कोई जीव बिशेष कमलासनपर बिराजकर ब्रह्माकी पदवीको प्राप्त हुआ है । कोईपुरुष अपने श्रेष्ठ पुरुषार्थके बलसेही गरुडध्वज पुरुषोत्तम (विष्णु) पदको प्राप्त हुआ है । इस संसारमें कोई मनुष्य पुरुषार्थरूपी प्रयत्नसेही पार्वतीश्वर महादेवजीके पदको प्राप्त हुआ है, वही पुरुषार्थ दो प्रकारका है प्राक्तन (पूर्वजन्ममें किया हुआ) और अद्यतन (इस जन्ममें किया हुआ) इसमें पूर्वजन्मकृत पुरुषार्थ इस जन्मकृत पुरुषार्थसे पराजित होजाता है । सहायता और उत्साहसे पूर्ण दृढ

विश्वासवाला यत्नवान पुरुष सुमेरुपर्वतकोभी जीर्ण कर देता है, पूर्वजन्मकृत पुरुषार्थकी क्या बात। जिसपुरुषका पुरुषार्थ शास्त्रा-नुकूल कर्म करनेमें लगा हुआ है वही उत्तम फलकी सिद्धिका मूल है किन्तु जो पुरुषार्थ शास्त्र बिरुद्ध कार्योंमें प्रयुक्त है वह अनि-ष्टका हेतु है। अपने कुमार्गगामी होनेके कारण पुरुष किसी रोग बंधन आदि दशामें हाथ आदिके पराधीन होनेसे अंगुलीके अग्रभागसे निचोडकर मुखमें डाले हुए पानी कोभी बडी आदरकी दृष्टिसे देखता है वही पुरुष सुमार्गगामी होनेपर समुद्र पर्वत, नगर और द्वीपों सहित पृथ्वीमण्डलको पालनीयपुत्र आदिकेलिये बांटनेमें कुछभीसंकोचनहींकरता

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे पुरुषार्थोपक्रम वर्णनं नाम चतुर्थःसर्गः समाप्तः॥४॥

अथ पंचमः सर्गः प्रारंभः ५

अथ पुरुषार्थ बर्णनम् ।

चौपाई—

बर्ण्यो पंचम सर्ग सुहावन ॥ पावन चरित मोद उपजावन ॥ पुरुषारथ बर्ण्यो चितलाई ॥ श्रीवसिष्ठमुनि जन सुखदाई ॥

श्रीवसिष्ठमुनि बोले कि शास्त्रानुकूल कार्य करनेवाले मनुष्योंकी प्रवृत्तिसे सम्पूर्ण कार्य ऐसे सिद्ध होते हैं जैसे प्रकाशसे नील, पीत, श्वेत आदि वर्ण भासते हैं। जो पुरुष मन सेही कार्यको सिद्ध करना चाहता है और शास्त्रानुकूल कर्म द्वारा नहीं करता वह केवल उन्मत्तोंकीसी चेष्टा करता है जिनसे मोह उत्पन्न होता है और अर्थ सिद्धि नहीं होता।

जो जैसा प्रयत्न करता है उसको वैसाही फल मिलता है, अपने कर्मसे पृथक् दैव प्रारब्ध) कुछ नहीं है अर्थात् जो कुछ है वह कर्मही है। कर्म दो प्रकारके होते हैं एक शास्त्र बिरुद्ध और दूसरे शास्त्रानुकूल, इनमेंसे शास्त्र बिरुद्ध कर्म अनिष्टका मूल है और शास्त्रानुकूल कर्म परम इष्टका साधन करनेवाला है। कभी समान बल और कभी न्यूनाधिक बल सम्पन्न प्राक्तन और अद्यतन कर्म दो मेढोंके समान लडते हैं उनमें जिसका बल कम होता है वही हार जाताहै। इसलिये पुरुषको उचित है कि शास्त्रानुकूल पुरुषार्थकी सहायतासे ऐसा यत्न करै जिससे इस जन्मके कर्म और पूर्व जन्मके कर्मोंको शीघ्र जीतले। समान बलवाले और न्यूनाधिक बलवाले अपने और दूसरेके कर्म

दो मेढोंके समान युद्ध करते हैं । यहां यह दृष्टान्तहै कि मनुष्य तो तपस्या करते हैं और देवता उसमें विघ्न करते हैं उनमेंसे जिसका बल अधिक होता है वही बिजय पाता है ।

जहां शास्त्रानुकूल कार्य करने परभी अनिष्ट प्राप्तहो वहां पर समझना चाहिये कि अनिष्ट कारक हमारा अधिक बलवान् है । कल्याणकारी इस जन्मके कर्मोंका आश्रय लेकर दृढता पूर्वक बिघ्न करनेके लिये उद्युक्त अशुभ पूर्व जन्मके बुरेकर्मोंको जीत लेना चाहिये । " पूर्व जन्मका कर्म हमको इस कार्यमें नियुक्त करताहै " इसको प्रबल प्रयत्नसे त्याग देना चाहिये क्योंकि वह प्रत्यक्ष कर्मसे अधिक नहीं है, । उस समय तक उत्तम कर्मके लिये प्रयत्न करना उचित है

जब तक पूर्व जन्मके अशुभ कर्म स्वयं न परास्त होजाय । इस जन्मके शुभ कर्मोंसे पूर्व जन्मके अशुभ कर्म निश्चय दूर होजातेहैं इसमें यह दृष्टान्त है कि पूर्व दिनका अजीर्ण आजके लंघनसे दूर होजाता है । असत्य दैवको नीचे करके यत्न पूर्वक अपनी उद्योग शील बुद्धिके बलसे संसारसागरके पार होनेके लिये शम, दम आदि सम्पत्तियोंके अर्थ पुरुषार्थ करना चाहिये।गर्दभके समान मनुष्यको उद्योग रहित रहना कदापि उचित नहींहै, किन्तु इस लोक और परलोकी सिद्धिके लिये शास्त्रानुसार उद्योग करना चाहिये । पुरुषार्थ रूपी यत्नका आश्रय लेकर संसार रूपी गर्तसे स्वयं बल पूर्वक ऐसे निकलना चाहिये जैसे सिंह शत्रुके पिंजरेसे निकलता है। प्रतिदिन इस बातका ध्यान रखना

उचित हैं कि यह देह नश्वर (नाशको प्राप्त होनेवाला) है इसलिये पशुओंके समान जो मूढता है उसको त्याग देना चाहिये और सत् पुरुषोंके कर्मोंका आश्रय लेना उचित है। जैसे कीडा घावके रसका स्वाद लेनेके लिये बैठताहै किन्तु उसीमें नष्ट हो जाताहै. वैसेही गृहमें स्त्री अन्न पानादि चिकने और कोमल पदार्थोंके आस्वादनमें तुमको अपनी अवस्था नष्ट करना उचित नहीं है। नित्यही शुभकर्मों द्वारा शुभफल और अशुभ कर्मद्वारा अशुभ फल प्राप्त होता है इससे व्यतिरिक्त दैव (प्रारब्ध) कुछ नहीं है।प्रत्यक्ष प्रमाणको त्यागकर जो अनुमानका ग्रहण करताहै वह उस पुरुषके समानहैं जो अपनी भुजाओंकोही सर्प समझकर उनसे भयभीत होकर भागताहै। 'दैवनेही हमको

इस कार्यमें नियुक्त कियाहै ' ऐसा सोचने वाले मूढ बुद्धि तथा बिश्वामित्र प्रभृति श्रेष्ठ ऋषियों के उपदेशोंसे रहित आलसी मनुष्योंका सुख देखकर लक्ष्मी स्वयं उनसे दूर होजाती है अर्थात् पुरुषार्थ हीन मनुष्य कभी धनी नहीं होता । अतएव मुमुक्षु मनुष्य प्रथम नित्य और अनित्य बस्तुओंके बिवेक आदि साधन चतुष्टयका आश्रय करें और अध्यात्म शास्त्रका बिचार करें । जो मूढ मनुष्य अपने मनमें तो किसी बातकी अभिलाषा करते हैं परन्तु उसके साधनके लिये शास्त्रानुसार चेष्टा नहीं करते है उनके भोगादिकी इच्छाको धिक्कार है । आत्मतत्वकी प्राप्तिके लिये अनन्त पुरुषार्थ वा यत्नकी आवश्यकता नहीं है किन्तु आत्मसाक्षात्कार पर्य्यन्तही प्रयत्नकी अपेक्षा रहती

हैं। महान् यत्न करने पर भी पत्थरसे रत्न प्राप्त नहीं होसक्ता परन्तु शास्त्रोक्त कर्ममें प्रयत्न करना कभी निष्फल नहीं होता । जैसे घडाका परिमाण होताहै और जैसे पट (वस्त्र) का परिमाण होता है वैसेही पुरुषार्थका भी निर्दिष्ट परिमाण होता है, जो पुरुषार्थकि सद् शास्त्र, सत्संग, और सदाचार सहित होता है, तो फल देता है, नहीं तो उपयुक्त सिद्धि नहीं देता यही पुरुषार्थका स्वभाव हैं। तथा यही उसका स्वरूप है जो मनुष्य इस प्रकार पौरुषका व्यवहार करताहै उसके यत्न कभी निष्फल नहीं होते। हरिश्चन्द्र प्रभृति श्रेष्ठ पुरुषगण दरिद्रता और दुःखके शोकसे होनेपर भी अपने पुरुषार्थके प्रभावसे देवराज इन्द्रके तुल्य होगये हैं । यदि कोई मनुष्य

कहैं कि अधिक। परिश्रमकी अपेक्षा नहीं है तो अन्तमें करलेंगे अभी क्या आवश्यकता है, यह बात ठीक नहीं है क्योंकि बाल्याव-स्थासे ही अत्यन्त अभ्यास किये हुए शास्त्र और सत्संगती आदि उत्तम गुणों द्वाराही पौरुषसे स्वार्थ सिद्धि होती है। यह प्रत्यक्ष देखा है, अनुभव कर लिया है, सुना है और किया है कि सब दैवके आधीन हैं, जो कुबुद्धि ऐसा मानते हैं उनको नष्टही समझो! यदि इस संसारमें आलस्यहीन होता तो कौन बडा धनी और अच्छा विद्वान् न होता, आलस्यके दोषसेही यह सागर पृथ्वी मूर्ख और दरिद्री मनुष्योंसे परिपूर्ण है चपल बालकोंसे कल्पित क्रीडाओंसे चंच बाल्यावस्थाके बीत जानेपर मनुष्य प पदार्थकी परीक्षामें पारंगत होकर गुरुत्म

मेंही यत्नपूर्बक सत्संग करके अपने गुणदोषों-का बिचार करै ।

देवदूतने अरिष्टनेमि राजासे कहा कि जब वाल्मीकिजी वसिष्ठजीकी इतनी कथा भरद्वाजसे कह चुके तब संध्याभी होगई और सूर्यास्त होगया, तथा सम्पूर्ण सभा मुनीश्वरको नमस्कार करके संध्या आदि सायंकाल कर्म करनेके लिये बिदा हुई और दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्य उदय होनेपर पुनः सभामें आकर प्राप्त हुये । यहां प्रथम दिन की कथा समाप्त हुई अब आगामी द्वितीय दिनकी कथा कहते हैं ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षु व्यवहार प्रकरणे पुरुषार्थ बर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥५॥
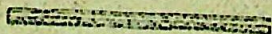
अथ षष्ठः सर्गः प्रारंभः ६

अथ परमपुरुषार्थ वर्णनम् ।

चौपाई-

कहहूँ परम पुरुषारथ नीको । जो सुनि मिटै शोक भ्रम जीको ॥ षष्ठसर्गकी है शुभगाथा। जिमि रघुपतिसों कह मुनि नाथा ॥

श्रीबसिष्ठमुनि बोले कि पूर्वजन्मके पुरु षार्थ अर्थात् पूर्व जन्मके कर्मके अतिरिक्त दैव कोई पदार्थ नहीं है अतएव दैवको दूरसेही परित्यागकर साधुसंगम और सत्शास्त्रोंद्वारा जीवको बलपूर्वक अपना उद्धार करना चाहिये। जैसा यत्न किया जायगा वैसाही उसका फलभी मिलैगा इसीका नाम पौरुष तथा दैवभी इसीको कहते हैं। जैसे दुखके समय में प्राणी दुखित होकर कहता है "हा

कष्ट" इसीप्रकार "हा दैवभी" "हा कष्टका" पर्य्याय अर्थात् समान् अर्थवालाहै जिसकोदैव (प्रारब्ध) कहतेहैं वह पूर्वजन्मके कर्मके सिवाय और कुछ नहीं है, जैसे पराक्रमी मनुष्य बालक को अनायासही जीत लेता है वैसेही इस जन्मके कर्मोंद्वारा इस दैवको अनायास जय करसक्ते हैं। जिसप्रकार पूर्वदिनका किया हुआ दुष्टकर्म दूसरे दिनके शुभकर्मसे शुभ दशा को प्राप्त होता है वैसेही पूर्वजन्मके कर्मभी इस जन्मके उत्तम कर्मोंसे उत्तम दशाको प्राप्त होजाते हैं। उन पूर्वजन्मके कर्मोंके जीतनेके लिये जो विषयोंमें आसक्त मनुष्य प्रयत्न नहीं करते हैं और दैवपर भरोसा रखते हैं वे दीन हीन पामर और मूढ हैं। यदि इस जन्मका किया हुआ कर्म दैवात् विफल होजाय तो समझना चाहिये कि पूर्वजन्मके कर्म अधिक

बलवान् है। इसको देखकर उनके जीतने के लिये औरभी अधिक पुरुषार्थ करै। जो प्रसिद्ध जगत् पदार्थभी क्षयको प्राप्त होजाय तो समझना चाहिये कि क्षय करनेवालेका प्रयत्न अधिक बलवान् है। पूर्वजन्म और इस जन्मके पुरुषार्थ दो मेढोंके समान परस्पर युद्ध करते हैं इनमेंसे जो अधिक बलवान् होताहै वही दूसरेको शीघ्रही परास्त करदेता है। राजवंशके अभाव होनेपर अमात्यगण यदि मंगलालंकार गजादिद्वारा भिक्षु को राजा बना दे तो वहांपर अमात्य (मंत्री) प्रजा और हस्तीका प्रयत्न बली समझना चाहिये।

जिस प्रकार पुरुषार्थ आश्रय लेकर अन्नका दांतसे चूर्ण कर दिया जाता है वैसेही शूरवीर पुरुषभी पुरुषार्थके बलसे

दूसरे मनुष्यको चूर्ण करदेता है अर्थात् परास्त करदेता है । इसीलिये अल्प बल वाले मनुष्य प्रयत्नशाली बलवान् मनुष्यके सामने अन्नके समान हैं, तथा मृत्तिकाके पिंड के समान इच्छानुकूल कामोंमें उनको लगाया जाता है । समर्थ पुरुषको दृश्य हो अथव अदृश्य हो सब पुरुषार्थही हैं किन्तु निर्बुद्धि मूढ मनुष्य उसीको दैव (प्रारब्ध) कहते हैं। समर्थ जीवधारियोंमें जो अधिक बली हैं वेही उनके राजा होते हैं दैव कोई पदार्थ नहीं है यहबात बिल्कुल स्पष्ट है । शास्त्र, मंत्री, हस्ती और नगर निवासियोंकी जो एक-मत स्वभाव बुद्धि है वही भिक्षुकको राजा बनाती है और वही प्रजाकी स्थितिको धारण करती । यदि भिक्षुक कहीं राजा बनादिया जाय तौ वहां समझना चाहिये कि उसके पूर्व-

जन्मके कर्मही इसका कारण हैं। इस जन्मका पुरुषार्थ पूर्वजन्मके पुरुषार्थको नष्ट करदेताहै और पूर्वजन्मका पौरुष इस जन्मके पौरुषको नष्टकरदेताहै, ऐसे स्थानपर उद्वेगहीन(दृढचित्त) मनुष्यकी ही जीत होती है ! प्राक्तन और ऐहिक पुरुषार्थ में से ऐहिक पुरुषार्थ पूर्वजन्मके पुरुषार्थको ऐसे जीत लेता है जैसे युवा पुरुष बालकको। जहांपर वर्षभरमें उत्पन्न हुई खेतीको मेघ एक दिनमें नष्ट करदेता है वहां मेघका पुरुषार्थ अधिक समझना चाहिये इसका आशय यह है कि जो अधिक बलवान् होता है वही बिजय पाता है। धीरे २ संचय किये हुए धनके नष्ट होजानेपर खेद करना उचित नहीं है, जिस काममें हम असमर्थ हैं उसके लिये शोक करना व्यर्थ है। जिसको हम नहीं करसक्ते हैं उसके लिये यदि

हम दुख करैं तौ जब तक हम मृत्युको न जीतलें हमको रुदन करना उचित है । ये सम्पूर्ण जगत् के पदार्थ, देश, काल, क्रिया; और द्रव्यकी शक्तिके अनुसार स्फुरित हो रहे हैं, यहां जो अधिकबली होता है वही जीतताहै, । इसलिये पुरुषार्थ के बलसे सत् शास्त्र और सत्संग द्वारा बुद्धिको निर्मल करके संसार सागरसे पार होना उचित है । इस पुरुषरूपी बनमें पूर्वजन्म और इस जन्मके पुरुषार्थरूपी फलवाले दो बृक्ष जगरहे हैं उनमे से जो अधिक होता है उसीकी उन्नति होती है। जो मनुष्य शुभ चेष्टाओं द्वारा पूर्वजन्मके तुच्छ कर्मको नष्ट नहीं करता है, वह मूर्ख अपनेही सुख दुखोंमें असमर्थ होता है तथा ईश्वरकी प्रेरणासे स्वर्ग अथवा नरकमें जाया करता है, और वह सदा परा-

धीन पशुतुल्य होता है इसमें सन्देह नहीं है। जो मनुष्य प्रयत्न करनेमें सदा कुशल है, और सदाचारी है वह जगत्‌के मोहसे ऐसे निकल जाता है जैसे सिंह पिंजरेसे। "कोई मुझको किसीकार्य की प्रेरणा करताहै" ऐसी बुरी कल्पना कर जो मनुष्य पुरुषार्थको त्याग देताहै उसको दूरसेही त्यागकरना योग्य है। सहस्रों व्यवहार हमारे सन्मुख होते रहते है उनमेंराग द्वेषका परित्यागकर शास्त्रनुसार प्रयत्न करना उचित है। जो मनुष्य शास्त्रके

(१ जो एक देश, काल, क्रिया, आदिमें यत्न निष्फल होजाय तौ उसको दूसरेदेश काल आदिमें क. रना चाहिये, अभिप्राय यह है कि जब तक कार्यकी सिद्धिनहो तब तक प्रयत्न करताही रहै. देखो विश्वामित्र जीको पूर्व, पश्चिम, और दक्षिण इन तीन दिशाओंमे तौ विघ्नही होतेरहे किन्तु चौथी उत्तर दिशामें सिद्धि प्राप्त होगई।

अनुसार अपनी अखंडित मर्यादाको नहीं त्यागता है उसको सम्पूर्ण अभीष्ट ऐसे मिलजातेहैं जैसे समुद्रसे सब प्रकारके रत्न । सुख और दुखकी निवृत्तिके लिये अवश्य कर्त्तव्य कर्ममें जो पण्डित लोग यत्न करते हैं उसीको पुरुषार्थ कहते हैं वही शास्त्रोक्त यत्न परम पुरुषार्थके लाभका हेतु है । बुद्धिमान् मनुष्य सेवा शुश्रूषा, साधुसमागम और उत्तम शास्त्रोंके अवलोकन द्वारा बुद्धिको निर्मल करके स्वार्थ करै। अज्ञानसे उत्पन्न विषमता दोष जिससे होजाय उसीको पण्डितगण "परमार्थ" कहते हैं, वह परमार्थ जिन शास्त्रवेत्ता साधुजनोंसे प्राप्त हो उनकी सदैव सेवा करना उचित है। जो पुरुषार्थ देवलोकसे यहां आया है और दोनोंलोकोंके लिये हितकारी है उसी पूर्वजन्मकृत पुरुषार्थको "दैव"

कहते हैं, मूर्ख मनुष्योंने पुरुषार्थसे अतिरिक्त जो दैवको माना है और उसीके भरोसे पौरुषको छोड बैठे हैं उनपर हम शोक करतेहैं । सदा अपने पुरुषार्थसेही दोनों लोकोका हित साधन होता है, जैसे पूर्वजन्मके दुष्कर्म इसजन्मकी सत्क्रियासे शोभित होते हैं वैसेही गतदिनके दुष्कर्मआजके सत्कर्मोंसे शोभाको प्राप्त होते हैं, इसलिये जो मनुष्य प्रयत्न करता है उसको पुरुषार्थ हाथमें- स्थित आमलकके समान फल प्राप्त होता है, मूढ मनुष्य प्रत्यक्षको त्यागकर वृथा दैवरूपी मोहमें डूबता है । हे शुभाशय रामचन्द्रजी सम्पूर्ण कार्य और कारणोंसे शून्य अपने निश्चलचित्तसे कल्पित मिथ्या दैवको त्यागकर अपने पुरुषार्थका आश्रय लीजिये । वेदादि सत् शास्त्रोंद्वारा निर्णय किया हुआ जो सज्ज-

नोंके आचारसे ज्ञानरूप फल मिलता है उस फल प्राप्तिकी हृदयमें तीव्र अभिलाषा उत्पन्न होनेसे जब चित्त उधरकी ओर जाता है तब इसी चेष्ठाका नाम पुरुषार्थ होता है ।

बुद्धिबलसे पुरुषार्थका अवलम्बन करके निरंतर प्रयत्न करना उचित है तथा उत्तम शास्त्र, साधूगण और पण्डित गणोंकी सेवासे इस प्रयत्नको सफल करना उचित है । दैव और पुरुषार्थ क्या है इस बिचारमें कुशल, और शम दम आदि सम्पत्ति सहित जो मनुष्यहैं वे यदि प्रयत्न करैं तो अवश्य दैवको जीत सक्ते हैं, इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको पण्डित जनोंकी सेवा द्वारा श्रवण आदि प्रयत्न करना अवश्य उचित है । इस जन्ममें किये हुए पुरुषार्थकोही कार्यसिद्धिका उपाय समझकर जीवगण,

नित्य श्रेष्ठ पण्डित जानोंकी सेवारूपी महौषधि द्वारा जन्म मरणरूपी रोगकी शान्ति करै।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे परमपुरुषार्थ वर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमः सर्गः प्रारंभः ७.

अथ पुरुषार्थ प्रधान्य समर्थन वर्णनम् ।

॥ दोहा ॥

पुरुषार्थ प्राधान्यं जिमि, कह्यो वसिष्ठ सुनाय॥
सो वर्णौं जाके सुनत, दारुण शोक नसाय॥

श्रीवसिष्ठजी बोले कि—निरोप मानसी व्यथाओंसे रहित शरीरको पाकर ऐसा कार्य

करै जिससे पुनः इस संसारमें जन्म न हो। जो मनुष्य पुरुषार्थसे दैवके जीतनेकी इच्छा करताहैउसके इसलोकमेंऔर परलोकमेंसम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं। जो दैवपर भरोसा करके उद्योगको छोड देते हैं वे आत्मशत्रु (अपनेही बैरी) धर्म, अर्थ और काम, इनको नष्टकर देते हैं। संविस्पन्द् (तत्वज्ञान हृदय में विकाश) उससे पीछे मनस्पन्द (पुरुषार्थ साधनकी इच्छा) और फिर, एन्द्रियस्पन्द (अंगोंके संचलनार्थ कर्मेन्द्रियकी प्रवृत्ति) यह तीन पुरुथार्थके स्वरूप हैं, इन्हींसे फलका उदय होता है। साक्षी चेतनमें जैसी बिषयकी स्फूर्ति होती है मनकोभी वैसेही गति प्राप्त होती है, उसीके अनुकूल शरीरकी चेष्टा होती हैं और फलभी उसीके अनुसार होता है। जिस जिस बिषयमें जैसा जैसा प्रयत्न किया

जाता है उनमें वैसीही फलकी सिद्धि होतीहै, दैव कहीं भी नहीं देखा गया है, इसलिये पुरुषार्थही प्रधान है। पुरुषार्थकेही बलसे बृहस्पतिजी देवताओंके गुरू हैं और पुरुषार्थकेही बलसे शुक्राचार्य दैत्योंके गुरू हैं।

हे साधो! दीनता और दरिद्रताके दुखसे पीडित उत्तम मनुष्य अपने पुरुषार्थके बलसे इन्द्रके समान होगये हैं। अभूत पूर्व सम्पत्तिशाली नहुष प्रभृति राजागण बहुविधा बिभव का आस्वादन करके अपने पुरुषार्थके दोषसे नरकके महमान हुए हैं। सैकडों प्रकारकी बिपद् और सम्पद् तथा विविध प्रकारकी भयंकर दशाओंमेंसे जीवगण अपने पुरुषार्थ के बलसेही पार होगयेहैं। शास्त्रोंका अवलोकन, गुरूपदेश, और अपना प्रयत्न इन तीनों कीही सहायतासे सर्वत्र पुरुषार्थकी सिद्धी

होती है इसलिये दैवकी कभी भी अपेक्षा न करै। अशुभ मार्गमें प्रविष्ट चित्तको यत्नपूर्वक शुभ मार्गपर लाना उचित है, यही सब शास्त्रों का सिद्धान्त है। हे वत्स! जो कल्याणकारी हो, जो यथार्थरूपसे सत्यहो और जो नाश-वान् न हो ऐसे कर्मको यत्नपूर्वक करो, यही गुरू जनोंका उपदेश है जैसा हम प्रयत्न करते हैं वैसाही हमको फल प्राप्त होता है, इससे यह समझना चाहिये कि पुरुषार्थसेही हम फलके भागी हैं, दैवसे नहीं। पुरुषार्थसेही सिद्धि होती है, और पुरुषार्थकेही बलसे बुद्धिमान् मनुष्य कार्य करते हैं, दैव तो केवल दुखसे रोतेहुए अल्पबुद्धि मनुष्योंके लिये अश्वासन है। इसलोकमें देशान्तरमें गमन आगमन आदि पुरुषार्थके प्रत्यक्ष प्रमाण दिखलाई पडते हैं। जो भोजन करता है उसी

का पेट भरता है भोजन न करनेवालेका पेट कैसे भरसक्ता है? चलनेवालाही अन्य देशमें पहुँचते हैं न चलनेवाला कैसे पहुँच सक्ताहै? वक्ताही बोलता है जो वक्ता नहीं है वह क्या बोलेगा अतएव मनुष्यका पुरुषार्थही सब कुछ है। सुबुद्धि मनुष्य अपने पुरुषार्थके बलसे सहजहीमें अत्यन्त कठिन संकटोंसे पार हो जाते हैं परन्तु जो दैवका भरोसा करके उद्योग नहीं करतेहैं वे कुछभी नहीं करसक्ते। जो जैसा प्रयत्न करता है, उसको वैसाही फल मिलता है, जो उद्योग छोडकर मौन होजाते हैं उनको कहीं भी कुछ फल नहीं मिलता। अशुभ पुरुषार्थसे अशुभ फल मिलताहै, हे रामचन्द्रजी! अब जो आपकी इच्छा हो सो कीजिये। देशकालके वशसे पुरुषार्थ द्वारा जो फलकी प्राप्ति होती है चाहै वह

शीघ्रहो और चाहै देरसेहो, उसीको दैव कहते हैं दैव न तो नेत्रोंसे देखागया है और न दूसरे लोकस्थित है, किन्तु स्वर्गमें जो कर्मोंका फल भोगते हैं उसीको दैव कहते हैं। मनुष्य इस लोकमें जन्म लेता है, बढताहै और वृद्ध होताहै, किन्तु उसमें बाल्य, युवा और जरा अवस्थाके समान दैव कहीं भी नहीं दिखाई देता परमार्थ साधक कार्योंमें तत्पर रहनेकोही पण्डितजन पुरुषार्थ कहते हैं, और इसीसे सम्पूर्ण अभीष्ट प्राप्त होते हैं, चरणोंसे एक देशसे दूसरे देशमें जाते हैं हाथोंसे वस्तुओंके लेते देते हैं और दूसरे अंगोंसे दूसरे कार्य करते हैं यह सब पुरुषार्थसेही होताहै दैवसे नहीं जिनसे अनर्थकी प्राप्ति हो ऐसे कार्योंसे तत्पर रहनेको उन्मत्तकी चेष्टा कहते हैं इसमें कुछभी फल प्राप्त नहीं होता। सत्संग

और सतशास्त्रों द्वारा बुद्धिको तीव्रकरके मन, इन्द्रिय और शरीरकी क्रियाओंसे आत्माका स्वयंही उद्धार करना, इसको स्वार्थ साधकता कहते हैं। अज्ञानसे उत्पन्न विषमताके निवृत्त होनेपर जो परमानन्द प्राप्त होता है उसीको परमार्थ कहते हैं, यह परमार्थ जिनसे प्राप्तहो उन शास्त्रवेत्ताओंका नित्य सेवा करना उचित है। बुद्धीसे सत्‌शास्त्रोंका ज्ञान और साधुओंके समागमसे बुद्धि ये दोनों काल पाकर ऐसे बढते हैं जैसे सरोवर और कमल। बाल्यावस्थासे सत्‌शास्त्र और साधुसमागमका अभ्यास करना उचित है, इससे हितकारी स्वार्थसिद्धक होता है विष्णु भगवान्‌ने पुरुषार्थसेही दैत्योंको बिजय किया पुरुषार्थसेही लोकोंके कर्मस्थापित किये औरपुरुषार्थसेही जगत्‌की रचनाकी दैवसे कुछ नहीं।

हे रघुनाथ इस जगत्में पुरुषार्थसेही इष्ट सिद्धि होती है, इस लिये सदा ऐसा प्रयत्न करते रहौ जिससे पुनः वृक्ष तथा सर्पादि योनियों प्राप्त न होओ।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्ष व्यवहार प्रकरणे पौरुष प्राधान्य समर्थानां सप्तमः सर्गः समाप्तः॥ ७ ॥

अथ अष्टमःसर्गःप्रारंभः ८

दैव निराकरण वर्णनम्।

चौपाई।

अष्टमसर्ग सुनहु मन लाई ॥ जो सुनि दुःख मूल कटि जाई॥श्रीवशिष्ठमुनि वर्णि सुनायो॥ रघुपति सुनत मोद उपजायो॥

श्रीवसिष्ठमुनि बोले कि न तो कोई आकार है न कोई इसका कर्म है, न कोई इसकी चेष्टा है और न कोई इसका पराक्रमहै, इसलिये मिथ्या ज्ञानके समान रूढ यह दैव क्या पदार्थ है। अपने कर्मके फल प्राप्त होनेपर "इस कर्मसे यह फल होताहै" इस प्रकार जो यह बाणी है सोही दैव नामसे प्रसिद्ध है। उन्हीं बाणियोंमें मूढमति मनुष्योंने भ्रमसे दैव ऐसे निश्चय कर लियाहै जैसे भ्रममे रस्सी सर्प समझी जाती है। जैसे पूर्व दिनका कुकर्म दूसरे दिनके सुकर्मसे शुभ होजाताहै वैसेही पूर्व जन्मके कर्म इस जन्मके कर्म्मोंसे उत्तम होजाते हैं, इसलियें यत्नपूर्वक सत्कार्य करना उचित है। जिस दुर्मति मूढ मनुष्यने दैवको अनुमानसे सिद्धमान लियाहै, उनको अग्निमें गिरकर देखना चाहिये कि दैव

(प्रारब्ध) से भुरसते हैं या नहीं। इस संसारमें यदि दैवही सब कार्योंका करनेवाला है तो मनुष्यकी चेष्टाओंका फिर क्या प्रयोजन है क्योंकि दैवही, स्नान, दान, मंत्रोच्चारण प्रभृति सब कार्य करलेगा। शास्त्रोंके उपदेशसे प्रयोजन है क्योंकि मनुष्य तौ मूक है, अर्थात् दैवके आधीन है जिधर दैव चलाता है। उसी ओर चलता है, फिर कौन किसको उपदेश देता है। मृत्तकको छोडकर चेष्टाका न होना संसारमें कहीं नहीं देखागया, और चेष्टासेही फल प्राप्त होता है इसलिये दैव निरर्थक है। यदि कहौ कि दैव पुरुषकी चेष्टाओंका सहायक है तौ सोभी नहीं क्यों कि मूर्त्तिरहित दैव मूर्त्तिमान् मनुष्यका सहायक नहीं दीखता, इसलिये दैव निरर्थक है। लेखन वा क्षौरकर्ममें जब तक हाथमें कलम वा उस्तरा रहता है

तभीतक कार्यकी सिद्धि होती है किन्तु जब वातादि रोगसे हाथ आदि अङ्ग नष्ट होजाते हैं तब, केवल दैव लेखनी वा छुरेसे क्यों नहीं कुछ करता है। इस जगत्में गोपाल(ग्वालिया) से लेकर महाबुद्धिमान् पण्डितों तकको मन, और बुद्धिके समान दैवका अनुभव किसीको नहीं होता इसलिये दैव असत् है। जो कदापि दैवको मानभी लियाजाय तौभी उसमें बुद्धिही प्रमाण है अब यह विचार होगा कि वह दैव बुद्धिसे जुदा हैं वा बुद्धिही में है यदि अलग मानते है तो किसी काममें उसका उपयोग न होनेसे वह निरर्थक ठहरता है और जो दोनोंको एक मानते हैं तो इनमें अन्तरही क्या रहा, इसलिये यहां भी बुद्धिके तीव्र होनेमें पुरुषार्थही सिद्ध होता है। आकाशके समान मूर्त्तिहीनका संयोग मूर्त्तिमानके

संग नहीं होता: दोमूर्त्तिमान् पदार्थोंकाही आपसमें संयोग होता है, इसलिये दैव नहीं है। इन तीनों जगतोंमें यदि दैव कोई पदार्थ है तो सब मनुष्य निश्चिन्त होकर सोवें क्यों कि दैव सब काम करलेगा। "दैवकी प्रेरणासे मैं यह कार्य करताहूँ," यह सब कार्य दैवकी संकल्पनासे सिद्ध है" यह बाधा केवल आश्वासन मात्रहै यथार्थमें दैव कुछ नहीं है। मूढ मनुष्यों नेही दैवकी कल्पना कीहै और जो इस दैवके भरोसे रहे वे नष्ट होगये, बुद्धिमान् मनुष्य तो अपने पुरुषार्थका आश्रय लेकर उत्तम पदको प्राप्तहुए हैं। इस संसारमें जो शूर, पराक्रमी, बुद्धिमान् और पण्डितहैं' बताओ वे कब दैवकी प्रतीक्षा करते

ज्योतिषियोंने जिनकी अवस्था बहुत काल तक बनाई है वह यदि सिर कटनेपरभी

अधिक कालतक जीवै तो निस्सन्देह दैव उत्तम समझा जाय। हे राघव ! ज्योतिषियोंने जिसके लिये यह कहदिया कि यह पण्डित होगा, वो यदि विना पढेही पण्डित तो दैव उत्तम सिद्ध हो। हे रामचन्द्रजी ! महर्षि विश्वामित्रजी दैवको दूरसेही परित्याग कर एक मात्र पुरुषार्थके बलसेही ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए है, अन्य किसी प्रकारसे नहीं। हे रामचन्द्रजी। हम भी अपने पुरुषार्थके बलसेही मुनि हुए हैं और पुरुषार्थसेही दीर्घ कालतक आकाशमें गमन करनेकी शक्ति पाई है। दैत्योंके अधिपतियोंने केवल पुरुषार्थके बलसेही देवताओंको निकाल कर तीन भुवनोंमें राज्य किया था और पुरुषार्थकेही बलसे देवताओंनें शत्रुओंको छिन्नभिन्नकरके पुनः इस जगतको असुरोंसे छीनलिया। हे

रामचन्द्रजी ! मनुष्य अपनी युक्तिके बलसे बांसके छिद्रमें बहुतकालतक पानीको उत्तम रख सक्ता है, क्या उस स्थानपर भी दैव कुछ कारण है ? कभी नहीं। हे रामचन्द्रजी ! कुटुम्बका पालन, बलपूर्वक शत्रुके राज्यका छीन लेना, भोग बिलास तथा और अन्यान्य कष्टसाध्य मनुष्योंके कार्योंमें औषधिके समान दैवमें शक्ति नहीं देखी जाती।

हे शुभमते ! तुम सम्पूर्ण कार्य कारणोंसे रहित अपनी भ्रान्तिसे कल्पित मिथ्या दैवको त्यागकर उत्तम पुरुषार्थका आश्रय करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे दैवनिराकरणं नामाष्टमः सर्गः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ नवम. सर्गः प्रारंभः ९

कर्मबिचार वर्णनम् ।

चौपाई—

नवमस्सर्ग सुहावन जानों ॥ तामहँ कर्म बिचार बखानों ॥ रामचन्द्र किय प्रश्नहिं जैसे ॥ श्रीव-सिष्ठमुनि भाष्यो तैसे ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे सर्वधर्मोंके जाननेवाले भगवन् ! यह जगत् विख्यात दैव सत्य है अथवा असत्य है यह मुझको कृपाकर बतलाइये । श्रीवसिष्ठमुनि यह सुन-कर कहने लगे कि हे राघव ! पुरुषार्थही सब कार्योंका करनेवाला और फल भोगनेवा-ला है और इसमें कुछ दैव कारण नहीं है ।

न तो दैव कुछ कार्य करता है, न कुछ भोगता है, न दिखाई देता है और न बिवेकीजन उसका आदर करते हैं यह केवल कल्पना मात्र है। अवश्य फलदायक पुरुषार्थसे शुभ अथवा अशुभ फल प्राप्त होता है उसीको दैव कहते हैं, पुरुषार्थद्वारा जो इष्ट और अनिष्ट बस्तुका नित्यही प्राप्ति होती है, उसीको मूर्ख मनुष्य दैव कहते हैं। एक मात्र पुरुषार्थसे जो फल अवश्य प्राप्त होता है उसीको इस जगत्में दैव कहते हैं। पुरुषार्थके अनुसार शुभ अथवा अशुभ फल प्राप्त होनेपर मनुष्य कहते हैं कि यह पूर्बजन्मका फल है इसीको दैव कहते हैं। कर्मके फल प्राप्त होनेपर जो मनुष्य यह कहते हैं कि " हमारी बुद्धि ऐसी हुई और ऐसा हमारा निश्चय हुआ " इसीको दैव

कहने हैं । जब इष्ट वा अनिष्ट फल प्राप्त होता है तो उसको मनुष्य कहते हैं कि यह हमारे पूर्बजन्मके कर्मोंका फल है, इसी धैर्यकी बाणीको दैव कहते हैं ।

श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे सर्बधर्मज्ञ भगवन् ! आपने बेर बेर कहा है कि पूर्व-जन्मका संचित कर्म दैव है, अब आप उस-का निषेध कैसे क्यों करते हो ? श्रीबसिष्ठ-जीने उत्तर दिया, हे राघव ! आप भलीभां-ति समझते हो, मैं तुमसे सम्पूर्ण बृत्तान्त कहता हूं तुम सुनो, इससे तुह्मारी बुद्धिमें यह स्थिर होजायगा कि दैव नहीं है । पहिले जो अनेक प्रकारकी मनोबासना थीं वही मनुष्योंके कर्मभावमें परिणत होगई । हे रामचन्द्रजी ! जीवमें जो बासना उत्पन्न होती है मनुष्य वही कार्य शीघ्र करने लगजाता है

कर्म कोईहो और बासना कोईहो ऐसा नहीं होसक्ता। ग्रामको जानेवाला ग्रामको जाता है, और नगरका जानेवाला नगरको जाता है, इसीप्रकारकि जिसकी जैसी बासना होती है वह वैसाई प्रयत्न करता है। फलकी अधिक अभिलाषासे यत्नपूर्वक जो पूर्वजन्ममें कर्म किया है उसीको " दैव ". कहते हैं। इसप्रकार कर्त्ताके कर्म उक्तरीतिसे सम्पन्न होते हैं, मनोवासनाही कर्म है, वासना मनसे पृथक् नहीं हैं और मन आत्मासे बिभिन्न नहीं है। हे साधो! जिसको दैव कहते हैं वह कर्म है, वे कर्म मनरूप हैं और यह मन पुरुषरूप है और पुरुष परमार्थ दशामें निर्विकारी चेतन मात्र है, इससे मन असत् सिद्ध हुआ और मनके असत् होनेसे कर्मभी असत् हुआ, और कर्मको दैव माना है इसलिये

दैवभी असत् हुआ इसप्रकार यह निश्चय हुआ कि दैव कुछ वस्तु नहीं है। यह जीव मनस्वरूपमें जिन२ कार्योंके लिये जैसा यत्न करता है, वैसाही दैव नामसे प्रसिद्ध उन कर्मोंका फल पाता है। हे रामचन्द्रजी! मन, चित्त, बासना, कर्म और दैव ये सब अनिर्वचनीय मनकी संज्ञा तत्वज्ञानियोंने मानी हैं और यह बात निश्चय है कि मन पुरुष है। इसप्रकार मन, चित्त, बासना कर्मादि नामधारी पुरुष दृढभावनासे जैसा प्रयत्न करता है उसका वैसाही फल पाता है। हे रामचन्द्रजी! इसप्रकार पुरुषार्थसेही सम्पूर्ण अभीष्ट होते हैं और किसीसे नहीं होते इसलिये यही पुरुषार्थ तुह्मारे लिये शुभदायकहो।

श्री रामचन्द्रजी बोले हे मुने! पूर्बजन्मका बासनारूपी जाल जैसे मुझे नियुक्त करता है

मैं वैसेही रहताहूँ मैं पर बसहूँ बताइये क्या करूं। यह सुनकर वसिष्ठमुनि बोले हे रामचन्द्रजी! तुम अपने पुरुषार्थ द्वाराही नित्य प्राप्त श्रेयका प्राप्त करोगे अन्य किसी प्रकारसे नहीं पासक्के। हे रामचन्द्रजी ? शुभ और अशुभ दो प्रकारके पूर्व जन्मकृत वासना रूपी जाल तुह्मारे हैं अथवा कोई और है अर्थात् शुभ बासना नहीं हैं अशुभ बासना हैं अब यदि तुम पूर्वजन्मकृत शुभ बासना जालमें परिचालित हो तौ तुम अपने मङ्गलमय परिणामरूपी पुरुषार्थद्वाराही नित्य पदको प्राप्त होओगे। और यदि पूर्वजन्मकृत अशुभ वासना तुमको संकटमें डालती हैं तौ तुमको उनका बलपूर्वक जीतना उचित है। तुम प्राज्ञ (बुद्धिमान्) चेतन मात्र हौ; तुम जडात्मक देह नहीं हो तुम चिन्मात्र स्वरूप हौ, इसलिये

अन्य चेतना द्वारा तुम प्रकाशित नहीं हो अर्थात् तुम अन्य किसीके आधीन नहीं हो। यदि तुमको अन्य कोई चैतन्य करता है, तो उसका चेतन करनेवाला कौन है ? यदि उसकाभी चैतन्य करनेवाला कोई अन्य मान लिया जाय तो फिर उसका चैतन्य करनेवाला कौन होगा ! इसीप्रकार यह अनवस्था जारी रहेगी जिससे किसी प्रकारकी सिद्धि प्राप्त न होगी। वासनारूपी नदी शुभ और अशुभ दोनोंमार्गोंसे बहती है, उसको पुरुषार्थरूपी प्रयत्नसे शुभ मार्गमेंही लगाना उचित है। हे बलियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजी ! अशुभ मार्गमें प्रविष्ट अपने मनको शुभयत्नपूर्वक शुभमार्गमें लगाओ। मनुष्यका मन बालकके समान अस्थिर चलायमान) है, अशुभ पथसे रोकनेपर अशुभ पथपर गमन करता है,

और शुभ पथसे रोकनेपर अशुभ पथपर गमन करता है अतएव चित्तको बलपूर्वक शुभपथपर चलाना चाहिये। इसप्रकार चित्त रूपी बालकको उपायके बलसे रागादि विषमताको त्यागकराकर शीघ्रही स्वाभाविक समताको प्राप्त करै, फिर शनैः शनैः पुरुषार्थरूपी यत्नसे आत्मस्वरूपमें स्थित करै।

तुमने पूर्वजन्ममें शुभ अथवा अशुभ वासनाओंका समूह अभ्याससे एक त्रित किया होकिन्तु इस जन्ममें तौ शुभ वासनाओंकोही एकत्रितकरो। हे अरिमर्दन! पूर्वकृतअभ्यासके बलसे जब तुह्मारी बासनाओंका उदयहो तब समझलो अभ्यास सुफल होगया। हे अनघ! अभ्यासके वशसे इससमय तुह्मारी बासना धनताको प्राप्त होगई है अतएव शुभ

अभ्यासही करौ । यदि पूर्बके अभ्याससे तुह्मारी बासना घनी नहीं हुई है तौ अबभी वे नहीं वढेगी, इसलिये दुर्बासनाकी वृद्धिसे अनर्थ सम्भावनाके शोकको त्यागकर सुख पूर्बक रहौ ! अभ्याससे बासनाकीवृद्धि होगी कि नहीं ,, इसप्रकार सन्देह होने परभी शुभ बासनाकाही अभ्यास करौ क्योंकि शुभ आचरणोसे शुभ बासनाओंकी वृद्धि होने-पर कोई दोष नहीं है । इस जगत्में मनुष्य जैसा अभ्यास करता है, उसका वैसाही रूप होजाता है, यह बात बालकसे लेकर वृद्ध-तक सबमें देखी गयी है इसमें कोई संदेह नहीं है । अतएव ? तुम कल्याण लाभके लिये परम पुरुषार्थका अवलम्बना करके शुभ बासनाओंसे युक्त होकर पांचों इन्द्रि-योंकों जीतलो ! तुम जबतक मनका स्वरूप

और अवस्था न जानौ उस आत्मपदको नहिं पहिचानौ तबतक गुरू शास्त्र, और प्रमाण, युक्ति, अनुभव आदि द्वारा निर्णयकरके शुभ-कर्म्मों का आचरण करौ। इसके अनन्तर राग, द्वेष आदि मलके शिथिल होनेपर जब आत्मवस्तु मालूम होजायगी, तब तुमको कुछ मानस दुखनहीं होगा फिर चाहै तुम शुभ-वासनाओंकाभी त्याग करदेना । हे रामच-न्द्रजी ! जो अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, आर्यजनोंसे सेवित हैं और जो सर्वदा शोक शून्य है उस आत्मपदको शुभमार्गके अनुसार शुभ वासना युक्त बुद्धिसे साक्षात्करौ फिर इसके पीछे शुभ वासनांओंकाभी परित्याग कर सत्स्वरू-पमें स्थिती होजाओ !

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे कर्मविचार वर्णनं नाम नवम सर्गः ॥ ९॥

अथ दशमः सर्गः प्रारंभः १०.

ज्ञानावतरण वर्णनम् ।

चौपाई ।

ज्ञानावतरण वर्णत भयेऊ ॥ जो सुनि सुजन महा सुद लयऊ ॥ सो यह दसम सर्ग सुखदायक ॥ कह्यो बसिष्ठ सुन्यो रघुनायक ॥

श्रीबसिष्ठ मुनि बोले—सर्वत्र समभावसे स्थित कहते हैं और व्यापक ब्रह्मकी सत्ताकोही नियति (बैराग्य प्रकरणमें इसका वृतान्तकी भार्यारूप वर्णन किया है) और ब्रह्मतत्वको सत्ता कहते हैं यही कार्य और कारणके नियम्य और नियामक रूपसे स्थित है, कार्य होनेपर कारण अवश्य होता है और कारण होनेपर कार्य अवश्य होता है, इसी नियमको

नियति कहते हैं। यही कार्यकी नियम्यता है और कारणकी नियामकता है। अतएव! नित्य कल्याणकारक पुरुषार्थका रूपबन्धु आश्र-यकरके अपने चित्तको एकाग्रकरौ और जो कुछ मैं कहताहूं उसको सुनो। सम्पूर्ण इन्द्रियां अपनेऽमनोरथोंपर आरूढ होकर मुक्तिमें विघ्न करनेवाले ऐहिक (इसजन्म) सुखमें अधिक गिरते हैं, अतएव जिससे वे मनोरथोंपर आरूढहो ऐसा प्रयत्न करके उनको जीत मनमें लीन करै। जीवन्मुक्ति और विदेह-मुक्तिकीसिद्धीके लिये पुरुषार्थके फलको देनेवाली मोक्ष प्राप्तिके उपायोंसे परिपूर्ण सारभूत संहिताको मैं तुमसे कहताहूं। संसार बासनाओंको सदाके लिये त्यागकर उदार बुद्धिसे सम्पूर्ण शम और सन्तोषका अवल-म्बनकरके और कर्मकाण्ड श्रुतिरूप पूर्ववा-

म्ब, और उपासना श्रुतिरूप उत्तरबाम्बके अर्थ बिचार सहित बिषयमें बिरक्त मनको आत्मानुसंधानमें लगाकर सुख, और दुखका क्षय करनेवाला महा आनन्दका एक मात्र कारण मोक्षप्राप्तिके उपायको तुम श्रवण करो। सम्पूर्ण बिवेकियोंके संग इस मोक्षको श्रवणकर अक्षय और दुख सुखसे रहित परम पदको प्राप्तहो जाओगे । सब दुखोंके नाश करनेवाले और बुद्धिको परम शान्ति प्रदान करनेवाले इस मोक्षोपायको ब्रह्माजीने मुक्तसे कल्पके आदिमें वर्णन किया था।

इसपर रामचन्द्रजीने पूँछा हे ब्रह्मन् किस कारणसे ब्रह्माजीने यह मोक्ष कथा कही थी और यह आपको कैसे प्राप्त हुई यह बृत्तान्त मुझसे बर्णन कीजिये। श्रीवसिष्ठ मुनिने उत्तरदिया कि अनन्त मायारचित

बिलासोंका अधिष्ठान, सर्वान्तर्यामी, सर्वाधार चिदाकाश और सब प्राणियोंमें प्रदीप स्वरूप अविनाशी परमात्मा है, माया और उसके कार्योंके चलायमान होनेपरभी निर्बिकार उस परमात्मासे विष्णु ऐसे उत्पन्न हुए हैं जैसे एकरससमुद्रसे तरंग उत्पन्न होती हैं। उस विष्णुके सुमेरुरूपी कर्णिकासे युक्त, दिशारूपी दलसहित और तारागणरूपी केशर युक्त हृदय कमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं। जैसे मन बिकल्पोंको उत्पन्न करता है वैसेही वेद वेदार्थ नित् ब्रह्माजीने देवगण और मुनिगणोंसे मण्डित होकर प्राणिसमूहकी सृष्टिकरी। जम्बूद्वीपके भारतवर्ष नामक एक कोणमें शारीरिक और मानसिक व्यथाओंसे पूर्ण जन समूहको रचा। इस प्राणि समूहमें लाभ और अलाभसे मनुष्योंके अंग

विषन्न (दुखित) होने लगे, मनुष्य उत्पन्न ध्वंस होनेलगे और नाना प्रकारकी विषय- वासनाओंमें लीन होने लगे, इसतरह मनु- ष्योंके दुखोंको देखकर सकल कर्त्ता ब्रह्मा जीके मनमें ऐसें दया उपजी जैसे पुत्रको दुखमें देखकर पिताके हृदयमें करुणा उत्पन्न होती है। "इन हताश अल्पायु मनुष्योंके दुखकी निवृति किस प्रकार होसक्ती है, " इस बातपर ब्रह्माजीने क्षणभर अपने चित्तमें विचार किया। इस प्रकार चिन्ता करके दुख हरनेमें समर्थ ब्रह्माजीने स्वयं तप, धर्म, दान, सत्य और तीर्थोंको उत्पन्न किया, इन सबको उत्पन्न करके भी उनके चित्तमें शंकाहुई कि इनसे भी सर्वथा प्राणियोंके दुखका अन्त न होगा। जिससे जीवका जन्म, अथवा मृत्यु कुछ नहीं होताहै वह

परमपद निर्बाण केवल ज्ञानके बलसे प्राप्त होसक्ता है अन्यथा नहीं; संसारसे पार उतर-नेका उपाय केवल ज्ञानहीं है.तप, दान, और तीर्थ इसके उपाय नहीं हैं। इसलिये इन हेत-बुद्धि मनुष्योंके दुखसे मुक्त होने और संसार-से पार होनेके लिये मैं उत्तम उपाय शीघ्रही प्रकाशित करताहूँ। ऐसा बिचारकर कमल-योनि ब्रह्माजीने मनके संकल्पसे मुझको उत्प-न्न किया, हे अनघ ! इसके, अनन्तर मायासे उत्पन्न मैं पिताके समीप ऐसे प्राप्त हुआ जैसे तरंगके निकट तरंग जाती है तथा कमण्डल और जपमालाको हाथमें लेकर मैंने कमण्ड-लुधारी सर्वनाथ ब्रह्माजीको नम्रभावसे प्रणाम किया, आओ पुत्र ! ऐसा कहकर श्वेतमेघमें चन्द्रमाके समान अपने आसनपद्मके उत्तर दलमें अपने हाथसे मुझको बैठा लिया फिर

मृगचर्मधारी मेरे पिता ब्रह्माजी मुझ मृगचर्म
धारीसे ऐसे बोले जैसे उत्तम हंस सारस
बोलता है । हे वत्स ! बानरके समान चं
तुह्मारे चित्तमें थोडी देरके लिये अज्ञान ऐ
प्रवेशकरै जैसे चन्द्रमामें कलंक । जब ब्रह्मा
जीने मुझको इस प्रकार शाप दिया तो
अपना सम्पूर्ण स्वरूप शीघ्रही भूलग
इसके अनन्तर मैं जडतायुक्त बुद्धिसहित, दी
होकर शोक सन्तप्त. निर्धन मनुष्यके सम
रहनेलगा, केवल मनही मनमें मैं यह सोच
था हाय ! यह संसार नामक दोष किस प्रक
उपस्थित हुआ और चुप रहना था । इ
पश्चात् पिताजी ने मुझसे पूंछा हे पुत्र !
दुखी क्यों हो, दुख निवारण करनेका उ
मुझसे पूंछो जिससे तुम सदा सुखी रहो
इतना कहनेपर सुवर्ण कमल दलपर वि

मान् सकल लोकके निर्माण कर्त्ता उस भगवान से मैंने संसाररूपी रोगकी औषधि पूंछी हे प्रभो! यह दुखमय संसार प्राणीका किस प्रकार होता है और किस प्रकार इसका नाश होता है? ! मेरे इस प्रकार पूंछनेपर उनने बहुत ज्ञान वर्णन किया और उस परम पवित्र ज्ञानको जानकर मैं पिताकी अपेक्षा अधिक निर्मल परिपूर्णभाव तत्वज्ञानरूपमें स्थित होगया। इसके अनन्तर मैं जब सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थको जान गया, और अपनी प्रकृतिमें स्थित हुआ तो जगत् कर्त्ता ब्रह्माजीने मुझसे सब कारण कहा।

हे पुत्र! समस्त अधिकारीजनोंकी ज्ञान सिद्धिके लिये शापद्वारा तुमको अज्ञानी बनाकर इस ज्ञानरूपी सार पदार्थका पूंछनेवाला बनाया। इससमय तुह्मारा शाप नष्टहोगया है

और तुम परम ज्ञानको प्राप्त हुए हो। जैसे सुव-
र्ण मलीनताके संसर्गसे सुबर्ण नहीं ज्ञान होता
और पुनः शुद्धकरनेपर सुवर्ण दीख पडता है,
तुमभी उसीप्रकार मेरे समान एक आत्मारूप-
में स्थित हो। हे साधो ! इससमय तुम संसा-
रपर अनुग्रह करके पृथ्वी तलपर जम्बूद्वीपके
मध्यमें जो भारतवर्ष है वहां जाओ। हे पुत्र!
तुम महाबुद्धि सम्पन्न हो वहां जाकर तुम
क्रियाकाण्डमें तत्पर मनुष्योंको क्रिया काण्डके
क्रमसे उपदेश देना और जो बिरक्त चित्त महा-
पण्डित और बिचारशील हैं उनको आनन्द-
दायी ज्ञानका उपदेश करना। हे रामचंद्रजी!
इस प्रकार कमलयोनि अपने पिताकी आज्ञा-
नुसार मैं उस समय तक यहां रहूँगा जबतक
कि यहांपर अधिकारी जन रहैंगे मुक्त इस
संसारमें कुछ प्रयोजन नहीं है कहीं रहना

चाहिये इसलिये पृथ्वीपरही रहताहूँ, मैं निरभिमान होकर धी शक्ति सम्पन्न बृत्तिद्वारा यथा प्राप्त कार्यका अनुवर्त्तन करताहूँ अपनी बुद्धिसे कुछ नहीं करता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे ज्ञानावतरणवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अथ एकादशः सर्गः प्रारंभाः ११

अथ वसिष्ठोपदेशवर्णनम्।

चौपाई।

पावन सर्ग कहूं एकादश ॥ श्रीबसिष्ठमुनि बर्णन किये जस॥ किय उपदेस यथा रघूनाथहि ॥ हरत सकल अघ सुनि शुभ गाथहि ॥

श्रीवसिष्ठमुनि बोले हे रामचन्द्रजी ! जिस प्रकार पृथ्वीपर ज्ञानका अवतरण हुआ, और जिस प्रकार मैंने जन्मधारण किया, वो तथा जो कुछ मेरी और ब्रह्माजीकी चेष्टा थीं वह मैं आपसे सब वर्णन कर चुका । हे अनघ ! बडे भारी पुण्यके उदयसेही इस परम पवित्र ज्ञानके सुननेकी उत्कण्ठा आपके चित्तमें उत्पन्न हुई है । रामचन्द्रजी बोले हे ब्रह्मन् ! सृष्टिके अनन्तरही भगवान् परमेष्ठी (ब्रह्माजी) को संसारमें ज्ञानका अवतार करनेकी बुद्धि किस प्रकार प्रवृत हुई यह वार्ता कृपाकर मेरे निकट वर्णन कीजिये ।

श्रीवसिष्ठमुनि बोले कि परमब्रह्म परमात्मा के स्वरूपमें स्वभाव वशतः ब्रह्माजी क्रिया शक्तिमय होकर स्वयं ऐसे उत्पन्न हुए जैसे जलधिसे तरङ्ग उत्पन्न होते हैं । यही ब्रह्माजी

अपने बनाये हुए प्राणी समूहको इस प्रकार आतुर अर्थात् जन्म, मरण, ज़रा आदिसे ग्रस्त देखकर सम्पूर्ण सृष्टिकी भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् दशाको बिचारा और स्वर्ग और मोक्ष साधनके अनुष्ठान योग्य सतयुग आदि के क्षय होनेपर मनुष्योंके भावी अज्ञानको देखकर करुणासे गद्गद होगये। इसप्रकार सोच बिचारकर उनने मुझको उत्पन्न किया और बारम्बार उपदेश देकर ज्ञानी बनाय मुझको मनुष्योंके अज्ञान दूर करनेके लिये पृथ्वी तलपर भेजा तथा मेरे अतिरिक्त, सनत्कुमार नारद आदि बहुतसे अन्य ऋषियोंकी इसी निमित्तसे यहां पर भेजे, इस प्रकार अज्ञान रूपी रोगसे ग्रस्त मनुष्योंको क्रिया कर्म, पुण्य, और ज्ञानके उपदेश द्वारा उद्धार करनेके लिये हम सम्पूर्ण ऋषि पृथ्वीपर भेजेगयेहैं, इसके पश्चात्

सत्युगके अन्त होनेपर जब पृथ्वीपर सम्पूर्ण शुद्ध क्रिया न्यून होगई तब इन महर्षियोंने क्रियाक्रमको प्रवृतिके लिये और मर्यादाओंके नियमके लिये पृथक् २ देश बिभाग करके प्रत्येक देशके लिये राजा बनाये; और धर्म, कर्म, और अर्थकी सिद्धिके लिये इस पृथ्वी तलपर अनेक स्मृति शास्त्र और मत शास्त्र निर्माण किये। जब इस प्रकार काल चक्र घूम रहाथा, शुद्ध मर्यादा नष्ट होरहीं थी और प्रति दिन मनुष्य विषयोंमें लीन होते जाते थे, उन समय सम्पूर्ण राजा विषयके लिये आपस में बिवाद करने लगे और पृथ्वीके अनेक प्राणी दण्ड योग्य होगये, पहिले समयमें राजागण बिना युद्धही प्रजापालन करने में समर्थ थे किन्तु उससमय बिना युद्ध प्रजा पालनमें असमर्थ होगये और प्रजाके संग दीन

होगये, फिर उनकी दीनताको दूर करनेके लिये और आत्मज्ञानके प्रचारके लिये हमने अनेक ज्ञान शास्त्र निर्माण किये, यह अध्यात्म बिद्या प्रथम राजाओंमें बर्णन कीगई थी और फिर इसका प्रचार सम्पूर्ण संसारमें हुआ इसी कारण इसको राजबिद्या कहते हैं। हे राघव! राजाओंमें योग्य अध्यात्मज्ञानरूप उत्तम राजबिद्याको जानकर राजालोग दुखों से पार होगये। इसके अनन्तर पहिले बहुतसे निर्मल कीर्ति राजा हुए हैं और अब तुम उदार कीर्ति राजा दशरथसे उत्पन्न हुए हो। हे रामचंद्रजी! आपके प्रसन्न चित्तमें बिना कारणही यह मनोहर बैराग्य उन्पन्न हुआ है हे रामचन्द्रजी! सम्पूर्ण बिबेकी पुरुषोंके मध्यमें प्रसिद्ध सकल साधुओंकोभी पूर्वकाल में किसी न किसी निमित्तसेही राजस बैराग्य

उत्पन्न होताहै किन्तु तुमको यह अपूर्व बिबेक जनित सात्विक बैराग्य बिना किसी कारणही उत्पन्न होता है घृणाजनित बिषयोंको देख-कर तो सब कोही बैराग्य उत्पन्न होताहै किन्तु सज्जनोंको तो बिबेकसेही बैराग्य उत्पन्न होता है। जिनको बिना कारणही केवल बिबेकसेही बैराग्य उत्पन्न होता है, वेही महात्मा हैं, वेही महा बुद्धिमान् हैं और उन्हींका मन निर्मल है। अपने बिबेकसे आत्मतत्वकी ओर जो अभिमुखता (झुकाव) होती है उसके द्वारा बिरक्त प्राणीको ऐसी शोभा होती है जैसे युवा पुरुषकी उत्तम बरमालासे शोभा होती है। बिवेक द्वारा इस संसारकी रचनाको जानकर जो बैराग्य धारण करते हैं। वे उत्तम पुरुष हैं। अपने बिबेक द्वारा बारम्बार बिचा-रकर इन्द्रजालके समान मायावी इस दृश्य

समूहको और बाह्य और अभ्यन्तर देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अबिद्याको बलपूर्वक त्यागना चाहिये। स्मशान बिपत्ति और दैन्य देखकर किसको बैराग्य उत्पन्न नहीं होताहै किन्तु श्रेष्ठ बैराग्य वही है जो अपने आप उत्पन्न हो। तुमको अकृत्रिम (असली) महान बैराग्य प्राप्त हुआ है इसीलिये आत्मा बिद्या सीखने के लिये ऐसे योग्य हो जैसे बीज बोनेके लिये नरम भूमि। परमेश्वर परमात्माकीही कृपासे आपके समान मनुष्योंकी शुभ बुद्धि बिबेककी ओर झुकती है। यज्ञदानादि क्रिया कलाप महत्तपस्या, नियम और तीर्थयात्राद्वारा और अधिक कालके बिवेकसे दुष्कर्मोंके क्षय होने पर काकतालीय न्यायके तुल्य मनुष्यकी बुद्धि परमार्थ बिचारमें प्रवृत्त होती है जब तक

यह प्राणी परमपदका दर्शन नहीं करता तब तक चक्रके समान भ्रमण करनेवाले रागादिसे घिरा हुआ इस संसारके भोगोंके साधनरूपी उपायमें प्रवृत्त रहता है इस संसारको बिवेक बुद्धिद्वारा जैसा है वैसा जानकर और संसारमयी बुद्धिको त्यागकर बिवेकी जन संसार बंधनसे रहित होकर परमपदको ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे गज बन्धनको तोडकर निज अभीष्ठ स्थानपर पहुँचते हैं। हे रामचन्द्रजी ! इस संसारकी गति अत्यन्त विषम है, इसका अन्त नहीं है, देहयुक्त महा जन्तु (जीव) बिना ज्ञानके इसको नहीं जानसक्ता। हे रघुद्वह ! बिबेकी मनुष्य ज्ञान युक्तिरूप नौकाद्वारा पलभरमें इस संसाररूपी दुस्तर समुद्रसे पार होजाते हैं। इस लिये तुम संसारसागरसे बिस्तार करने

वाली इस ज्ञान युक्तिको बिचार और अभ्यासमें तत्पर बुद्धिद्वारा एकाग्र चित्त होकर श्रवण करो क्योंकि बिना उत्तम ज्ञानकी युक्तिके जगत्के दुख अधिक कालतक दग्ध करते रहते हैं।

हे राघव ! शीत, बात और धूप आदिके दुख बिना ज्ञानयुक्ति साधुजन कैसे सहन करसक्ते हैं, दुःखकी चिन्ता मूढ मनुष्यके पास आकर समयपाकर ऐसे जलाती है जैसे अग्नि तृष्णाको जलाती है। जिस मनुष्यने अध्यात्म शास्त्रको विचारपूर्वक जान लिया है और जिसको ब्रह्मसाक्षात्कार होगया है उसको मानासिक पीड़ा ऐसें नहीं सतासक्ती हैं जैसे बर्षासे भींगे हुए बनको अग्नि नहीं जलासक्ती है। मानसिक और शारीरिक दुखरूपी चक्रयुक्त संसाररूपी मरुस्थलकी वायुके चलनेप-

रभी तत्वज्ञ मनुष्य कल्पवृक्षके समान पीडित नहीं होते। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि तत्वज्ञान जाननेके लिये श्रुति आदिके प्रमाण देनेमें निपुण तत्वज्ञानी मनुष्यसे नम्रता पूर्वक प्रश्न करै। उत्तम चित्त, प्रमाणिक बक्तासे अपने प्रश्नका उत्तर सुनकर उसके बचनोंको ऐसे ग्रहण करै जैसे बस्त्र कुंकुममें डालनेसे कुंकुमको ग्रहण कर लेता है अर्थात् सोख लेता है। हे बक्ताओंमें श्रेष्ठ! जो मनुष्य आत्मतत्वको नही जानता उसका बचन ग्रहण करना उचित नहीं है जो ऐसे मनुष्वसे प्रश्न करता है उससे बढकर कोई मूर्ख नहीं है। जो प्रमाणिक तत्वज्ञानी बक्ताके बचनको अङ्गीकारकर उसके अनुसार आचरण नहीं करताहै उससे अधम कोई मनुष्य नहीं है। जो वक्ताके कार्योंसे उसकी

मूर्खता और बिद्वताका निर्णय करके प्रश्न करता है वही प्रश्न कर्त्ता महाबुद्धिमान् होता है। जो बक्ताका निर्णय किये बिनाही बालकके समान प्रश्न करताहै वह अधम है वह किसी प्रकार आत्मज्ञानका पात्र नहीं है। जिसकी बुद्धि पूर्बापर बिचार करनेमें समर्थ है, और जिसके आचरण निन्दित नहींहैं ऐसेही पुरुषको आत्मज्ञानका उपदेश करना उचित है। जिसमनुष्यकी बुद्धि पशुओंके समान है उसको उपदेश करना कदापि उचित नहीं है! "आत्मज्ञानके उपदेशके योग्य प्रश्न करताहै या नहीं" जो बिना इसबातके बिचारे उपदेश करने लगतेहैं उनको बुद्धिमान् मनुष्य महामूढ कहते हैं। हे रघुनन्दन! आप अत्यन्त गुणवान् प्रशंसा योग्य प्रश्न कर्त्ताहो और मैं सद्वक्ताहूँ, इससे हमतुम दोनोंका बहुत

ठीक संयोग हुआ है।

हे शब्दार्थ ज्ञानमें निपुण रामचन्द्रजी! जो कुछ मैं कहूँ वह तत्व है ऐसा निर्धारण करके उसको ज्यों का त्यों हृदयमें धारण करौ। आप मनुष्योंमें महान् श्रेष्ठहो, वैराग्य सम्पन्न हो और तत्व पदार्थके ज्ञाताहो जो कुछ तुमसे कहा जायगा वह तुह्मारे हृदयमें ऐसे अंकित होगा जैसे श्वेतवस्त्र कुंकुमके जलको सोखलेता है। उपदेशको श्रवण करनेमें निपुण कुशल और परमार्थ विवेचनमें समर्थ आपकी बुद्धि तत्वार्थमें ऐसे प्रवेश करती है जैसे सूर्यकी किरण पानीमें प्रबेशकर जाती है जो जो कहूँ उसको आप यत्नपूर्वक हृदयमें अच्छीप्रकार धारणकर उसके अनुसार कार्य करौ और यदि ऐसा न करसको तो मुझसे प्रश्न करना वृथा है। हे रामचन्द्रजी! यह

चपल मन संसार रूपी बनका बानर है,इसका यत्नपूर्बक रोककर परमार्थकी बाणीको श्रवण करो। अबिबेकी, मूर्ख,और दुर्जनोंको दूरसेही त्यागकर साधुजनोंकी सेवा करना उचित है। साधुजनोंके सत्संगसे नित्यही बिवेक उत्पन्न होताहै,मोक्ष और भोग यह दोनों बिबेकरूपी वृक्षके फल हैं।

शम, सन्तोष, बिचार और सत्संग ये चारों मोक्ष द्वारके द्वारपाल कहे गये हैं, इन चारोंकी अथवा इनमेंसे तीनकी या दोकी यत्नपूर्बक सेवा करनी चाहिये अर्थात् इनको सम्पादन करना चाहिये क्योंकि ये मोक्षके द्वारको खोल देते हैं. यदि यह न होसकै तो इन चारों-मेंसे एकको प्राणोंकाभी मोह त्याग वशकरै क्योंकि एकके बश होजानेपर चारों वशमें होजाते है। बिबेकवान् पुरुषही शास्त्र, ज्ञान,

तपस्या और श्रुतिके योग्य है और सबका ऐसे शिरोमणि होता है जैसे सूर्य तेजयुक्त पदार्थोंका मन्दचित्त मनुष्योंकी मूर्खता क्रमशः अधिक होती जाती है, यहांतक कि वह ऐसी प्रगाढ होजाती है जैसे अधिक शीतके कारण पानी पाषाण होजाता है किन्तु हे राघव! आपका अंतः करणतो सुजनता गुण और शास्त्र दृष्टिद्वारा ऐसे विकसित होरहाहै जैसे सूर्योदय होनेपर कमल खिलजाते हैं।

हे श्रेष्ठमते रामचन्द्रजी! तुम इस ज्ञानकी बाणीके श्रवण करने और मनन करनेके ऐसे योग्यहो जैसे बीणाका शब्द सुननेके लिये दोनों कान उठाये हुए मृग। हे रामचन्द्रजी! वैराग्याभ्याससे सुजनतारूपी सम्पत्तिका उपार्जन करो जिसका नाश कभी नहीं होता इस संसारसे मुक्त होनेके लिये प्रथम शास्त्र

और सज्जनोंकी संगति तथा तप और दम द्वारा बुद्धिको बढावै। यदि यह शास्त्र (योग-वासिष्ठ) किंचित् संस्कारयुक्त बुद्धिसे अव-लोकन कियाजाय तो इसको मूर्खताका ध्वंस करनेवाला समझो अर्थात् इसके बिचारनेसे मूर्खता नष्ट होजाती है।

यह संसाररूपी बिषका वृक्ष आपदाओंका एक मात्र निवास स्थान है, यह अज्ञानी मनु ष्योंको सदैव मोह लेता है इसलिये प्रथम यत्न पूर्वक मूर्खता नाश करनेका उपाय करै दुष्ट आशाओंके कारण सर्पके समान कुटिल गतिवाली यह मूर्खता जब हृदयमें गर्जती तब चित्त ऐसे सिकुर जाता है जैसे अग्निप रखनेसे चमडा। यह यथार्थ तत्व दृष्टि बुद्धि मान् श्रोता और बक्तासे ऐसे प्रसन्न होती जैसे मेघरहित निर्मल नभ मण्डलमें सम्पू

चन्द्रमाको देखकर नेत्र प्रफुल्लित होते हैं, जिसकी बुद्धि पूर्वापर बिचार पूर्वक अर्थके ग्रहणमें अति चतुर है वही संसारमें पुरुष नाग-से पुकारे जाने योग्य है । अंधकार नाशक निर्मल चन्द्रमासे जैसे आकाश शोभाको प्राप्त होताहै वैसेही बिकसित, निर्मल, अज्ञान नाशक, पदार्थ बिचारमें लीन गुणसाली हृदय द्वारा तुम शोभित होरहे हौ ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षु व्यवहार प्रकरणेवासिष्ठोपदेश बर्णनं नामैकादशःसर्गः ॥११॥

अथ द्वादशःसर्गः प्रारंभः १२

तत्त्वज्ञ माहात्म्य वर्णनम्।

दोहा।

शुभ तत्वज्ञ महात्म्य है, द्वादश सर्ग पुनीत॥
मोक्षमार्ग सहजहि लहै, जो नर सुनहि सप्रीत॥

श्रीवसिष्ठमुनि बोले हे राघव! आपका मन अनेक गुणोंसे पूर्ण है, आप प्रश्न करनेकी रीतिको जानतेहैं और जो बात कही जातीहै उसको आप शीघ्रही समझ जाते हो इसलिये मैं आदर पूर्वक कहनेमें प्रवृत्त हुआहूँ। तुम ज्ञान सुननेके लिये रजोगुण और तमोगुणसे शून्य शुद्ध और परमात्मामें लीन बुद्धिको आत्मामें स्थापन करके स्थिर होवो। तुममें प्रश्न कर्ताकेसे सम्पूर्ण गुण और मुझमें वक्त-

ओंकेसे सम्पूर्ण गुण ऐसे विद्यमान् हैं जैसे समुद्रमें सब प्रकारके होते है । हे पुत्र! जैसे तुमको बिना किसीके संग विवेक सहित बैराग्य ऐसे उत्पन्न हुआहै जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर चन्द्रकान्तमणि द्रवीभूत होजाती है । तुमको बालकपनसेही उत्तम गुणोंका अभ्यास ऐसे है जैसे कमलकी उत्पत्तिके संगही सुगन्धि आदि गुण उसमें रहतेहैं । इसलिये जो कुछ मैं कहताहूँ तुम उसको श्रवण करो तुमही इस उपदेशके पात्र हो, क्योंकि चन्द्रमा के बिना शुद्ध कुमोदिनी बिकसित नहींहो सक्ती । जो कुछ यह बाह्य आदडम्बरहै वे सब परम पदके दर्शन होनेपर निश्चय शान्त होजातेहैं अर्थात् इनका लोप होजाताहै । यदि साधु चित्त मनुष्यको! ज्ञानसे शान्ति न होती तो इस संसार में अनेक अनर्थोंको कौन

सहन करता। परम पदके प्राप्त होनेपर हृदय की सम्पूर्ण वृत्ति ऐसे नष्ट होजातीहैं जैसे प्रलयकालमें सूर्यके तेजसे महेन्द्रादिक कुल पर्वतोंकी शिला हे रामचन्द्रजी इस संसाररूपी बिषयसे जो दुःसह बिषूचिका उत्पन्न होती है वह योगरूपी परम पवित्र गारुड मंत्रसे शान्त होती है। और यह परमार्थ ज्ञानरूपी गारुडमंत्रसे सज्जनोंके संग वेदांत शास्त्रके बिचारनेसे निश्चय प्राप्त होता है। बिचार करनेसे सम्पूर्ण क्लेश निश्चय नष्ट होजाते हैं इसलिये .बिचार दृष्टिका अनादरसे देखना उचित नहीं है, जो मनुष्य, बिबेकी, शीतल हृदय और चिन्ता रहितहैं वे सम्पूर्ण मानसिक व्यथाओंको ऐसे त्याग देते हैं जैसे सर्प अपनी पुरानी कांचलीको छोड देताहै इसके पश्चात् उसको सम्पूर्ण जगत् इन्द्रजालके समान

दीख पडता है परन्तु मूर्ख मनुष्य तौ इस संसारमें केवल दुखही भोगते हैं। यह संसार आसक्ति अत्यन्त विषयहै यह मोह ग्रस्त मनुष्योंको सर्पके समान डसती है, खड्गके समान छेदन करती है बर्छीके तुल्य बेधती है, रस्सीके समान बांधतीहै; अग्नि के समान दग्ध करतीहै, रात्रिके समान दृष्टिहीन करती है पाषाणके समान बेवश करती है, बुद्धिको नष्ट कर देतीहै मर्यादाको तोड देतीहै मोह रूपी अन्ध कूपमें गिरा देती है और भोगोंकी अभिलाषासे जर्जर कर देती है, इससे यह ज्ञात होताहै किं ऐसा कोई दुख नहीं है जिसको संसारी मनुष्य न भोगता हो। यदि इस दुरन्त विषयरूपी विषूचिकाकी चिकित्सा न कीजायगी तौ यह शरीर घोर नरकोंमें जाकर दुख भोग करेगा,

उन नरकोंमें पत्थरोंका भोजन मिलेगा, खड्गोंसे शरीरके टूक टूक किये जांयगे, भारी२पत्थरकी शिला ऊपर गेरी जांयगी, अग्निसे शरीर जलाया जायगा सर्दीमें बरफ से स्नान कराया जायगा कैंची अथवा किसी ओरसे अंग कतरे जायगे चन्दनके समान शरीर घिसे जांयगे, कृपाण सम पैने पत्रोंसे युक्त बनों में दौडाये जांयगे, सम्पूर्ण अङ्गकाष्ठ यंत्रमें दबाये जाँयगे चलते हुए लोहेकी जंजीरोंसे शरीर बांधे जाँयगे, कांटोंकी झाडू अङ्गपर फेरी जायगी जिससे सम्पूर्ण देह छिल जायगी, अग्निकी ज्वाला निकलते हुए अन गिनती युद्धके बाण शरीर पर बर्षाये जाँयगे जिनसें बचनेके लिये कोई उपाय न होगा' छाया और जलके बिना गरमीको काटना पडेगा शीत ऋतुमें शीतल पानीकी धारा निरन्तर देहपर छोडी जायगी

शिर छेददिये जांयगे; सुखकीनिद्रा तौ स्वप्नमेंभी न मिलैगी, मुख ऐसी रीतिसे बन्द किया जायगा जिससे श्वासभी न लिया जाय और सम्पूर्ण अङ्ग ऐसे छिन्न भिन्न किये जांयगे कि कोई कामके योग्य न रहै, इस प्रकारके अनेकोंको कष्ट भोगने पड़ैंगे, । हे राघव ! इस संसार रूपीयंत्रमें ऐसे सहस्रों भीषण कष्ट हैं इससे इसकी कभी अपेक्षा करनी उचित नहीं है; सदैव शास्त्रोंको बिचारकर इस बातका निर्णय करना उचित है कि मोक्ष कैसे प्राप्त हो सक्ती है । हे रघुकुलचन्द्र ! यदि, महामुनि, महर्षि, बिप्रगण और राजागण अपने शरीरको ज्ञानरूपी कवचसे न ढकते तौ कष्ट सहन करनेके अयोग्य होने परभी क्यौं दुख दायक संसारिक पीडाओंको अनुभव करते हुए भी प्रसन्न मन

रहते हैं। जिनको आत्म ज्ञानरूपी दीपक का प्रकाश प्राप्त हुआ है वे शुद्ध बुद्धिवाले कौतुक और रहित उत्तम पुरुष इस संसारमें ऐस स्थित हैं जैसे ब्रह्मा विष्णु और महादेव अज्ञानके क्षीण होनेपर जब ज्ञान रूपी मेघका उदय होता है तब श्रेष्ठ आत्म तत्वकी प्राप्ति होती है, इस प्रकार आत्म तत्वके प्राप्त होने-पर मनुष्यका इस संसारमें भ्रमण सुखका हेतु-है दुखका नहीं। जब परमार्थ ज्ञानसे आत्माके प्रसन्न होनेपर हृदयमें परमोत्तम शान्ति रसका उदय होताहै और सम्पूर्ण वृतियां शान्ति रसका आस्वादन करती है तब अन्तःकरणकी अन्य वृत्तियां ब्रह्मरसका आस्वादन करती हुई समभाव युक्त होजाती हैं अर्थात् जगत् और आत्मा एकही हैं यही मालूम होनेलगताहै ऐसेसमयमें तत्वज्ञानियोंका

इस संसारमें भ्रमण सुखहीका हेतु है इस्में कोई सन्देह नहीं है । हेरामचन्द्रजी ! कटे बृक्षके ठूंठके समान अचेतन यह देह रथ है, विषय रूपी पृथ्वीपर गमन करने वाली इन्द्रियां रथके अश्व हैं, प्राण बायु द्वारा यह रथ चलताहै, मन इसकी लगाम है, और आनन्द रूप परमात्माकी ओर यह रथ जाताहै, इस देह रूपी रथका रथी प्राणी क्षुद्र होनेपरभी समाधि समयमें महान् है ।पाप रहित बुद्धिद्वारा आत्म तत्त्वके दर्शन होनेपर यह जगत्का भ्रमण सुखकी ही क्रीडाहै ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षु व्यवहार प्रकरणेवासिष्ठोपदेश बर्णनं नामैकादशःसर्गः ॥११॥

अथ त्रयोदशःसर्गःप्रारंभः१३

अथ शम वर्णनम्।

दोहा।

समवर्णन जाविधि कियो,श्रीबसिष्ठ चितलाय।
पावन सर्ग त्रयोदश, श्रवण कीन्ह रघुराय॥

श्रीवसिष्ठमुनि बोले कि हे रामचन्द्रजी! इस संसारमें आत्माका साक्षात् करनेवाले सुबुद्धि-गण इस ज्ञान दृष्टिका अवलम्बन करके राज्य को प्राप्त मनुष्यके समान आनन्द पूर्वक बिचरते हैं। न यह शोक करतेहैं, न किसी बिषयकी बाँछा करते हैं और न शुभ और न अशुभ किसी वस्तुके लिये प्राथना करते हैं यह सब कार्य करते हैं और बास्तवमें कुछ नहीं करते हैं। वे शुद्ध भावसे रहतेहैं, जो कुछ

करते हैं सब शुद्ध करते हैं और शुद्धमार्गमें गमन करते हैं और ग्रहण और त्याग पक्षसे रहित अपने आत्मामेंही स्थित रहतेहैं व्यवहार दृष्टिसे ज्ञानी पुरुष आते जाते हैं, कर्म करते हैं और बोलते हैं परन्तु आत्मदृष्टि न वे आते हैं न जाते हैं न कर्म करते हैं और न बोलते हैं। हे रामचन्द्रजी ! परमपदके प्राप्त होनेपर अविद्या सम्बंधी जितने कार्यहैं और असत्य पदार्थमें जो सत्यदृष्टि है वह नष्ट होजाते हैं । आत्मज्ञानसे जिसकी सम्पूर्ण मनकी वृत्तियां शान्त रहती हैं उसको चन्द्रमाके बिम्बमें स्थित पुरुषके समान चारोंओरसे सुख प्राप्त होताहै। जैसे पूर्ण चन्द्रमामें स्थित अमृतका अनुमान नहीं होसक्ता वैसेही विषय अभिलाषासे शून्य, सम्पूर्ण कौतुकोंसे रहित मनके सुखका परिमाण नहीं होसक्ता अर्थात्

ऐसे मन वाले मनुष्यको असीम सुख प्राप्त होताहै। आत्मतत्वका देखनेवाला न तौ माया जालमें फसता है और बासनाओंका अनुसरण करता है किन्तु वहतौ बालकके समान चप-लताको त्यागकर परमात्म सुखमें बिराज करता है । हे रामचन्द्रजी ! इसप्रकार जीव-न्मुक्त अवस्था केवल आत्मतत्वके दर्शनसेही प्राप्त होसक्तीहै अन्यथा नहीं, इसलिये जब-तक जीवन रहे तबतक बिचार पूर्वक आत्मा काही अन्वेषण (उपासना)और ज्ञान सम्पा-दन करना उचितहै । निरन्तर अभ्याससे, अपने अनुभव, शास्त्र,और गुरूसे एक अर्थका निश्चय होजाता है और इससे सदैव आत्माका दर्शन होताहै, ऐसे मनुष्यको शास्त्रकी अवज्ञा करनेवाले और महात्माओंके अनादर करने-वाले मूढ मनुष्योंके समान दुखसे कष्ट नहीं

पाते। अपने शरीरमें बिद्यमान् मूर्खता जैसे कष्टदायिनीहै वैसी दुखदायी न तौ कोई बिषहै किञ्चित् बुद्धिमान् मनुष्योंकी मूर्खता जैसी इस शास्त्रके श्रवण करनेसे नष्ट होतीहै वैसी किसी अन्यशास्त्रसे नहीं होती। जो मनुष्य परमात्माकी प्रीति सम्पादन करना चाहै उनको उचित है कि मनोहर दृष्टान्तोंसे युक्त इस सुख दायक शास्त्रको अवश्य सुने मूर्ख-तासे बडी भारी२बिपत्ति और तुच्छ दुष्ट योनि ऐसे उत्पन्न होतीहैं जैसे खदिरके वृक्षसे कांटे हे राम! सकोरा हाथमें लेकर चंडालके घर भिक्षामांगना उत्तम है परन्तु मूर्खतासे दूषित जीवन अच्छा नहीं घोर अन्धकार युक्त कूपमें वृक्षोंकी कोटरोंमें अथवा अन्य शून्य स्थानमें अन्धा कीडा बनकर रहना यह अत्यन्त दुखदायक है।

मोक्षका उपायरूप इसप्रकाश (ज्ञान) को पाकर कोई मनुष्य अज्ञानरूपी अंधकार में नहीं गिरता । जबतक बिवेकरूपी सूर्यकी बिमल प्रकाशित नहीं होती तभीतक तृष्णा-रूपी रात्रि मनुष्यरूपी कमलको संकुचित करती है । हे रामचन्द्रजी ? संसार दुखकी निवृत्तिके लिये मेरे समान बन्धुओं सहित गुरू और शास्त्रके प्रमाणोंके अनुकूल अपने आत्माका स्वरूप जानकर विष्णु महादेव और अन्यान्य महर्षिगणोंके समान जीवन्मुक्त होकर सुखपूर्वक बिचरौ । इससंसार में दुख तौ अनन्तहैं और सुख तृणके समानभी नहीं है इसलिये संसारके दुखदायी पदार्थोंमें सुख की दृष्टि करना उचित नहींहै । पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये अनन्त और क्लेश शून्य आत्म. पदको बुद्धिमान् मनुष्य प्राप्त करै । जिनका

मन सर्वोत्तम पदका अवलम्बन करके बिगत-ज्वर (चिन्तारहित) होगये हैं वेही उत्तम पुरुष पुरुषार्थके भाजन हैं।

जो कि राज्य आदिकेही सुख सम्भोग मात्रसे सन्तुष्ट हैं उन दुष्ट मनुष्योंको अन्धे मेंढक समझना चाहिये जो तुरंत (बुरा परिणामहै जिनका) शठ बुरेकार्य करनेवाले और सम्भोगी (विषयी) मित्ररूपी शत्रुओंसे प्रीति रखते हैं वे मोह मन्थर बुद्धि (अज्ञानसे नष्ट होगई है बुद्धि जिनकी ऐसे) मूढ मनुष्य एक संकट से दूसरे संकटमें, एक दुखसे दूसरे दुखमें, एक भयसे दूसरे भय में और एक नरकसे दूसरे नरकमें पडतेहैं। इससंसार में मनुष्य सुखके पीछे दुख और दुखके पीछेसुख सदैव भोगता रहता है, संसारी सुख, दुखोंकी दशा बिजुलीके समान क्षणभंगुर है इस संसार

में मनुष्य बिना ज्ञानके सर्बथा सुखी नहीं होसक्ता। जो महात्मागण तुह्मारे समान बिरक्त और बिवेकी हैं वेही बन्दनीय (पूजा करनेके योग्य) तप मोक्ष और भोगके भागी हैं परमोत्तम बिबेकका आश्रय लेकर बैराग्याभ्यास द्वारा संसारकी आपत्तिरूप घोर नदीसे पार होना चाहिये। बिबेकी ज्ञानवान् पुरुषको बिषके समान मूर्च्छा देनेवाली, इस संसारकी माया में कभी अचेत रहना उचित नहीं है। जो मनुष्य इस संसारमें आकर अचेत रहताहै वह उसके समानहै जो आगसे जलतेहुए गृहमें तिनकाकी शय्यापर निश्चिंत होकर सोताहै। जिस परमपदको पाकर न मनुष्य फिर इस संसारमें जन्मताहै और न शोक करताहै वह पद केवल ज्ञानसे मिलताहै, इसमें कोई संन्देह नहीं है। यदि यह कहो कि ब्रह्म नहीं है तो

बिचार करनेमें तुह्मारी क्या हानिहै ? और ब्रह्म है तो बिचारद्वारा तुम संसारसागरसे पार होजाओगे। जिससमयसे मनुष्य मोक्षके उपायोंके बिचार करनेमें लगताहै उसीसमयसे वह मोक्षका भागी होजाताहै। तीनों लोकोंमें केवली भाव (मुक्ति) के सिवाय नाश रहित आशंका रहित और भ्रमशून्य कोई पदार्थ नहीं है। मोक्षोपायमें प्रवृत्ति प्राप्त होनेपर कैवल्य मुक्तके प्राप्त होनेमें कुछ क्लेश नहीं होता। धन, मित्र, बांधव, हाथ, पांव चलाना, देशान्तर में गमन करना, कायाको कष्ट देना और तीर्थोंमें निवास करना,ये परमपदके पानेमें कुछ सहायक नहीं होते किन्तु पुरुषार्थसे प्राप्त ब्रह्मा-कार दृढ बासनारूपी कर्मद्वारा केवल मनके जीतनेसेही आत्मपदकी प्राप्ति होसक्ती है देह और इंद्रिय आदिको आत्मासे पृथक् समझने-

से, बिचार करनेसे, एकान्त सेवनसे और दुखोंके मूल जो बिषयजाल हैं उनको त्यागनेसे मनुष्यको ब्रम्हपदकी प्राप्ति होती है । जो मनुष्य सुखासनपर बैठकर स्वयं बिचार करनेसे ब्रह्मपदको प्राप्त होता है, वह न तो शोक करता है और न पुनः इस संसारमें जन्मता है। साधुगण ब्रह्मपदकोही समस्त सुखोंकी परम अवधि और सर्वोत्तम अनिर्बचनीय परम रसायन कहते हैं। इस मृत्युलोक और स्वर्गलोकके सम्पूर्ण पदार्थ नश्वर हैं इन दोनोंलोकोंके पदार्थोंमें सुखका लेश तो ऐसे नहीं हैं जैसे मृगतृष्णामें जलका कणभी नहीं होता। इसलिये शम द्वारा मनके जीतनेकी चिन्ता करनी चाहिये; मनकेही जीतनेसे अनन्तब्रह्ममें एक रसनारूपी आनन्द प्राप्त होगा। चाहै चलता हो, चाहै बैठा हो, चाहै भ्रमणकरता

हो चाहै गिरता हो और चाहै राक्षस हो, चाहै दानव देव हो चाहै मनुष्य हो सबकोही केवल मनकी शान्तिसे बिकसित शान्तिरूप पुष्यसहित बिबेकरूपी ऊंचे बृक्षका फल परमपदरूपी सुख प्राप्त होता है। जिस मनुष्यको परमपद होजाता है वह व्यवहारोंमें तत्पर रहनेपरभी संसारी कार्योंसे सम्बन्ध ऐसे नहीं रखता जैसे आकाशस्थित सूर्य न तो किसी पदार्थको त्यागता है और न किसी पदार्थको ग्रहण करता है, जोमन, शान्त, निर्मल, बिश्रांत भ्रमशून्य चेष्टारहित और विषयलालसा रहित है वह न तो किसी बस्तुकी इच्छा करताहै और न किसीको त्यागता है । अब मोक्षद्वार के द्वारपालोंका यथावत बर्णन करताहूं तुम श्रवण करो, इनमेंसे एकके संगभी मेलहोनेसे मनुष्य मोक्षद्वारमें प्रवेश करतासक्ताहै ।

सुखकी आशारूपी पियासाके दोषसे पार होनेके अयोग्य यह संसाररूपी मरुस्थली शमसे चन्द्रमाकी प्रभाके समान प्राणीके लिये शीतल होजाती है। शमसे मोक्ष मिलती है, शमगुणही परमपद है, शमही शिव है शमही शान्ति है और शम भ्रमनिवारक है। जिस मनुष्यका चित्त शमसे भूषित होरहा है, जो शमसे तृप्त होरहा है और शमसे जिसकी आत्मा निर्मल होगई है उसका शत्रुभी मित्र होजाता। जिनका चित्त शमरूपी चन्द्रमासे अलंकृत होताहै उनको क्षीरसागरके समान परम शुद्धता मिलती है। जिनसज्जनोंके हृदय कमलमें शमरूपी कमल बिकसित होरहा है वे दो कमलधारी (एक हृदयरूपी कमल और दूसरा शमरूपी कमल) महात्मागण बिष्णुभगवानके समान हैं(बिष्णुभगवान्के भी

दो कमल हैं एक हृदूकमल और उससे उत्पन्न ब्रह्माका कमलासन) जिनके कलंक रहित मुखपर शमरूपी लक्ष्मी शोभित होरही है वे अपनी सुन्दरतासे इन्द्रियोंको वशवाले सत्कुलाचन्द्र निरन्तर पूजा करनेके योग्य हैं। जैसा आनन्द कि शमके ऐश्वर्यसे प्राप्त होता है वैसा आनन्द त्रैलोक्यकी सम्पत्तिसे भी प्राप्त नहीं होता। संसारमें जितने दुःख हैं और जितनी व्याधि हैं और जितनी प्रकारकी तृष्णा हैं वे सब चित्तके शान्त होनेपर ऐसे नष्ट होजाती हैं जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार। सब मनुष्योंका चित्त चन्द्रमाके देखनेसे ऐसा प्रसन्न नहीं होगा जैसा शान्तिचित्त मनुष्यके दर्शनसे। जो मनुष्य शान्तचित्त हैं सबपर कृपा करते हैं और सज्जन हैं उनपर परमात्मा स्वयं प्रसन्न

होता है। जो मनुष्य शमसे भूषित है उनपर क्रूर (कठोर हृदयवाले) और मृदु हृदय वाले सम्पूर्ण प्राणी माताके समान विश्वास करते हैं। शमसे मनको जैसा सुख प्राप्त होता है वैसा सुख अमृतपान करने और लक्ष्मीसे आलिङ्गन करनेसे नहीं मिलता। हे राघव! यह मन जो शरीरिक और मानसिक व्यथाओंसे चलायमान होरहा है और तृष्णारूपी रजसे इधर उधर खींचा जा रहा है उसको शमरूपी अमृतसे सींचकर शान्त करो। हे वत्स! शमसे शीतल बुद्धिद्वारा जो कुछ कियाजाता है जो कुछ खायाजाता है वह जैसा मनको अच्छा लगता है वैसा और कुछ अच्छा नहीं लगता। शान्तिरूपी अमृतसे सींचनेपर मनको जो सुख प्राप्त होता है उससे मैं समझता हूं कि छिन्नभिन्न अङ्ग भी पुनः

जुड जाते हैं । जो मनुष्य शान्तचित्त हैं उससे पिशाच, राक्षस, दैत्य, शत्रु, व्याघ्र और सर्प कोई भी बैर नहीं करता । शमरूपी उत्तम कवचसे जिनके समस्त अङ्ग रक्षित हैं उनको दुःख ऐसे नहीं छेद सक्ते जैसे तीर बज्रकी शिलाको । अपने अंतःपुरमें बिराजमान राजा ऐसा शोभायमान नहीं होता जैसे समान स्वच्छ शमशील बुद्धिद्वारा एक साधारण व्यक्ति । शान्तचित्त पुरुषको देखकर मनुष्य जैसा प्रसन्न होता है वैसा प्राणसे प्रिय अपने स्वजन आदिको देखकर नहीं होता । जो मनुष्य शान्त चित्त होकर इस संसारमें निवास करता है उसीका जीवन सफल है अन्य किसीका नहीं । नम्रतापूर्वक शान्त चित्त सज्जन मनुष्य जो कार्य करता है उससे सम्पूर्ण मनुष्य प्रसन्न चित्त होजाते हैं । जो

मनुष्य शुभ अथवा अशुभ बस्तुको देखकर स्पर्श कर भोजनकर और शुभ अथवा अशुभ जलमें स्नानकर न हर्षित होता है और न ग्लानि करता है उसीको शान्त चित्त कहते हैं जो मनुष्य सबको समान दृष्टिसे देखता है जिसने सम्पूर्ण इन्द्रियां जीत ली हैं जो भावी सुख और दुखकी चिन्ता नहीं करते हैं उनको शान्त चित्त कहते हैं अपनी उत्तम बुद्धिसे दूसरेकी कुटिलताको जानकर भी सदा भीतरसे बाहरसे एक सा रहता है उसीके शान्त चित्त कहतेहैं। जिनका मन मृत्युके भयसे उत्सव में और युद्धमें ब्याकुल नहीं होता किन्तु समान निर्मल रहताहै उनको शान्त चित्त कहतेहैं। जो हर्षके समय न प्रसन्न होताहै और न शोकके समय क्रोधितहै किन्तु सोतेहुए मनुष्यके समान स्वस्थ चित्त रहताहै उनको

शान्त चित्त कहतेहैं। अमृत प्रवाहके समान सुन्दर जिसकी दृष्टि प्रीतिपूर्वक सब मनुष्योंपर पड़ती है उसीको शान्तचित्त कहते हैं जिसका अन्तःकरण शीतल है जो विषय समूहमें व्यवहार करताहुआ भी मूढ मनुष्य के समान नहीं गिरता है उसको शान्त चित्त कहते हैं। बडी २ आपत्तियोंमें भी जिसके मनमें नश्वर देहपर अहंकार नहीं होता उसको शान्तचित्त कहते हैं। व्यवहार करते रहने परभी जिसकी बुद्धि आकाशके समान स्वच्छ है और किसी प्रकार कलंकित नहीं होती उसको शान्त चित्त कहते हैं। तपस्वियोंमें, बुद्धिमानोंमें यज्ञ करनेवालोंमें राजाओंमें, बलवानोंमें और बडे बडे गुणवानोंमें शान्त चित्तही शोभायमान होताहै। शमासक्त गुणशाली महत्पुरुषोंके चित्तमें शान्ति ऐसे उत्पन्न होती है जैसे

चन्द्रमा से चांदनी। सम्पूर्ण गुणोंकी अवधि स्वरूप, और पुरुषार्थका प्रधान भूषण, यह शान्ति संकट और भयस्थान में भी शोभायमान होती है।

हे रघुनंदन! इस शान्तिरूप अमृतकी श्रेष्ठ पुरुष रक्षा करते हैं इससे इसको कोई हरण नहीं करसक्ता, महात्मागण इसीकर अवलम्बन करके परमपदको प्राप्त हुए हैं, तुम सिद्धीके लिये इसका पालन करो।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामयणे मुक्षुव्यवहार प्रकरणे शमवर्णनंनाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशः सर्गः प्रारंभः १४.

अथ बिचार वर्णनम् ।

चौपाई ।

कहूँ चतुर्दस सर्ग सुहावन । है वर्णन बिचारको पावन ॥ जाको सुनि अघ पुंज नशाहीं । बढत ज्ञान सज्जन पुलकाहीं ॥

श्रीवशिष्ठमुनि बोलेकी हे रामचन्द्रजी ! कारण जाननेवालेको उचित है कि शास्त्रज्ञान और परम पवित्र बुद्धि द्वारा आत्माका विचार करै। विचार बुद्धि तीक्ष्ण होकर परमपद को देखती है, और बिचारही इस संसाररूपी रोगकी महौषधि है। अनेक प्रकारके राग द्वेषादि जिसके पल्लव हैं ऐसा बिपत्तीरूप वृक्ष जब बिचाररूपी करौतसे काट दिया जाताहै

तौ फिर नहीं बढता । हे महाप्राज्ञ ! रामचन्द्रजी बन्धुनाश, संकट प्रभृति अन्य दुख के स्थान सब अज्ञानसे व्याप्त हैं इसलिये सज्जनोंकी गति केवल बिचारही है अर्थात् बिना बिचारके अज्ञानका नाश नहीं होता बिचारके शिवाय पण्डितोंकी और कोई उपाय नहीं है, सज्जनोंकी बुद्धि बिचारसे अशुभको छोडकर शुभ पादर्थका ग्रहण करती है, बिचारसेही बुद्धिमान् मनुष्योंके बल, बुद्धि तेज, प्रतिपत्ति, (समयके अनुसार विषय फुरना) क्रियाओंका अनुष्ठान और उनका फल ये सब सफल होते हैं । योग्य और अयोग्यके प्रकाशकरनेमें दीपक के समान और अभीष्टका साधन करनेवाला जो यह बिचार है इसका आश्रय लेकर संसार सागरसे पार होना उचित है । हृदयके बिवेकरूपी

कमलोंका जिसने नाशकर दिया है ऐसे महा अज्ञानरूपी हाथियोंको शुद्धात्मा बिचार-रूपी सिंह नष्टकर देता है। संसारसे पार होनेका उपाय जिनको नहीं मालूम हैं ऐसे मूढ यनुष्य जो कालकी गति परमपदको प्राप्त होगये हैं यह केवल बिचाररूपी दीपकके उज्ज्वल प्रकाशका फल है अर्थात् बिचारसेही मूढ मनुष्य मोक्षको प्राप्त होगये हैं। हेराघव! राज्य बिशाल सम्पति, भोग और नित्य मोक्ष यह सब बिचाररूपी कल्पवृक्षके फल हैं अर्थात् बिचारसे यह सब प्राप्त होते हैं महात्मा गणोंकी बुद्धि जो बिचारसे बिकसितहो रही है वह बिपत्तिमें ऐसे नहीं डूबती जैसे जलमें तूम्बा नहीं डूबती। बिचारशील बुद्धि द्वारा जो मनुष्य कार्य करते हैं वेही श्रेष्ठ फलोंक अधिकारी हैं मूर्ख मनुष्योंके हृदयरूपी कान

नेमें उपजने वाली, (मोक्षकी) आशाको प्रथमही रोकनेवाली, अविचाररूपी वृक्षकी दुखरूपी मंजरी इस संसारमें खिलरही है। हे रघुनन्दन! कज्जलके चूर्णके समान मलिन; मदिराके समान तुह्मारी यह अविचार रूपी निद्रा क्षयको प्राप्तहो यह हमारा आशीर्वाद है बिषम बिपत्तियों सहित महा अज्ञान में उत्तम बिचारवाला पुरुष ऐसे नहीं डूबता जैसे अंध-कार में तेजका पुंज सूर्य नहीं लीन होताहै, जिसके स्वच्छ मनरूपी सरोवरमें बिचाररूपी कमलों का समूह बिकसित होरहाहै वह मनु-ष्य हिमालय पर्वतके समान शोभाको प्राप्त होता है। जिस मूढ मनुष्यकी बुद्धि बिचारसे शून्य है उसके निकट अज्ञानके कारण चन्द्रमामेंसभी वज्र उत्पन्न होनेकी ऐसे भ्रान्ति होती है जैसे बालकको मूर्खताके

कारण पिशाच की भ्रान्ति होती है अर्थात् बिचार शून्य मनुष्य यह समझताहै कि चन्द्रमासेभी बज्र गिरेगा। हे रामचन्द्रजी ! जो अधम मनुष्य बिचारसे शून्य हैं वे दुख रूपी बीजोंक धरनेके लिये कोठेके समान और बिपत्तिरूपी लताओंके बिकसित होनेके लिये बसन्त ऋतुके समान हैं इसलिये ऐसे मनुष्यको दूरसेही त्यागना उचित है । जैसे अन्धकारमें ऐसा भ्रम होजाताहै " ऐसेही जो कुछ दुष्कार्य, बुरे ब्यवहार और मानसिक ब्यथा है वो सब अविचारसे उत्पन्न होती हे रघुनन्दन ! सत्कार्य करनेमें असमर्थ, निर्जन स्थानमें स्थित वनके बृक्षके समानअबिचारी मनुष्यको दूरसेही त्याग दो।जिस मनुष्य आशाके आधीन नहीं हैं और जो बिचार सहित है, उसको अपनी आत्मासे ऐसा सुख

प्राप्त होताहै जैसा कि पूर्णिमाके दिन चन्द्रमा के दर्शनसे बिचारके उत्पन्न होनेपर सम्पूर्ण देह ऐसे शीतल होजाता है जैसे सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे पीडित किसी छायाके स्थानमें जाकर शीतल होजाताहै और सम्पूर्ण शरीर ऐसे शोभामान् होताहै जैसे चन्द्रमाकी चांदनी सम्पूर्ण जगत् परमार्थरूपी पताका और शुद्ध बुद्धिरूपी चमरके समान जो बिचार उससे मनुष्य ऐसे शोभापाता है जैसे चन्द्रमासे रात्रि। बिचारवान् संसारके भयके निवारण करनेवाले मनुष्य समान सूर्यके दशों दिशाओं को अपने तेजसे प्रकाशित करते हैं। बिचारही संसारके भयके निवारण करनेका हेतुहै, देखो! रात्रिके समय बालक अपने अज्ञानसे कल्पना करलेता है कि आकाशमें बैताल है किन्तु वही बैताल बिचार से लुप्त होजाताहै।

ये सम्पूर्ण जगत् के पदार्थ बिचारके बिनाही मनोहर मालूम होते हैं परन्तु बिचारके उत्पन्न होतेही वे सब मिथ्या जान पडते हैं। यह संसाररूपी बिख्यात बैतालको मनुष्य अपने अज्ञानसे कल्पना कर लिया है यह बैताल अत्यन्त दुखदाई है इसका नाश केवल बिचारसे होता है। जगत्की बिषमतासे शून्य, सुख दायक, बाधा रहित, स्वाधीन और अनन्त यह केवली भाव बिचाररूपी बडे बृक्षका फल है। जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर शीतलताका उदय होता है वैसेही बिचार द्वारा मोक्षके उदय होनेपर निश्चल, उदार, पूर्ण आनन्द स्वरूप निष्कामता उदय होता है। पुरुष उत्तमताको देनेवाली चित्तमें स्थित बिचाररूपी महौषध द्वारा सिद्ध होनेपर किसी विषयकी इच्छा नहीं करता और न किसी

प्राप्त पदार्थको त्यागता है जिस समय चित्त परमपदका अवलम्बन करता है उस समय वह सब प्रकारकी वासनाओं से दूर होजाता है उस कालके बीचमें ब्रह्मभाव अत्यंत बिस्मृत होकर आकाशके सदृश न उदय होता है और न अस्त होता है उस समय मनुष्य इस बिशाल जगत्को केवल साक्षी (गवाह) के समान अवलोकन करता हुआ बास करता है और राग आदिके बशीभूत होकर न उनमें मन देता है और न किसी बस्तुको ग्रहण करता है, केवल शांतभावसे स्थिर रहता है, उस समय उसकी भीतर वा बाहर कहीं स्थिति नहीं होती है, न किसी प्रकारसे बिषादको प्राप्त होता है न किसी कर्म में आसक्त होता है और न नैष्कर्म्य प्राप्त करनेके लिये यत्न करता है गत बस्तुकी अपेक्षा करताहै अर्थात् उसकी

प्राप्तिके लिये यत्न नहीं करता और प्राप्तवस्तु से अपना कार्यकरताहै, न अक्षोभको प्राप्त होता है किन्तु पूर्ण समुद्रके समान भासताहै। महात्मा योगीगण इस प्रकार पूर्ण मनसे जीवन्मुक्त होकर इस जगत्में बिहार करते हैं येही जीवन मुक्त धीर महात्मा अपनी इच्छाके अनुसार दीर्घकालतक बास करके, फिर अन्तमें उपाधिक आभासको त्यागकर अनंत बिदेह मुक्तिको प्राप्त होते हैं बुद्दिमान् मनुष्य आपात्ति कालमेंभी मैं कौनहूं यह संसार किसीका है इस बातका प्रयत्न पूर्वक सदैव चिन्तन करैं और उसका अनुष्टानभी अवश्य करें।हे रामचन्द्रजी ! राजा को कोई कार्य कर्त्तव्यहो और उसमें कोई सन्देह उपस्थित हो तो "कार्य सफल होगा वा नहीं" इस बातको वह केवल बिचारसेही जान सक्ता है

अन्यथा नहीं । वेद और वेदान्त के सिद्धांत (धर्मज्ञान और ब्रह्मका साक्षात्कार) जो परम पुरुषार्थका कारण है इनका बिचारसे ऐसे निर्णय होता है जैसे रात्रिमें दीपकसे भूमिका निर्णय होता है । नेत्र तो अंधकारमें नष्टके सदान होजाते हैं और सूर्य आदिके तेजके समान चकाचौंधसे ढक जाते हैं तथा दूर स्थित और ओट में रखे हुए पदार्थको नहीं देखसक्ते किन्तु बिवेकरूपी सुन्दर नेत्र ऐसा नहीहै, न तो वह अंधकारमें नष्ट होताहै न बहुत तेजके सामने चौंधाता है और ओटके पार्थाकोभी देखनेमें समर्थ है । जो मनुष्य बिवेकरूपी नेत्रसे हीन है उसको जन्मका अंधा समझना चाहिये, उस दुर्मतीकी अवस्थापर सब शोच करते हैं किन्तु जो बिवेकी मनुष्य बिचार रूपी चक्षु सहित है वह पुरुषा-

र्थको प्राप्त करता है। बिचार अति चमत्कार युक्त वस्तु है इसके द्वारा परमात्मारूपी महा आनन्दका साधन होता है इसीलिये यह प्रतिष्ठाके योग्य है और क्षणभरकोभी इसको नहीं त्यागना चाहिये (बिचारसे परमात्माकी प्राप्ति होतीहै) बिचारमें कुशल पुरुष महात्माओंकोभी ऐसे अच्छे लगते हैं जैसे पकाहुआ मिष्ट आमका फल। बिचारसे जिनकी बुद्धि सुन्दर होगई है ऐसे पुरुष दुखरूपी गढोंमें बारम्बार ऐसे नहीं गिरते हैं जैसे मार्गको जाननेवाला पुरुष बिष तथा अनेक अस्त्र शस्त्रादिके आघातोंसे जिसका अंग शिथिल होगया है ऐसा रोगीभी इस प्रकार रुदन नहीं करताहै जिस प्रकार अबिचारसे नष्ट हुई है आत्मा जिसकी ऐसा मनुष्यजन्मकी परम्पराओंमें रुदन करता है। कीचडमें मेंढक बनकर रहना अच्छा है,

मलका कीडा होना उत्तम है और अंधेरी गुहामें सर्प होना उत्तम है किन्तु बिचारहीन मनुष्य होना उत्तम नहीं है । सम्पूर्ण अनर्थोंके रहनेका प्रधान स्थान, सब साधु गणों द्वारा तिरस्कृत (तिरस्कार कियाहुआ) और सब प्रकारके दुखोंकी सीमा जो यह अबिचारहै इसको त्यागना उचित है। महात्मा मनुष्योंको नित्यही बिचारमें लीन रहना चाहिये राग द्वेषादि रूपी अन्ध कूपमें गिरनेवालोंका केवल बिचारही एक मात्र अवलम्बन है।

हे रामचन्द्रजी ! बिचार द्वारा स्वयंही आत्माको स्थिर करके अपने मनरूपी मृग को संसार सागरसे पार करै। मैं कौनहूँ "यह संसार क्या है ! कैसे यह अधिष्ठानरूप आत्मा में आया" इसप्रकार श्रुति स्मृति और युक्तिबल

से जो परामर्श किया जाता है उसको बिचार करते हैं। अबिचारी दुर्बुद्धिका हृदय अन्धे से भी अधिक अंधा है और अज्ञानसे अधिक दृढ है मानो वह पत्थरसे केवल दुख सहन करनेके लिये बनाया गया है । हे रघुनंदन! सत्य पदार्थके ग्रहण करनेके लिये और असत्य पदार्थके त्याग करनेके लिये बिचारसे उत्तम कोई पदार्थ इस संसारमें नहीं है।

बिचारसे तत्वज्ञान होता है, तत्वज्ञानसे आत्मामें बिश्रान्ति, होती है और आत्मविश्रांतिसे मनमें शान्ति उत्पन्न होती है, इसी शांतसे सम्पूर्ण दुखोंका नाश होता है,। उत्तम बिचार दृष्टिद्वाराही लौकिक और वैदिक कर्मोंकी सफलताको प्राप्त कर मनुष्य उत्तमताको प्राप्त हुए हैं इसालिये हे रामचन्द्रजी! आप शमवान् होओ, और आपकी बिचार

में प्रबल रुचिहो यही हमारा आशीर्वाद है।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे विचार निरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अथ पंचदशः सर्गः प्रारम्भः १५

सन्तोष वर्णनम्।

॥ दोहा ॥

सर्ग पंचदश कहतहूं, है सन्तोष बिचार।
जाको गहिजन मुदितलहि, उतरहि भवनिधि पार।

श्रीवसिष्ठ मुनि बोले हे अरिसूदन रामचन्द्रजी! मोक्षकी तृतीय द्वारपाल यह सन्तोषही परम मङ्गलकारी है, सन्तोषकोही सुख कहते हैं, सन्तोषी मनुष्य परम शान्तिको प्राप्त होता है जिनको सन्तोषरूपी ऐश्वर्य

सुख प्राप्त होगया है उनको चिरकालके लिये शान्ति मिलगई है, ऐसे शान्तिप्रिय मनुष्योंके निकट साम्राज्यभी पुराने तिनुके समान अति तुच्छ है। हे रामचन्द्रजी ! जो बुद्धि सन्तोषसे शोभित है वह संसार के बिषम व्यापारोंमें न कभी उद्विग्न होती हैं और न कभी हीनताको प्राप्त होती है, जो शान्तचित्त मनुष्य सन्तोषरूपी अमृतपान करके तृप्त होगये हैं उनको अतुल भोग सम्पद बिषके समान प्रतीत होती है। अमृत रसकी तरङ्गोंसे भी वैसा सुख नहीं प्राप्त होताहै जैसा कि आशा, दीनता इत्यादि दोषोंके नाश करनेवाले अति मधुरस्वाद युक्त सन्तोषसे प्राप्त होता है जिस मनुष्यको अप्राप्त बिषयकी इच्छा नहीं है, और प्राप्त होनेपर जो हर्षित नहीं होता, और जो सुख और दुखसे ...न्य है उसको सन्तोषी कहते हैं। जबतक

मन अपने आप सन्तुष्ट नहीं होता तबतक मनरूपी बिलसे लताके समान आपत्तियां उत्पन्न होतीं हैं। बिशुद्ध ज्ञान दृष्टिद्वारा सन्तोषसे शीतल चित्त परम बिकाशको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे सूर्यकी किरणोंसे कमल खिल जाताहै। जैसे मलिन दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब (अक्स) नहीं दिखाई देता है वैसेही आशासे व्याकुल, सन्तोषहीन मनमें ज्ञानका प्रतिबिम्ब नहीं पडता अर्थात् सन्तोषहीन मनुष्यको ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। जिस मनुष्यरूपी कमलके बिकासित करनेके लिये सन्तोषरूपी भास्कर उदय होरहा है, वह अज्ञानरूपी रात्रिसे संकुचित नहीं होता। जिसका मन सन्तुष्ट है उसे कभी कोई शारीरिक और मानसिक पीडा नहीं होती तथा ऐसा मनुष्य दरिद्री होनेपर साम्राज्यका सुख

भोगता है । जो मनुष्य अप्राप्त बस्तुकी इच्छा नहीं करता है और जो सुखदुखको यथाक्रम भोगता है और जिसके आचरण शुद्ध हैं ऐसे मनुष्यको संन्तोषी कहते हैं । जिसका चित्त सन्तोषसे तृप्त होगया है और जो पूर्णचित्त हैं ऐसे बिशुद्ध महान् पुरुषोंके मुखमें क्षीरसागरके समान लक्ष्मी बास करती है । मुखकी प्रसन्नताही सन्तोषका चिन्ह है.) स्वयंही आनन्दरूप पूर्णताका अवलम्बन करके पुरुषार्थद्वारा तृष्णाका जयकरै । जो मनुष्य चन्द्रमाके समान सन्तोषरूपी अमृतसे पूर्ण है उसका चित्त, शान्त और शीतल बुद्धिद्वारा स्वयंही नित्य स्थिरताको प्राप्त होता है । जैसे सेवक लोग अपने स्वामीकी सेवा करते हैं वैसेही सम्पूर्ण सम्पतियां उस मनुष्यकी सेवा करती है जिसकामन सन्तोषसे पूर्ण होगया (सन्तोषी सदा सुखी) जब पुरुष अप-

ने आपही सन्तुष्ट होकर स्थित होता है तब सम्पूर्ण मानसिक व्यथायें ऐसे नष्ट होजाती हैं जैसे वर्षासे धूलि । कलंक रहित शुद्ध सुशीतल चित्तकी वृत्तिसे मनुष्य पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान शोभायमान होता है । सर्वत्र सन्तोषद्वारा सुन्दर मनुष्यके मुखारबिन्दको देखकर संसार जैसा प्रसन्न होता है वैसा धन सञ्चय करनेसे नहीं होता ।

हे रघुनन्दन ! जो पुरुष गुणवान् महात्माओंके प्रिय समभाव (' सबको एकदृष्टिसे देखने) से शोभित है उसको देवतागण और मुनिगणभी नमस्कार करतें हैं ।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे सन्तोष निरूपणंनाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अथ षोडशः सर्गः प्रारंभ १६

साधुसंग बर्णनम् ।

चौपाई ।

बर्ण्यों साधुसंग सुख दायक ॥ है सबको मुद मंगलकारक ॥ जासो संशय मिटत अनेका, उपजत है हिय परम बिबेका ॥

श्रीवसिष्ठ मुनि बोले कि हे बुद्धिमान् रामचन्द्रजी?संसार सागरसे पार उतरनेके लिये साधु समागम मनुष्योंको बहुत उपकारीहै ।जो महात्माजन साधुसंगरूपी वृक्षसे उत्पन्न विवेक रूपी पुष्पकी रक्षा करते हैं उनको मोक्ष रूपी फल अवश्य प्राप्त होताहै।विद्वान् मनुष्यके मिलनेसे शून्यस्थान मनुष्योंसे पूर्ण ज्ञान होताहै, मृत्यु उत्सवके समान होजाती है,और आपत्ति

सम्पत्के समान प्रतीत होतीहै । आपत्तिरूप कमलिनीके नाश करनेमें हिमके समान और अज्ञान रूपी कुहरेको नष्ट करनेमें प्रबलवायु के समान जो यह उत्तम साधु समागम है सो संसारमें अत्यन्त प्रशंसनीय है।हे रामचन्द्रजी साधु समागमको बुद्धिका बढानेवाला अज्ञानरूपी वृक्षका काटनेवाला, और मानसिक पीडाओंका दूर करनेवाला समझो । साधु महात्माओंके समागमसे बिवेकरूपी परम प्रकाशमान् दीपक ऐसे उत्पन्न होताहै जैसे बागके सींचनेसे मनोहर और उज्ज्वल पुष्पों का गुच्छा। साधु समागम रूपी सम्पत्तिसे नाशरहित, विघ्नशून्य, और नित्यही बढनेवाला परमोत्तम सुख प्राप्त होताहै । अत्यन्त कष्टकी दशामें पडकर और बिवश होनेपरभी मनुष्यको उचित नहीं है कि क्षणभरके लिये

सत्संगतिको त्यागै । यह साधुसंग अज्ञानरूपी रात्रिके नष्ट करनेके लिये दीपिकाके समान है और हृदयके अंधकारको दूर करनेके लिये ज्ञानरूपी सूर्यकी किरण है । जिस मनुष्यने शीतल और शुद्ध साधुसंगतिरूपी गंगामें स्नान कियाहै उनको दान, तप, तीर्थ, और यज्ञसे क्या प्रयोजन है । हे अनघ ! यदि राग द्वेष शून्य, सन्देहके छेदन करनेवाले अन्तः करणकी ग्रन्थियोंसे हीन साधुगण इससंसारमें वर्त्तमान हैं तो तपस्या और तीर्थोंके संग्रह करनेसे क्या प्रयोजन है । जिनका मन शान्त होगया है ऐसे धन्य साधुजनोंको प्रयत्न पूर्वक ऐसे खोजना चाहिये जैसे दरिद्री मनुष्यमणि को खोजताहै, जैसे अप्सराओंके समूहमें सदैव लक्ष्मी बिराजमान रहतीहै बुद्धिमान् मनुष्योंकी साधुसमागमरूप सुन्दरतासे शोभा

थमान् बुद्धिभी वैसेही बिराजतीहै । जिस धन्य मनुष्यने साधुसंगतिको नहीं त्यागा उसने निर्मल बिचारसे प्राप्त ब्रह्मपदरूपी चूडामणिको अपने शिरका भूषण बनायाहै जिनके अन्तःकरणकी ग्रन्थियां नष्ट होगई हैं और जिनने परमपदको जान लियाहै ऐसे सर्व माननीय साधुगणोंका सब उपायोंसे सेवा करनी उचित है क्योंकि संसाररूपी समुद्रसे पार होनेके लिये वेही एक उपायहै नरकरूपी अग्निके शान्त करनेके लिये जो मेघके समान है ऐसे साधुमहात्माओंको जिसने अनादरकी दृष्टिसे देखाहै वह नरककी अग्निके लिये शुष्क इंधनके समान है अर्थात् ऐसे मनुष्य नरकमें डाले जांयगे दरिद्रता, मरण, और दुख प्रभृति विषय रोग साधुसमागम रूपी उत्तम औषधसे समूल नष्ट होजाताहै ।

सन्तोष, साधुसमागम, बिचार और शम येही चारों संसारसागरसे पार होनेके मुख्य उपाय है सन्तोषही परम लाभ है, साधुसंगतिही परमगति है, बिचारही सर्वोत्तम ज्ञान है. और शमही परमोत्तम सुख है। संसारके भेदन करनेके लिये जिननें इन चारों निर्मल उपायोंका अभ्यास करलिया है वे अज्ञानरूपी जलमय संसार सागरसे पार होगये हैं। यदि इन चारोंमेंसे एककाभी उत्तम रीतिसे अभ्यास किया जाय तो हे धीमान् रामचन्द्रजी! ए चारोंकाही अभ्यास होजाता है, इनमेंसे एक एकसेही चारों उत्पन्न होते हैं इसलिये सम्पूर्ण सिद्धियोंके लिये एकका‌ही अवलम्बन करै। जब शम (शान्ति) गुणद्वारा विक्षेपरूपी तरङ्ग शान्त होजाते हैं और अन्तःकरणरूपी समुद्र स्वच्छ होजाता

है तथा जब रागद्वेषादिरूपी मगरोंका उसमें उपद्रव नहीं रहता तो साधु समागम, सन्तोष और बिचार रूपी महापोत (जहाज) निर्विघ्नतासे चलते हैं। जैसे कल्पवृक्षके आश्रय करनेवाले मनुष्यके निकट लक्ष्मी सदैव उपस्थित रहती हैं वैसेही जो मनुष्यसाधु समागम; बिचार और सन्तोषसे शोभित है उसकेपास ज्ञानरूपी लक्ष्मी सदैव उपास्थित रहती है। जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमामें सुन्दरता आदिगुण अपने आपही होते हैं वैसेही, बिचार, शम, सन्तोष और साधु समागमसे जो मनुष्य परिपूर्ण है उसमें प्रसन्नता आदि गुण अपने आपही होते हैं। सत्संग, सन्तोष शम और बिचार युक्त मतिमान् मनुष्यको सम्पूर्ण बिजय लक्ष्मी ऐसे प्राप्त होती है

जैसे उत्तम मंत्रीवाले राजाको शत्रुपर बिजय प्राप्त होती है । इसलिये हे रघुनन्दन ! पुरुषार्थ द्वारा मनको जीतकर इन चारोंमेंसे एक गुणका तौ अवश्य अभ्यास करै । परम पुरुषार्थ द्वारा मनरूपी हस्तीको जीतकर जब तक इनमेंसे एक गुणकाभी अभ्यास नहीं होता तब तक उत्तमगति कैसेभी नहीं प्राप्तहो सक्तीहै । हे रामचन्द्रजी । जब तक इन गुणोंके उपार्जन करनेमें तुह्मारामन आसक्त नहीं होता तब तक पुरुषार्थ द्वारा दन्तोंसे दन्तोंको भलेही चूर्ण करौ (किन्तु और कुछ नहीं होसक्ता) । हे महाबाहो ! चाहै तुम देवहो वा यक्ष, पुरुषवा कोई वृक्षहो जब तक तुम इनमें एक गुणकाभी उपार्जन नहीं करोगे तब तक संसार सागरसे पार होनेका कोई उपाय

नहीं है इनमेंसे एक गुणका अभ्यास करनेपर अवश्य फल मिलता है और इससे चित्तके सम्पूर्ण दोष शीघ्रही नष्ट होजाते हैं। गुणोंके बढनेपर दोषोंके जीतने वाले अन्य गुणभी बढने लगते हैं और दोषोंके बढनेपर गुणोंके नाश करने वाले सम्पूर्ण दोष बढजाते हैं। मनके अज्ञानरूपी बनमें बासनारूपी नदी बहती है, शुभ और अशुभ इसके किनारे हैं, यह मनुष्योंपर निरन्तर बहती रहती है, पुरुषार्थ द्वारा जिस तटकी ओर झुकाई जाती है उसी ओर बहती है इसलिये जब चाहे इस शुभ तटकी ओर चलाओ और चाहे अशुभ तटकी ओर, यह तुह्मारी इच्छा पर निर्भर है हे रामचन्द्रजी ! मनरूपी बनमें बहती हुई इस बासनारूपी नदीको यत्नपूर्वक शुभ तटकी ओर झुकाओ, हे शुभपते ! ऐसा

करनेसे कभी अशुभ प्रवाह तुमको अपनी ओर न बहा सकैगा।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षु व्यवहार प्रकरणे साधुसंग निरूपणंनाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशःसर्गःप्रारंभः १७

षट् प्रकरण विवरणम् ।

दोहा ।

षट् प्रकरण बिबरण कह्यो, श्रीबासिष्ठ समुझाय॥
सहित प्रेमजाको सुनत, सकल कलुख कटिजाय

श्रीबासिष्ठ मुनि बोले कि हे राघव ! जिस मनुष्यके अन्तःकरणमें बिवेक उत्पन्न होगया है वेही केवल इस ज्ञानके सुननेके अधिकारी है जैसे कि नीति शास्त्रके सुननेका राजाही

केवल अधिकारी है । मूर्खोंसे संसर्ग न रखने वाले शुद्धचित्त मनुष्य निर्मल विचारके लिये ऐसे योग्य है जैसे मेघ रहित आकाश मण्डल शरदृतुके चन्द्रमाके लिये योग्यहैं । हे राम-चन्द्रजी ! तुम सम्पूर्ण गुणोंसे शोभायमानहो इसलिये सबके अज्ञानके नाश करनेवाले जो वाक्य मैं तुमसे कहता हूं उनको श्रवण करो जिसका पुण्यरूपी कल्पवृक्ष फलोंके भारसे झुक जाता है वही मनुष्य मुक्तिके लिये इस ग्रंथको सुननेकेलिये उद्यम करता है ! धर्मात्मा पुरुषही परम पवित्र, उत्तम ज्ञानके देनेवाले इस उपदेशके सुननेका अधिकारी है अधम पुरुष नहीं । इस सारगर्भित संहिता (योगवा-सिष्ठ) को मोक्षोपाय कहतेहैं, इसके अच्छी प्रकार विचारनेसे निश्चय मुक्ति मिलती है. इसमें ३२००० श्लोक हैं । जैसे दीपकके प्रका-

श्वासे निद्रा रहित मनुष्यकी इच्छा बिनाभी घरके सम्पूर्ण पदार्थ उसको दिखाई देते हैं वैसेही इस संहिताके सुननेसे इच्छा न होने परभी अनायासही निर्बाण पद प्राप्त होजाता है ।

जैसे गङ्गाजी सम्पूर्ण पापोंको नष्टकर सुखप्रदान करती हैं वैसेही यह संहिता, किसी दूसरे मनुष्यको सुनानेसे अथवा दूसरेसे आप सुननेसे सम्पूर्ण भ्रमको नष्टकर अनन्त सुख देतीहै, जैसे रस्सीके वास्तविक रूपके जान-नेपर उससें सर्पका भ्रम दूर होजाताहै वैसेही इस ग्रन्थको अच्छी प्रकार समझनेसे सम्पूर्ण संसारी दुःखोंकी निवृति होजाती है । इस संहितामें छःप्रकरण हैं जिनमें युक्तियुक्त सम्पन्न वाक्यावली और उत्तम उत्तम दृष्टान्त वर्णन किये गये हैं ।

इस ग्रन्थके प्रथम प्रकरणका नाम "वैराग्य" है इसके पठन. पाठनसे वैराग्यकी बृद्धि ऐसे होती है जैसे निरन्तर जलसे सींचनेपर मरु-स्थलका बृक्ष बढता है।

इस वैराग्य प्रकरणमें १५०० श्लोक हैं, जैसे शुद्ध करनेसे मणिकी सब मलीनता दूर होजाती है वैसेही इस प्रकरणके श्लोकोंको भलीभांति बिचारनेसे अज्ञानसे उत्पन्न बुद्धि की मलीनता शीघ्रही नष्ट होजाती है। इसके अनन्तर "मुमुक्षव्यवहार प्रकरण" है इसमें १००० श्लोक हैं इसमें बहुतसे उत्तम २ उपदेश हैं तथा मुमुक्षुजनोंका स्वभाव उत्तमतासे वर्णन किया गया है।

इसके अनन्तर तीसरा उत्पत्ति प्रकरण है इसमें अनेक प्रकारके दृष्टान्त और कथा हैं, तथा ७००० श्लोकोंमें यह प्रकरण समाप्त है

इससे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है इसमें "अहम्" (मैं) और " त्वम् ., (तू) पदको निरूपण करनेवाले लौकिक द्रष्टा और दृश्यके भेद वर्णन किये हैं तथा यह द्रष्टा और दृश्य का भेद उत्पन्न न होनेपरभी उत्पन्नके समान प्रतीत होता है इसका भी वर्णन किया गया है । इसके सुननेसे सम्पूर्ण जगत्की यथार्थ दशाका बोध हो जाता है, तथा " अहम् " " त्वम् " पदोंके अर्थ, ब्रह्माण्डोंका विस्तार सम्पूर्ण लोक, आकाश, और पर्वत प्रभृति सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम जगत् मूर्त्तिहीन (स्वरूपरहित) अमूलक, और पर्वतरहित पृथ्वी इत्यादि पंचभूतोंसें शून्य भासता है इस प्रकरणके श्रवण करनेसे यह ज्ञात होजाता है कि यह सम्पूर्ण जगत् संकल्पनगर स्वप्नमें देखेहुए पदार्थ और मनोराज्यके समान केवल

नाममात्रके लिये विस्तरित है (स्वप्नमें देखा हुआ पदार्थ इत्यादि जैसे असत्य है वैसेही यह सम्पूर्ण जगत् भी असत्य है)। इस प्रकरणके श्रवण करनेसे यह संसार गन्धर्व नगर, मृगतृष्णाके जल और भ्रमसे दीखेहुए दो चन्द्रमाके समान (वास्तवमें चन्द्रमा एक ही है किन्तु भ्रमसे कभी दो दीखने लगजाते हैं) असत्य भासने लगता है। जैसे नौकाके चलनेपर उसमें बैठेहुए मनुष्यको किनारेके सम्पूर्ण पर्वत, वृक्षादि भ्रमसे चलते हुए दीखते हैं, वैसेही अज्ञानसे कल्पित पिशाचके समान सत्य कारण न होनेपर भी भ्रमसे प्रकाशमान् यह जगत् असत्य भासने लगता है। यह संसार आकाशकी मुक्तावलीके समान सुवर्णके बाजू और जलकी तरंगके समान मिथ्या प्रतीत होने लगता है क्योंकि बाजू

और तरङ्ग सुबर्ण और जलसे भिन्न नहीं है इसीतरह जगत् भी ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। चित्रमें खिची हुई अग्नि बास्तविक अग्नि न होनेपरभी अग्निही कहलाती है ऐसेही यह संसार असत्य होनेपरभी जगतही कहलाता है। जैसे निद्रामें स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्ति होती है और जागनेपर निबृत होजाती है वैसेही अबिद्या करके इस जगत्की उत्पत्ति होती है और सम्यक् ज्ञान करके निवृत्ति होजाती है, सो अविद्या कुछ बस्तु नहीं है, सर्व ब्रह्मचिदाकाशरूप है सो शुद्ध है अनन्त है परमानन्द स्वरूप है, उसमें न जगत् उत्पन्न होता है, और न लीन होता है ज्यों की त्यों आत्मासत्ता अपनेआप बिषेस्थित है उसमें जगत ऐसे है जैसे भीतमें चित्र होता है खम्भमें पुतले पुतली होती हैं और हुएबिना भासती है तैसे

यह सृष्टि मनमें रही है वास्तवमें कुछ बनी नहीं सब आकाशरूप है जब चित्त संवेदन स्पन्दरूप होता है तब नानाप्रकारका जगत् होके भासता है और जब विष्पन्द होता है तब जगत् मिटजाताहै इस प्रकार जगत्की उत्पत्ति कहीहै इसके अनन्तर चतुर्थ "स्थिति प्रकरण" है इसमें ३००० श्लोक हैं जिन में ब्रह्म और जगत्के बिषयके अनेक व्याख्यान और कथा हैं। यह जगत् अहंभावसे स्थितिको प्राप्त हुआ है, तथा द्रष्टा और दृश्यका क्रम इससे उत्पन्न हुआ है, और दशों दिशाओं में प्रकाशमान यह भ्रान्त जगत् किस प्रकार बुद्धिको प्राप्त हुआ है, यह सब बात इसमें बर्णन कीगई है। इसके बिचारनेसे जगत्की सत्यताका भ्रम जाता रहता है।

इसके अनन्तर पञ्चम सर्ग है इसमें ५००० श्लोक हैं, यह प्रकरण अत्यन्त पवित्र और नाना प्रकारकी युक्तियोंसे अति रमणीयहै;यह जगत् अहम्, त्वम् और तद् (वह) यह भ्रम इसप्रकार भ्रान्तिसे उत्पन्न हुआ और इस प्रकारसे इसकी शान्ति होती है इत्यादि विषय इस प्रकरणमें वर्णन किये गये हैं। इस उपशान्ति प्रकरणके सुननेसे क्रमशः जगत्के भ्रम नष्ट होजाते हैं। जैसे स्वप्न में कोई पुरुष राज्यकी कल्पना करता है, दूसरा स्वप्नमें राज्यभोग करता है, और स्वप्नमेंही उस राज्यके लिये युद्ध करता है किन्तु स्वप्नके निवृत्त होनेपर कुछ नहीं रहता ऐसेही यह संसारभी स्वप्नके तुल्यहै इस संसारका सत्यत्व इस प्रकरणके विचारने से सर्वदा नष्ट होजाता है। जैसे तेलसे रहित दीपक बुझ जाता है

वैसेही इच्छासे रहित मन इस प्रकरणके बिचारनेसे शान्त होजाता है, उस समय यह संसार भावीनगरकी बाटिकामें बंध्या स्त्रीसे सन्तानोत्पत्तिके समान शून्य ज्ञात होताहै और जिव्हा हीन पुरुषद्वारा वर्णित बंध्यानारीके पुत्रकी बीरताका वर्णन जैसे सत्य है वैसेही यह जगत्भी सत्य है (अर्थात् जैसे बंध्या स्त्रीके पुत्रका होना और फिर गूँगेमनुष्यद्वारा उसकी प्रशंसा होना असत्य है वैसेही इस जगत्का होनाभी असत्य है) इस प्रकार यह उससमय प्रकरणका वर्णन किया है यह संसार इस प्रकरणके बिचारनेसे ऐसे असत्य प्रतीत होता है जैसे अदृश्य चित्रोंसे युक्त भीति व मनकी कल्पनाओंसे रची हुई नगरी असत्य होती है! अथवा यह संसार ऐसे मिथ्या प्रतीत होने लगताहै जैसे कुसमयमें बसन्त ऋतुका आगमन

भान किसी बनका मनसे कल्पित नवीन फूलोंसे युक्त जान लिया जाय ।

इसके अनन्तर निर्वाणनामक षष्ठ प्रकरण है इसमें १४००० श्लोक हैं यह प्रकरण ज्ञान-रूपी महान् अर्थका देनेवाला है, इस प्रकरण के अच्छे प्रकार समझनेपर कल्पनाओंका समूह नष्ट होजाता है और निर्बाण (मोक्ष) रूपी कल्याण मिलता है। इस प्रकरणका ज्ञाता बिषय रहित, प्रकाश तथा ज्ञानरूप निरामय हार्दाकाशके समान निर्मल और सम्पूर्ण संसारके भ्रमसे शून्य होता है। उस समय उसकी जगत्की यात्रा समाप्त होजाती है, कर्त्तव्य कर्मोंको करके स्थित होजाता है, । तथा जगत्के असंख्य जालोंका अन्तःकरणमें ही भान होनेसे तृप्त होजाता है और बाह्य इन्द्रियोंसेभी भोग उसको शून्याकार प्रतीत कार्य, कारण औचित्वमें स्वीकार और परि

त्यागका ज्ञान नहीं रहता, सदेह होनेपरभी वह विना देहके समान होजाता है, संसार होने परभी संसार रहित होजाता है। वह पाषाणके समान छेद रहित चिदाकार अवस्था को प्राप्त होता है, वह उस लोकोंके प्रकाश करनेवाले परम ज्योतिर्मय चिदादित्यके समान होता है, वह जगत्की नीतिसे रहित होजाता है, अहंतत्त्वादिक तमरूपजगत् उसको नहीं भासता है, जैसे सूर्यको अन्धकार दृष्टि नहीं आता वैसेही उसको जगत् देखनेमें नहीं आता और वह महान् पदको प्राप्त होता है, उसकी संसारकी दुष्टलीला, आशारूपिणी बिशूचिका और अहंकाररूपी बैताल नष्ट होजाते हैं शरीरी होनेपरभी अशरीरी होजाता है। जैसे सुमेरुपर्वतके किसी कोनेमें कमल होता है जिसके ऊपर भ्रमर रहते हैं तैसे

ब्रह्माके किसी कोनेपर यह जगत तुषाररूप है और जीवरूपी भ्रमर उस पर निवास करते हैं। अपने अन्तः करणमें कल्पित आकाशके प्रत्येक परिमाणुमें जगत्की अनन्त लक्ष्मीको धारण करता है और उनका निर्माण करके पुनः अपने आपही देखता है।

जीवनमुक्त मनुष्यका हृदय परमात्मास्वरूपही है लाखों हरिहर और भी उसकी समानता नहीं करसक्ते।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे षट् प्रकरण विवरण नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशःसर्गःप्रारंभः १८.

दृष्टान्त वर्णनम् ।

चौपाई—

सर्गअठारह सुनहु सुजाना ॥ किये रुचिर दृष्टा

न्त बखाना॥ जाको पढत सुनत नरनारी। होहिं परमपदके अधिकारी॥

श्रीवसिष्ठमुनि बोले, जैसे उत्तम खेतमें ठीक समयपर उत्तम बीज बोनेसे अवश्यही उत्तम फल प्राप्त होता है वैसेही इस ग्रन्थके सुनने और सुनानेसे अवश्य ज्ञान प्राप्त होता है। जो शास्त्र युक्तिद्वारा तत्वनिर्णय करनेके अनुकूल हैं वे यदि मनुष्य रचित हो तौभी ग्रहण करने योग्य हैं परन्तु जो शास्त्र न्याययुक्त नहीं है वह ऋषि प्रणीत (वेदोक्त) होनेपरभी त्याज्य है, (इसका आशय यह है कि न्याययुक्त मार्गकी सेवा करना मनुष्यको उचित है (। युक्ति युक्त वाक्य बालककाभी ग्रहण करना उचित है और अयुक्त वाक्य यदि ब्रह्माकाभी हो तौभी तृणके समान त्याग देना चाहिये। जो

मनुष्य सामने बहती हुई गंगाजीके जलको छोडकर "यह हमारे पिताका कुआ है ,, ऐसा कहकर उस कूपका जो खारीपानी पीता है उस मूर्खको कौन शिक्षा देसक्ता है। जैसे प्रभात होनेपर प्रकाश अवश्य होजाता हैं वैसेही इस संहिताके पढनेसे उत्तम बिवेक अवश्य प्राप्त होता है। बुद्धिमानके मुखसे इस शास्त्रको आदिसे अन्त पर्य्यन्त सुननेसे बुद्धि धीरे २ संस्कार युक्त होजाती है! फिर अन्तः करणमें उत्तम और शुद्ध संस्कार युक्त वाणीका उदय होताहै जो कि बिद्वानोंकी सभाका भूषण है और महान् गुणशाली चतुरता प्राप्त होतीहै जिससे राजा और देवतागणभी उस मनुष्यसे स्नेह करने लगते हैं। जैसे नेत्रवाला पुरुष दीपक हाथमें लेकर रात्रिके समय सब पदार्थोंको देख

सक्ताहै वैसेही इस शास्त्रका जाननेवाला बुद्धि-
मान् मनुष्य पूर्वापरकी सब बातोंको अच्छी
प्रकार जान जाता है । जैसे शरद् ऋतुके
आरम्भ होनेपर आकाशमें बादल आदि कुछ
नहीं रहते वैसेही इस शास्त्रके पढनेसे बुद्धिके
लोभ मोह आदि दोष सब नष्ट होजाते हैं
हे रामचन्द्रजी ! आपकी बुद्धिको केवल बिवे-
कके अभ्यासकी आवश्यकता है क्योंकि बिना
अभ्यासके कोईभी क्रिया फलवती नहीं होती
इस शास्त्रके बिचारनेसे मन शरत्कालके सरो-
वरके समान निर्मल होजाता है और ऐसे
समताको प्राप्त होता है जैसे कि मथनेके
पश्चात् समुद्र होगयाथा । मोहरूपी कज्जल
रहित अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करने
वाली और सम्पूर्ण पदार्थोंका बिवेक करने
वाली बुद्धिरत्नके दीपककी शिखाके समान

उज्ज्वल होतीहै, जैसे बाण कवचधारी मनुष्य को नहीं छेदन करसक्ते हैं वैसेही दीनता दरिद्रता आदि दोषोंसे पूर्ण संसारदृष्टि इसशास्त्रके जानने वालेको नहीं भेद सक्ता अर्थात् इस शास्त्रके ज्ञाताके यह सब बात निःसार मालूम होने लगती है । इस शास्त्रके ज्ञाता मनुष्यके हृदयको संसारके भयंकर भयसे ऐसे नहीं छेदन करसक्ते हैं जैसे बडे भारी पत्थरको बाण नहीं छेद सक्ते । संसारमें जन्म प्रथम होनेसे पुरुषार्थ प्रधान हैं अथवा कर्म प्रथम होनेसे दैव प्रधान है इत्यादि संशय इस ग्रंथके पढनेसे ऐसे नष्ट होजातेहैं जैसे दिन निकलनेपर अंधकार दूर होजाता है ! जैसे सूर्यके उदय होनेपर रात्रि दूर होजाती है वैसेही बुद्धिरूपी प्रकाशके उदय होनेपर सम्पूर्ण पदार्थोंमेंसे राग, द्वेषआदि क्षोभ दूर

होजाताहै । इस शास्त्रका बिचारनेवाला समुद्रके समान होजाता है सुमेरुपर्वतके समान धीर और स्थिर होजाता है और चन्द्रमाके समान शीतल होजाता है । इस शास्त्रका ज्ञाता मनुष्य धीरे २ जीवन्मुक्त होजाता है, और उसका सम्पूर्ण अज्ञान नष्ट होजाता है इस जीवन्मुक्तिकी अवस्थाको वाणीबर्णन नहीं करसक्ती । जैसे शरद् ऋतुकी चांदनीमें बहुत प्रकाश होताहै वैसेही इस ग्रन्थके बिचारने वालेकी बुद्धि परम आत्माका साक्षात् करानेवाली, शीतल और शुद्ध होकर परम उज्ज्वल भावको धारण करती है। इस ग्रन्थक बिचारने वाले मनुष्यको हृदयरूपी आकाशमें शमरूपी प्रकाशयुक्त बिबेक रूपी सूर्यके उदय होनेपर अनर्थकारी कामक्रोध आदिरूपा धूमकेतुओंका उदय नहीं होता

जसे स्वच्छपानी पीनेसे प्यास शान्त होजातीहै जैसे शरद ऋतुमें बादल शान्त होजातेहैं वसेही जीवन्मुक्त मनुष्य सर्वोत्तम आत्मपदमें शान्त होकर शुद्ध और सौम्य भावसे निवास करते हैं। इस शास्त्रके बिचारनेसे दूसरोंसे बैर कराने वाली बुरी और कुशील बाणी ऐसे नष्ट होजाती है जैसे दिनमें पिशाचोंकी लीला दूर होजाती है अर्थात् कोई ऐसीबात नहीं कहता जिससे दूसरे मनुष्यसे शत्रुता होजाय। जैसे चित्रमें खिंची हुई लताको वायु नहीं बिचलित करसक्ती है वैसेही धैर्य और धर्ममें दृढतासे आरुढ मनुष्यको मानासिक व्यथा बिचलित नहीं करसक्ती है। तत्त्ववेत्ता मनुष्य विषयशक्ति युक्त मोहरूपी गढेमें नहीं गिरता है, क्योंकि मार्ग जानने वाला कौन मनुष्य गढकी ओर दौडता है। सत् शास्त्रोंके ज्ञात

सद् आचरण वाले मनुष्योंकी बुद्धि शास्त्रा नुकूल कर्ममें ऐसे रमण करती है जैसे अन्तः पुर में पतिव्रता स्त्री रमण करती है अर्थात् सद् आचरण मनुष्य सदैव श्रेष्ठ कर्महीं करते हैं। कोटि लक्ष ब्रह्माण्डोंके जितने परिमाणु हैं उनमेंसे एक २ भी ब्रह्मज्ञानी असंग बुद्धिको होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंको देखता है। मोक्षो पातरूप इन ग्रन्थके बोधसे जिसका अन्तः करण शुद्ध होगया है उसको भोग न कभी दुख देते हैं और न कभी आनन्दित करते हैं। प्रत्येक परिमाणमें कितनेही ब्रह्माण्ड असं-कीर्ण भावसे स्थित होते हैं तथा ये सब जलकी तरंगके समान आविर्भाव और तिरोभावको प्राप्त होते रहते हैं, जीवन्मुक्त मनुष्य इन सब बातोंको देखता है। जीव-मुक्त मनुष्य कार्य और फलका ज्ञाता होने

परभी बृक्षके समान न तो कार्यकी प्रवृत्तिसे द्वेष करता है और न कार्यकी निवृत्तिको आकांक्षा करता है । जीवन्मुक्त मनुष्य जो कुछ इष्ट और अनिष्ट प्राप्त होता है उसीको साधारण मनुष्यके समान भोगता है। इसलिये इस ग्रथंकोआद्योपान्त पढकर इसके अर्थको अच्छी प्रकार समझे, यह केवल कथाही नहीं है इससे बर और शापके समान प्रत्यक्ष फल मिलता हे !

यह शास्त्र बिना परिश्रमही समझमें आजाता है, इसमें अनेक मनोहर दृष्टान्त हैं और अलंकारोंसे भूषित एक रसमय काव्य है । जिसको पद और पदार्थका थोडासाभी ज्ञान है वह इस शास्त्रको अपने आपही समझ सक्ता है और जो स्वयं समझ नहीं सक्ता उसे उचित है कि इसको विद्वान् मनु

ब्यसे श्रवण करै । इस ग्रन्थको श्रवणकर अच्छी प्रकार इसका अर्थ बिचार करनेपर मोक्ष प्राप्तिके लिये मनुष्यको तप, ध्यान और जप आदिका कुछ प्रयोजन नहीं रहता ! इस शास्त्रके दृढ अभ्यास और बार २ अवलोकन करनेसे चित्तमें उत्तम संस्कार सहित अपूर्व पाण्डित्य प्राप्त होता है। जैसे सूर्यके उदय होनेपर पिशाच नहीं रहता है वैसेही इस शास्त्रके बिचारनेसे "मैं तथा यह जगत" इसप्रकारका दृष्टा और दृश्यका भेद स्वयं नष्ट होजाता है। जैसे स्वप्नका मोह ज्ञात होनेपर दुख नहीं देता वैसेही इस जगत्की असत्यता ज्ञात होनेसे इससे पुनः भ्रम नहीं होता। जिस प्रकार संकल्प नगरमें मनुष्यको हर्ष अथवा विषाद कुछ बाधा नहीं करते इसी प्रकार इस जगत् भ्रमका यथार्थ रीति-

पर ज्ञान होनेसे कुछभी हर्ष बिषाद नहीं होता, जैसे चित्रमें लिखा हुआ सर्प ज्ञान होनेपर भयदायक नहीं होता वैसेही जब जग रूपी सर्पका अच्छी प्रकार ज्ञान होजाताहै कुछ सुख दुख नहीं होता यह सर्प चित्रमें लिखा है ऐसा ज्ञान होनेसेही चित्र लिखाका जैसे सर्पत्व नष्ट होजाता है वैसेही यथार्थ रीतिसे ज्ञान होनेपर यह संसार अधिष्ठान रूपसे परिशेष रहनेपर अपने रूपसे स्थितही शान्त होजाता है । पुष्प और पत्रोंसे मर्दन करनेमें तो कुछ परिश्रमभी होता है परन्तु परमपदके पानेमें कुछभी परिश्रम नहीं पडता (अर्थात् ज्ञानके प्रभावसे इस प्रपंचके नष्ट होनेपर स्वयंही परमब्रह्ममें परणित होजाता है पुष्प और पत्रोंके मर्दनमें तो अङ्ग हिलाना पडता है परन्तु परमपदकी प्राप्तिके

लिये तो केवल वृत्तियोंका निरोध करना पडता है अङ्ग चलानेकी कोई आवश्यकता नहीं होती । संसारमें शान्ति देनेवाले महा-ज्ञानकी प्राप्तिके लिये सुखासनपर बैठकर यथा सम्भव भोगोंको भोगता रहै, सदाचार बिरुद्ध कोई कार्य न करै, यथा समय गुरूका आदेश ग्रहण करता रहै, यथा सम्भव उत्तम संगतिमें वैठे और इस शास्त्र अथवा अन्य उपनिषद् आदिका बिचार करै, इस महाज्ञा-नके प्राप्त होनेपर पुनर्जन्म और योनियंत्रमें पडकर मनुष्य कष्ट नहीं पाता इस जन्मकी पीडासे जो भय नहीं करते और विषय रसमें लिप्त रहते हैं वे अधम मनुष्य अपनी माताके बिष्टाके कीडे हैं उनका नाम भी न लेना चाहिये ।

हे रामचन्द्रजी ! अब मैं बिवेक बुद्धि प्राप्त

और बिषय समूहोंके अन्त करनेवाले इस ज्ञानप्रद शास्त्रको बर्णन करता हूं तुम श्रवण करौ। जिसप्रकार यह शास्त्र सुना जाता है, और परिभाषा और दृष्टान्तोंसे इसका यथार्थ रीतिसे बिचार होता है इसका उपाय मैं कहताहूं तुम सुनौ। जिसबिनाजाने और बिना देख हुए पदार्थका ज्ञान जिस अन्य दृष्ट पदार्थ द्वारा कराया जाता है और वह पदार्थ उसके ज्ञान करनेमें समर्थ होता है उसे दृष्टान्त कहते हैं।

हे रामचन्द्रजी! जैसे रात्रिसे समय बिना दीपकके घरके बर्तन कुछ नहीं दीखसक्ते वैसेही दृष्टान्त बिना अपूर्व अर्थका बोध नहीं होता हे काकुत्स्थरामचन्द्रजी! जिन जिन दृष्टान्तों से मैं तुमको बोध करताहूं वे सब कारणसे उत्पन्न हैं और कारण रहित

सत् परमात्माको प्राप्त कराते हैं। केवल परब्र-ह्मसे व्यतिरिक्त उपमा (जिसकी उपमा दीजाय) और उपमान (जिसको उपमा दीजाय) सम्पूर्ण पदार्थोंका कार्य और कारण भाव विद्यमान है इस ब्रह्मोपदेशमें मैं जो तुमसे यहां दृष्टान्त कहता हूं उसमें परब्रह्मका एक अंशका साधर्म्य ग्रहण किया जाता है। ब्रह्मतत्वके बोधकराने के लिये जो जो दृष्टान्त यहां दिये जाते हैं उन सबको स्वप्न के पदार्थोंके समान मिथ्याभूत जगत्के अन्तर्गतही जानना चाहिये (क्योंकि सच्चि-दानन्द ब्रह्मत्व एकही है इस प्रकार अंगीकार करनेसे यदि ब्रह्म निराकार है तो उसमें साकार दृष्टांत कैसे होसक्ताहै " इत्यादि ऐसी कल्पना मूर्खोंमें नहीं उठसक्ती । और नैया-यिक लोग जो अन्यपदार्थसे असिद्ध और

और विरुद्ध आदि दोषों का दिखाया करतेहैं उनके दृष्टान्तरूपी दूषणोंसेभी कुछ नहीं बिगडता हैं क्योंकि उनके दूषणभी संसारके भीतर हैं इससे स्वप्नवत् मिथ्या हैं, जो अवस्तु है वह अपने उत्पन्न और नष्ट होनेके पहिले अथवा पीछे सत्ता हीन है वैसेही वर्तमानमें भी मिथ्या है इसलिये जाग्रत और स्वप्नके पदार्थ समान हैं जैसे स्वप्नमें कियेहुए संकल्प ध्यान, बर, शाप और औषधियोंद्वारा कार्य सिद्ध होजाते हैं उसी तरह जाग्रत अवस्थामें जगत्की स्थिति होनेसे स्वप्नका दृष्टान्त ठीक है

इस मोक्षोपाय ग्रन्थके रचयिता वाल्मीकिने अन्य जो जो ग्रन्थ बनाये हैं उनमेंभी ब्रह्मतत्वके बोधक दृष्टांतोंकी यही एक व्यवस्था है।

यह जगत् स्वप्नके तुल्य है यह बात शास्त्र श्रवण करनेसे जितनी शीघ्र मालूम होसक्तीहै

उतनी शीघ्र बाणीसे नहीं माळूम होसक्ती क्योंकि बाणी तो क्रमसे अपना कार्य करती है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि शास्त्रके श्रवणमें आलस्य न करना चाहिये क्योंकि जो आलस्य करते हैं उनकी जगत्की असत्यतामें भ्रम होजाता है। यह जगत् स्वप्न, मनसे कल्पित और ध्यानसे कल्पित नगरके समान है इसलिये यही स्वप्नादिही इसके दृष्टांत हैं अन्य दृष्टान्त कोई नहीं है। जैसे कुण्डलके बननेमें सुवर्ण कारण है वैसेही ब्रह्मभी जगत् का कारण है ब्रह्मपदार्थके जाननेके लिये यह उपमा दी जाती है किन्तु सुवर्णमें जैसा बिकार है वैसा ब्रह्ममें नहीं है इसलिये इस उपायसे सम्पूर्ण रूपसे सुवर्णकी समधर्मता ब्रह्ममें सिद्धि नहीं होती है। बिवाद रहित बुद्धिमान् मनुष्य तत्वके बोधके लिये केवल

एक अंशमेंही उपमान और उपमेयका साधर्म्य अवश्य अंगीकार करैं । जैसे कोई कहै कि यह " मणि दीपक समान है " तो अब यही दीपकके अंश अर्थात् प्रकाशसे मणिको उपमा दीगई, दीपकके अन्य तेल बत्ती आदिसे कुछ प्रयोजन नहीं है । एक अंशसे सादृश्य होनेसे उपमान उपमेयका बोध करा देता है जैसे " मणि दीपक के समान है " इस दृष्टान्तमें उपमान दीपक है केवल प्रभा (प्रकाश) मात्रमें सादृश्य होनेसे यह अपने उपमेय मणिका बोध करता है । दृष्टान्तके एक अंशद्वारा बोध्य(जानने योग्य) पदार्थका बोध होनेपर महा वाक्यार्थ " ब्रह्म" (उपादेय) की रीतिसे ग्रहण करना उचित है । कुतार्किक (वृथा तर्क करनेवाला) बनकर अपनी कुतर्कोंसे तत्वज्ञानका नाश

करना उचित नहीं है। जो वाक्य परम पुरु-षार्थरूप मोक्षदायक हैं वे यदि शत्रुनेभी कहे हों तोभी ग्रहण करने चाहिये परन्तु जो वाक्य मोक्षदायक नहीं है वे यदि अपनी प्यारी स्त्रीनेभी कहे हों तोभी ग्रहण करने योग्य नहीं है उनको तो केवल प्रलाप मात्र समझो।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे दृष्टांत निरूपणं नाम नामाष्टदशः सर्गः ॥१८॥

अथ एकोनविंशः सर्गः प्रारंभः १९.

प्रमाण वर्णनम्।

चौपाई-

है प्रमाण वर्णन सुखकारक ॥ त्रिविध ताप बहु पाप निवारक। श्रीवसिष्ठ मुनि कहेउ बुझाई ॥ ताहि सुनहु भाई मनलाई ॥

श्रीवसिष्ठ मुनि बोले कि हे रामचन्द्रजी! विशिष्ट अंशकाही साधर्म्य उपमाके स्थलमें ग्रहण किया जाता है क्योंकि सब अंशोंके सदृश होनेपर उपमान और उपमेयमें भेदही क्या रहेगा। जीव और ब्रह्मके स्वरूप बोध करानेमें जो उपयोगी दृष्टान्त हैं उनके ज्ञान होनेपर अखण्डाकार चित्तवृत्तिका उदय होता है, जिसमें महावाक्यार्थ आत्मतत्वकी स्फूर्ति होनेपर अज्ञान और अज्ञानके कार्योंकी शान्ति होतीहै और अज्ञानकी शान्ति होनेपर निर्वाण प्राप्त होता है जोकि दृष्टान्त ज्ञानका फल है। इसलिये "यह दृष्टान्त सर्वांशमें है अथवा एकांशमें है" ऐसे विकल्प जालोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है किसी न किसी युक्तिद्वारा महा वाक्यार्थकाही आश्रय ले। शान्तिही परम मंगल जनकहै, इसकी प्राप्तिका यत्न

कीजिये जब भोजनके योग्य भात मिलगया तो उसकी सिद्धिमें जो बिकल्प हैं उनसे क्या प्रयोजन है।

बिवेक हीन होकर पाषाणमें उत्पन्नस्थूल अंधमें मेंढकके समान भोगमें आसक्त रहना उचित नहीं है । पूर्व कथित दृष्टान्तोंका आश्रय लेकर प्रयत्नपूर्वक परमपदको प्राप्त करना योग्य है तथा बिचारवान् शान्तियुक्त महाबाक्यसे शोभायमान् होना योग्य है। जबतक आत्मामें बिश्रान्ति न हो तबतक बुद्धिमान् मनुष्य शास्त्रोपदेशोंका श्रवण, सुजनताका अवलम्बन, बुद्धि और तत्वज्ञ मनुष्योंके समागमसे धीरेधीरे धर्म, गुरुसेवा आदिके उपयोगी द्रव्य और शास्त्रके अपूर्व अर्थ संग्रह करनेमें बिचार करता रहै ऐसा करनेसे अक्षय चतुर्थपद नाम्नी शान्ति प्राप्त होती है।

जो मनुष्य चतुर्थपद बिश्रान्ति लाभ कर संसारसागरसे उत्तीर्ण होगये हैं वे चाहैं गृहस्थहों चाहैं यतीहोवे श्रवण और मनन करैं अथवा न करैं उनको इनसे कुछ प्रयोजन नहीं है वे तौ निर्विकार समुद्रकी भांति निश्चल भावसे स्थित हैं वोध्यतत्व (आत्मतत्व) के बोधके निमित्त उममान और उपमेयका एक अंशमें सादृश्य ग्रहण करना चाहिये, केवल मुखमेंही बोध होनेसे कुछ फल नहीं है किन्तु बोध हृदयमें होना आवश्यकीय है । किसी न किसी युक्तिसे बोध्य विषय आत्मतत्वको अवश्य जानना उचित है जो कि केवल बोध चंचु (बोध चंचु उसको कहते हैं कि जो खण्डन मण्डन करनेके लिये खूब ज्ञानीहो किन्तु हृदयमें उस ज्ञान का कुछ प्रभावहीनहो) है वो व्याकुल

होते हैं और योग्य अयोग्य कुछ नहीं देखते हैं जो मनुष्य हृदय बिश्रान्ति अनुभवरूप संविदाकाश ब्रह्ममें अनर्थ कल्पना करता है उसे प्रथम प्रकारका बोध चंचु कहते हैं जैसे बादल निर्मल आकाशको मलिन कर देते हैं वैसेही जो अज्ञानी मनुष्य अभिमान युक्त बिकल्पोंसे ब्रह्मज्ञानके साधन वृत्तिस्वरूप ज्ञानमें बिकल्प उठाता हुआ बोधको मलिन कर देता है उसको द्वितीय चंचु कहते हैं। जैसे सम्पूर्ण जलका आधार समुद्र है वैसेही सम्पूर्ण प्रमाणोंका श्रेष्ठ आधार एक प्रत्यक्ष प्रमाण है इसलिए मैं अब प्रत्यक्ष प्रमाणकाही बर्णन करताहूँ तुम सुनो। सम्पूर्ण प्रत्यक्ष प्रमाणमें अपरोक्ष ज्ञान को ही उत्तम कहते हैं वह ज्ञान, ज्ञेय, और ज्ञाता द्वारा निश्चय होता है उसी अपरोक्ष

ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं। जो सब देह इन्द्रियादिकका अनुभवरूपसे प्रकाश है और स्वयं ज्ञान तथा प्रकाशरूप साक्षी है उसी को जीव कहते हैं। वही साक्षी वृत्तिरूप उपाधिके धारण करनेसे संवित् ज्ञान कहाता है, अहं इस आकार वाला ज्ञानात्मक पुरुषही ज्ञाता है, जो घटादि विषयाकार वृत्ति द्वारा बाह्यरूपमें प्रगट होता है उसे ज्ञेय कहते हैं।

जैसे जल तरङ्ग आदि रूपोंमें प्रकाशित होता है वैसेही वही चैतन्य संकल्पविकल्प प्रभृति नानाप्रकारकी भ्रान्तियोंसे जगत्रूपमें प्रकाश होता है। वही प्रत्यक्ष चैतन्य सृष्टिकी आदिमें अकारण रूपही सृष्टिकी लीलासे स्फुरित होकर स्वयंही अपना कारण होता है। एक अविचारसे उत्पन्न

जीवका अज्ञान असत्य होनेपरभी कारण रूपमें परिणत है इसलिए सत्यके समान प्रतीत होता है और अविचार संयुक्त इस प्रकृतिमें जगत् प्रपञ्च और सत्यवत् स्फुरित होता है। विचार करके देखनेसे वही प्रत्यक्ष चैतन्य स्वतः उत्पन्न शरीर अर्थात् जगत्को अपने आप नष्ट करके परम महत्व रूपमें स्फुरित होता है जब बिचारवान् पुरुष आत्माको अच्छी प्रकार जान जाता है। तब विचार नष्ट होकर केवल परमब्रह्म शेष रहजाताहै है, इस दशाका शब्दोंसे वर्णन करना शक्तिसे बाहर है। मनके शांत और निरीह होनेपर अपनी ज्ञानेन्द्रियके कार्य होनेपरभी कोई फल नहीं है और न होनेपरभी कोई फल नहीं है क्योंकि यह कार्य अर्थात् ऐसा ज्ञान होनेपर संस्क ।

उत्पन्न होनेकी कोई सम्भावना नहीं है (विषयोंके सहित ज्ञानेन्द्रियका संम्बन्ध होने से विषय भोग होते हैं उन्हीं भोगोंसे संस्कार उत्पन्न होता है, वही वासना है, यही वासना दूसरे जन्मका मूल है। इसलिये मनके शान्त होनेपर कोई भी ऐसा संस्कार उत्पन्न नहीं होता है, और संस्कार के न होनेसे पुनर्जन्मभी नहीं होता है, अतएव! ऐसी दशामें विषय भोग होनाभी न होनेके समान है) ! मनके निरीह और शान्त होनेपर तुह्मारी कर्मेन्द्रिय अपने आप कर्ममें ऐसे प्रवृत्त न होंगी जैसे कि बिना चलाया अपने आर्य नहीं चलता है मन रूपी यंत्रके चलानेके लिये बिषय बासना ऐसे कारण हैं जैसे कि दो काठके मेंढाओंके लडानेमें उसके भीतर खींचनेकी

रस्सी कारण होती है (जो यदि काठके मेंढाओंमें रस्सीसे उनके लडानेकी चतुराई न कीजाय तो वे बेजान बस्तु अपने आप नहीं लडसक्ते हैं)। जैसे बायुके भीतर उसके चलनेकी शक्ति होतीहै वैसेही विषय बासनाओंके भीतर बाह्य भोग और चिन्ताका बिषयी भूत यह जगत् संस्काररूपमें बिद्यमान है (संस्कार अवस्थामें परिणत बिषय जाल बासना मनके शुद्ध होनेपर दृश्यरूपमें प्रकाशित होती है) ईश्वरकी सत्वगुण प्रधान बासनाके उदय होनेपरही सुविस्तृत दृढ मण्डली काल और बाह्य अभ्यन्तर रूपादिमें वही बासना प्रकाशित होती है। अनन्तर ईश्वरही बिभिन्न मालिन उपाधिके कुसंगसे देहादि दृश्य बस्तुओंमेंही अपना स्परूप धारण कर जीव भावमें स्थित होता है !

वह सर्वात्मा जहां जिस रूपसे प्रकाशित होता है वहां शीघ्र उसी रूपके अनुकूल शोभित होता है, रामचन्द्रजी ! दृश्य और दृष्टा दोनों मिथ्या हैं जो दृष्टा है सोई दृष्टा है, इसलिये यह भ्रम मिथ्या आकाशरूप है, जैसे पवनमें स्पन्द शक्ति रहती है वैसेही आत्मामें संवेदन शक्ति रहती है, जब संवेदन स्पन्दरूप होती है, तब दृश्य रूप होके स्थित होती है, ऐसे विचारकर आत्मपदको प्राप्त होओ और जो ऐसे विचारकर आत्मपदको प्राप्त न होय सको तो अहंकारको दूर करो । मनुष्य अपने पूर्व जन्मके पुरुषार्थकोही दैव मानकर उसका उपासक बन जाता है, उस दैवको दूरकर अपने पुरुषार्थके प्रभावसे इन्द्रियोंको जीत उस परमपद आत्मतत्वको अपने हृदयमेंही

पाता है। हे रामचन्द्रजी! जब तक अपनी बुद्धिबलसे अनन्त ब्रह्मका साक्षात् करो तब तक आचार्योंका प्रमाण सिद्ध सत्य मतका अनुसरण करके तत्व बिचार करते रहौ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे प्रमाण निरूपणं नामैकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥

अथ बिंशतितमःसर्गःप्रारंभः॥ २० ॥

आत्मप्राप्ति वर्णनम्।

चौपाई।

आत्मप्राप्ति बर्णन सुखदाई। सुनहु सुजन तेहि मन चितलाई॥ जाको सुनि मन बांछित पावहु॥ बहुरि न भवनिधिमें अपि आवहु॥

श्रीबसिष्ठमुनि बोले कि हे रामचन्द्रजी! मुमुक्षु व्यक्ति प्रथम साधु संग, साधुजनोंके

उपदेश और सदाचार शिक्षा द्वारा अपनी बुद्धिको बढावै फिर महापुरुषोंके लक्षणोंके अनुसार चलकर अपनेको महापुरुष बनावै यदि महापुरुषके सम्पूर्ण लक्षण किसी एक पुरुषमें न पाये जायं तो जो मनुष्य जिस गुणमें बिख्यात हो उससे वही गुण सीखकर उसके द्वारा अपनी बुद्धिको बढावै। हे रामचन्द्रजी! शम दम आदिगुण और उत्तम बुद्धिका होना ये महापुरुषके लक्षण हैं परन्तु उत्तम ज्ञानके बिना यह महापुरुषत्व सिद्ध नहीं होता है।

जैसे नया अंकुर बृष्टिके पानीसे वृद्धिको प्राप्त होकर धीरेधीरे अपने फलोंकेलिये प्रशंसित होजाता है वैसेही शम, दम, आदि सत् आचार ज्ञानके प्रभावसे वृद्धिको प्राप्त होकर आन्तारिक फल जो आत्मसुख

है उसके उत्पन्न करनेमें प्रशंसनीय होजाते है। अन्न आदिसे यज्ञ करनेसे बृष्टि होती है और बृष्टि होनेपर और अन्न उत्पन्न होता है इसीप्रकार ज्ञानद्वारा शम दम आदिगुणोंकी बृद्धि होती है और शम दम आदि गुणोंके होनेपर उत्तम ज्ञानकी बृद्धि होती। जैसे कमलसे सरोवरकी शोभा बढती है और सरोवरसे कमलकी शोभा बढती है वैसेही ज्ञानसे शम दम आदि गुण शोभा और बृद्धिको पाते हैं और शम दम आदि गुणोंसे ज्ञान शोभा और बृद्धिको प्राप्त होता है।

सत् आचारोंके होनेसे ज्ञानकी बृद्धि होती है और ज्ञानसे सत्आचारोंकी बृद्धि होतीहै इस प्रकार ज्ञान और सदाचार परस्पर एक दूसरेके बढानेवाले हैं। शम, दम, बुद्धि प्रभृतिद्वारा किसी निपुण महापुरुषके चरि-

त्रोंका अनुसरण करके बुद्धिमान् मुमुक्षु ज्ञान और सदाचारका अभ्यास करै।

हे वत्स ! जबतक ज्ञान और सत्‌आचारोंका एक संग अभ्यास नहीं कियाजाता तबतक दोनोंमेंसे एककीभी सिद्धि नहीं होती जिसप्रकार पके हुए धान्यकी रक्षा करनेवाली किसानकी स्त्री पक्षियोंका उड़ानेके लिये कर ताल देकर गान करती हैं तो उसको दोनों बात अर्थात् पक्षियोंका उडाना और गीतका का आनन्द दोनों प्राप्त होते हैं; उसी प्रकार मुमुक्षु पुरुष अभिमान परित्याग और बिषय वासना वर्जनद्वारा ज्ञान और सदाचार पद दोनोंको प्राप्त होता है।

हे रघुनंदन ! जैसे अब मैंने तुमको सदाचारका उपदेश दिया है वैसेही आगे ज्ञानका उपदेश करूँगा। यह ग्रंथ, यश,

आयु, और पुरुषार्थ फलका देनेवाला है, इस शास्त्रको तत्वज्ञ प्रशस्त पण्डितके निकट बुद्धिमान् मुमुक्षु श्रवण करै। हे रामचन्द्रजी! तुम इस शास्त्रको श्रवण करके बुद्धि की निर्मलतासे बलपूर्वक परमपदको ऐसे प्राप्त होओगे जैसे कि औषधिके संयोगसे मलिन जल स्वच्छताको प्राप्त होताहै हे रामचंद्रजी! पूर्वोक्त साधनके प्रभावसे मननशील मुमुक्षु का अन्तःकरण तत्वज्ञानके प्राप्त होनेपर इच्छा न करनेपरभी परमपदको प्राप्तहोता है और इतनाही नहीं किन्तु इस तत्वज्ञानके प्रभावसे अज्ञान आदिके नष्ट होनेपर जो परम पद प्राप्त हुआ है अन्तःकरण उसको कदापि नहीं त्याग सक्ता।

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे मुमुक्षु व्यवहार प्रकरणे आत्मप्राप्ति वर्णनं नाम विंशतिमः सर्गः

समाप्तमिदम् मुमुक्षु व्यवहार प्रकरणम्।

जाहिरात.
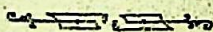
श्रीगोमहात्म्य चन्द्रिका सचित्र इसको रतलाम निवासी (श्रीसेठ, हरसहायमलात्मज, नारायणजी पोद्दार रचित,) हे प्रिय गोभक्तो! हमने आपहीके लिये इस पुस्तकको बहुत परिश्रम करसुन्दर बडेटाइप, चिकने कागज, तथा मनमोहनी विलायंतीकपडेकी जिल्दसे सुसज्जित करके छापी है, यदि आप गोमाताजीसे कुछभी प्रेम रखते हो यादि अनेक धर्मग्रन्थोंके अमृतमय श्लोकोंका एकही पुस्तक द्वारा पान करना चाहते हो, तो इसकी एक एक प्रति खरीद कर हमारा उत्साह बढाओ, अधिक क्या कहें. इस पुस्तकको सर्व प्रकारसे सुन्दर बनानेमें यथाशक्तिचेष्टा की है, इस पुस्तकमें क्या है उसका परिचय देनेके लिये इसके विषयोंका संक्षेपसे विवरण करते हैं, शास्त्र और प्रत्यक्ष प्रमाणरूपी गोमाहात्म्यका अमृतसागर प्राचीन और नवीन काव्योंका एकअनूठा और अनुपम प्रदर्शन, एवं श्रुति, स्मृति, पुराण इतिहास आदिकग्रंथोंका अद्वितीय दिग्दर्शन और हिंदी, (नागरी) सर्वगुण-

आगरीके परम रसीले भाषा लेखका अपूर्वरहस्य,दोहा, कवित्त, सवैया राग रागनीके विचित्र चित्रोंका अद्भुत दृश्य तथा हृदय ग्राही,उपदेशजनक एवं प्रभावोत्पादक दृष्टांत आदि विविध विषय रत्नोंसे जटित हिंदी भाषाके शृंगारकारक अमूल्य चमत्कार मूल्य कागदी जिल्द ॥॰)

नागर समुच्चय, इसमें ३ खंड हैं पहला वैराग्य-सागर, दूसरा शृंगार सागर, तीसरा पदसागर, इस पुस्तकमें भक्ति ज्ञान वैराग्य और पुराणोंके मतके श्लोक स्थल २ में दिये हैं. दोहा तथा कवित्त और श्रीराधाकृष्णके राशके हिंडोलाके, सांझीके होरीके, जन्मोत्सवके; अनेक सुन्दर २ पद ऐसे हैं कि इसकी प्रशंसा स्थानाभावसे कुछ लिख नहीं सकते .इसकी कविता ऐसी सुन्दर है कि सूरदासजीकी काव्यके सदृश, सुन्दर नकशीदार जिल्दसे बंधा हुआ २) ॥)

सांगीत ठुमरी संग्रह.

इसमें अनेक ठुमरियों का संग्रह किया गया है किसी २ मनुष्यको ठुमरियों के गाने वा सुनने की

बहुत शौख रहताहै इसलिये उनके मनोरंजनके लिये यह पुस्तक बनवाकर प्रकाशित किया है. आशाहै इसे भी खरीदकर इसके स्वादसे विमुख न होंगे यह भी अपने ढंगपर अनोखी पुस्तक है दाम ≈) आना.

इसके भी चार भाग छपरहे हैं जिनको चाहिये तो अपना नाम पता भेजकर ग्राहक श्रेणी मेंलिखादें छपजाने पर भेजी जावेगी चारों भाग का केवल मूल्य ॥)

ललित फाग.

अहाहा जो मनुष्य होली का आनन्द लूटना चाहते हैं अर्थात् होली रागको गाकर आप अपने इष्ट-मित्रों को प्रसन्न रखने की कांक्षा रखते हैं उनके लिये होली का मेवा अवश्य खरीदना चाहिये मूल्य केवल ≡) आना.

जर्राही प्रकाश ।

चारों भाग ।

यह ग्रन्थ अपने ढंगका हिन्दी भाषा मेंनया है इस में शरीरकी त्वचा पर होने वाले फोडे, फुंसी चोट आदिके घावों का इलाज मरहम पट्टी चीर फाड आदि का वर्णन है इस पुस्तक के चार भाग किये हैं। ग्रंथके आदि में मनुष्य के कंकाल के चित्र अस्थिप्रदर्शक मांसपेशी प्रदर्शक स्नायुप्रदर्शक, हस्त तलस्थ अस्थि प्रदर्शक, पसली और उदर के चित्र,फेफडे का चित्र, सिर पर पट्टी बांधनेका चित्र, आंखकी पट्टी,नाककी पट्टी छाती की पट्टी, टूटे हाथकी पट्टी, अंगूठेकी पट्टी उंगली की पट्टी, जांघकी पट्टी, कोहनी की पट्टी, टूटे हुये हड्डीवाले रोगियों के जानने के अनेक उपयोगी चित्र दिये गये हैं। फिर प्रथम भागमें जिस जिस स्थानपर फोडे होते हैं उनके चित्र ब्लाक बनवाकर दिये गये हैं और उनके साथ साथही उनके

इलाज मरहम आदिका वर्णन है । दूसरे भा
चीरने फाड़ने में काम आने वाले आयुर्वे
रीतिसे अस्त्र शस्त्रों के चित्र, उनका वर्णन
डाक्टरी मतानुसार टूटी हुई हड्डी, पस
टांग, हाथ,पहुंचा आदि को जोड़नेकी विधि
पट्टी बांधने के नियम दिये गये हैं तीसरे भा
में उपदेश संबंधी घाव, सुजाक, प्रमेह,गठि
आदिके इलाज हैं, चौथे भागमें नेत्ररोग संबं
इलाज लिखे हैं,पुस्तक बहुत मोटे चिकने का
पर छापी गई है बिलायती कपड़े की जि
मूल्य १॥) रुपया है ।

सुन्दर सदा बहार—यह पुस्तक चार भा
बहुतही मनोहर गान विद्या में सुन्दरसदाब
दिखलाने वालाहै यदि गान विद्या का शौक हो
इसे खरीद कर इसकी बहारको देखिये प्रत्येक भा
का दाम ≈)

सुदवुध सदावृक्षकी वार्ता ... ≈)
पन्नावीरमदेवको ख्याल ... ≈)

बारामासियालावणी संग्रह चित्र सहित ≡।)॥
मोरध्वजकी लावणी कथा चित्र सहित... ≡)॥
नागोरी छैलाको ख्याल ... ... ≡)॥
गणेश चौथकथा दोहा चौपाई मारवाडी भाषा
जिस्में इतनी चीजें हैं कीमत सबकी सामिलमें इसके
नीचे लिखी हैं .... ≡)॥
रामबनोवास बिरहकी बारामासी ... ...
कृष्णकुबरी संग बिहार बारामासी ... ...
दानलीलाकी बारामासी ... ...
श्रीकृष्ण यशोदाको झगडा ... ...
श्रीकृष्णचन्द्रकी जन्मपत्री ... ...
नरसी मेहताके माहेराको ख्याल ... ।))॥
शेठरंगीली रसाणीको ख्याल ... ≡)॥
सोसाण सतक इसमें दृष्टांतके दोहे१००हैं. ≡॥)॥
पलकदरियावकी कथा एक देवीदासनाम हरि
भक्तने एक जन्ममें २ देह धारी सो दोहा चौपाई
व वार्ता मारवाडी] ... ≡॥)॥
कविरत्नसारकृत बाराखडी·यह बाराखडी बांच

नेके योग्यही है सविस्तर ज्ञान, भक्तिसे भरी हुई है ... ... ॥)

रागदर्पण इसमें वेदांत ज्ञान वगैरहके पद, हरजस दोहा चौपाई सुंदर वैरागका भंडार भराहै ।

शुक्लयजुर्वेदसंहिता-(वाजसनेयी) समस्त कर्मकाण्डमें अत्युपयोगी प्रतिज्ञासूत्र. अनुवाक्सूत्र, सर्वानुक्रमणिका, याज्ञ्यवल्क्यशिक्षा, स्वर और अकारादिवर्णानुक्रमसहित मोटे टाइपमें शुद्धतापूर्वक अति उत्तम कागजपर छपीहै २-८ ०-

पं० श्रीधर शिवलालजी

"ज्ञानसागर प्रेस"

मु० श्रीकृष्णगंज, पो० माहिम.

(बम्बई)

॥ सूची ॥

पता—वंशीधर शिवलाल

ज्ञानसागर प्रेस माहिम.